समाधि कमल

प्रवचन-क्रम

1. जीवन की सहज स्वीकृति..2
2. अप्रमत्त जीवन--निराधार, निरालंब, निर्विचार..................................6
3. सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा......................................12
4. सबसे बड़ा चमत्कार--जल में कमलवत..30
5. मैत्री भाव, आनंद भाव, समता भाव...53
6. विचार के प्रति अपरिग्रह, तटस्थता और स्वतंत्र बोध......................62
7. साधना के जगत में प्रवेश...78
8. आज का दिन अंतिम है...94
9. ध्यान आंख के खुलने का उपाय है..99 10..अज्ञान का बोध, रहस्य का बोध
.... 110
11..ध्यान--जागरण का द्वार
.... 124
12..शास्त्र, धर्म और मंदिर
.... 137
13...अभाव का बोध
.... 152
14...एकांत का मूल्य
.... 165
15..राजनीति से छुटकारा
.... 180

समाधि कमल
पहला प्रवचन

जीवन की सहज स्वीकृति

एक बात जो मैंने रात को आपको कही, वह इस संबंध में थी कि हम जीवन को एक स्वीकार दे सकें। जीवन की स्वीकृति एक साधना है। जैसा जीवन उपलब्ध हुआ है, हम यदि उसे वैसा ही स्वीकार कर सकें, यदि हम उसे वैसा ही देख सकें, तो एक क्रांति, एक ट्रांसफार्मेशन अपने आप होना शुरू हो जाता है।
साधारणतः हम अपने से लड़ते हैं, संघर्ष करते हैं। और जैसे हम बाहर के जगत में संघर्ष करते हैं वैसे ही अपने मन के जगत में भी संघर्ष करते हैं। मैं संघर्ष के विरोध में हूं। यह प्राथमिक रूप से आपको समझा दूं, यह हमारी पहली बैठक है, यह आपको समझा दूं कि मैं संघर्ष के विरोध में हूं। मैं आपको अपने मन से लड़ने के लिए, विरोध करने के लिए नहीं कहने को हूं। मैं आपसे कहना चाहता हूं, इसके पूर्व कि हम मन के साथ कुछ भी करें, हमारा मन को जान लेना, मन से ठीक तरह परिचित हो जाना जरूरी है।
हमारी शिक्षा, हमारे संस्कार, हमारे धर्म हमें मन से संघर्ष सिखाते हैं। वे हमें सिखाते हैं, अपने मन से लड़ने को। वे हमें सिखाते हैं, हमारे मन में जो बुरा है, उसे अलग कर देने को। मन में जो बुराई है, जो पाप है, उससे युद्ध करने को हमारी शिक्षा हमें सिखाती है।
इस शिक्षा का परिणाम होता हैः हम दो आदमियों में विभाजित हो जाते हैं। हम अपने से ही लड़ने लगते हैं। हमारे भीतर दो हिस्से हो जाते हैं--एक वह आदमी जो लड़ रहा है और एक वह आदमी जिससे हम लड़ रहे हैं।
इस तरह के संघर्ष के परिणाम में कभी भी विजय संभव नहीं है। अगर मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं, तो क्या हम सोच सकते हैं कि उन हाथों में से कोई एक जीत जाएगा? अगर मेरे ही दोनों हाथ लड़ते हों, तो क्या यह संभव है कि उन दो हाथों में से एक हाथ कभी भी जीत जाएगा? यह तो असंभव है। क्योंकि उन दोनों हाथों के पीछे मेरी ही ताकत है, मेरी ही शक्ति है। उन दोनों हाथों में से कोई जीतेगा तो नहीं, एक बात हो जाएगी--वे दोनों हाथ लड़ते रहेंगे और मैं हार जाऊंगा। वे दोनों हाथ लड़ते रहेंगे और मेरी शक्ति क्षीण होती चली जाएगी और मैं थका हुआ और पराजित हो जाऊंगा। जीतेगा तो कोई भी नहीं, लेकिन मैं टूट जाऊंगा।
तो जब भी आप अपने मन से लड़ते हैं, मन की किसी बुराई से लड़ते हैं, तब आप अपने को दो आदमियों में तोड़ रहे हैं, जो कि बहुत घातक है। कौन किससे लड़ेगा? यह बात आपने बहुत सुनी होगीः मन शत्रु है और उस शत्रु से लड़ना है। यह बात बिल्कुल ही व्यर्थ है। अगर आपने मन को शत्रु समझ लिया और उससे आप लड़ना शुरू कर दिए, तो आपने विचार भी नहीं किया--आप किससे लड़ रहे हैं? आप अपने से लड़ रहे हैं! और अपने से लड़ने में दोनों तरफ आपकी ही शक्ति लगती है, आप ही क्षीण होंगे। इसलिए पहली बातः इस साधना प्रयोग में हम अपने से लड़ने को इकट्ठा नहीं हुए हैं। हमें अपने मन से लड़ना नहीं है। और आप हैरान होंगे, अगर यह बात समझ में आ गई कि मन से लड़ना नहीं है, तो मन के ऊपर तत्क्षण जीत हो जाती है।
लड़ना नहीं है तो फिर क्या हम करेंगे?
सुबह-सुबह किसी ने मुझे आकर कहा कि बहुत एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन तो एकाग्र नहीं होता, वह तो भाग-भाग जाता है। हम उसे खींच कर लाने की कोशिश करते हैं, वह तो हाथ में आता नहीं।
तो मैं आपको न तो उसे खींच कर लाने को कहूंगा, न उससे लड़ने को कहूंगा, न चाहूंगा कि उसे आप जबरदस्ती दबाएं। मैं कुछ दूसरी ही बात कहने को हूं। और उस दूसरी बात को आप ठीक से समझ लेंगे तो परिणाम होगा। और अगर आपकी अपनी बनी हुई धारणा पीछे काम करती रही, तो परिणाम नहीं होगा। हमारे मन इतने शिक्षाओं से भरे हुए हैं और हमने इतनी बातें सीख रखी हैं कि उन बातों को थोड़ा तीन दिन के लिए छोड़ देना बड़ा उपयोग का होगा।
वहां जर्मनी में एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ था, वेजनर। उसके पास जब भी कोई संगीत सीखने आता तो वह पूछ लेता कि पहले भी कहीं संगीत सीखा है या नहीं

सीखा है? अगर कोई व्यक्ति कहता कि मैं पहले भी कहीं सीखा हूं, तो उससे वह दोहरी फीस मांगता। और अगर कोई कहीं सीखा हुआ नहीं होता, तो उससे आधी फीस में भी काम चल जाता। लोग हैरान थे और उन्होंने कहा कि हम जब कुछ सीखे हुए हैं तो हमसे कुछ फीस कम लेनी चाहिए।
उसने कहा, पहले तो आधी मेहनत तो इसमें करनी होगी कि आप जो सीखे हुए हैं उसे भुलाना होगा। और तब आपकी नई शुरुआत हो सकेगी।
तो यहां इस ध्यान के प्रयोग में, इस साधना में पहली बात आपको मैं यह कह दूं कि आप ध्यान के संबंध में जो भी जानते हों, कृपा करके इन तीन दिनों में उसका उपयोग न करें। वह आपकी जानकारी, जो मैं कहने जा रहा हूं उससे इतनी भिन्न है कि अगर उसका आप थोड़ा भी उपयोग करते हैं, तो मैं जो कह रहा हूं उसका फायदा नहीं हो सकेगा। तीन दिन के लिए आप समझ लें कि आप ध्यान के संबंध में कुछ भी नहीं जानते हैं। और आपने ध्यान के संबंध में जो भी जाना हुआ है उसे एक तरफ रख दें। और फिर इस प्रयोग को करें।
आपने सुना होगाः ध्यान का अर्थ एकाग्रता है।
और मैं आपको कहूंगाः ध्यान का अर्थ एकाग्रता बिल्कुल भी नहीं है।
आपने सुना होगाः ध्यान का अर्थ है चित्त को एकाग्र करना, कनसनट्रेट करना।
ध्यान का अर्थ कनसनट्रेशन नहीं है।
चित्त की दो अवस्थाएं हैं। एक अवस्था को हम चंचलता कहते हैं। चित्त
एक चीज से दूसरी चीज पर कूद जाए, दूसरी से तीसरी पर कूद जाए, इसको हम चंचलता कहते हैं। एक विचार आए, फिर दूसरा आ जाए, फिर तीसरा आ जाए, इसको हम चंचलता कहते हैं। चित्त एक ही विचार पर बना रहे, इसको हम एकाग्रता कहते हैं। और चित्त न तो अनेक चीजों पर हो, न एक चीज पर हो, उसको हम ध्यान कहते हैं। चित्त एक चीज से दूसरी पर चला जाए, तीसरी पर चला जाए--चंचलता। चित्त एक पर ही बना रहे--एकाग्रता। चित्त किसी पर न रह जाए--ध्यान।
तो ध्यान न तो चंचलता है, न एकाग्रता है। ध्यान में कुछ रह ही नहीं जाता जिस पर हम चंचल हों या जिस पर हम एकाग्र हों।
चित्त की, मैंने कहा, दो स्थितियां हैं। इसलिए ध्यान चित्त की स्थिति नहीं है। ध्यान चित्त के बाहर हो जाना है, माइंड के बाहर हो जाना है। जैसे हम यह कल्पना करें--एक सात डिब्बे रखे हुए हैं और एक बच्चा उन सात डिब्बों पर कूद रहा है। वह एक से दूसरे पर जा रहा है, दूसरे से तीसरे पर जा रहा है, यह चंचलता है। वह बच्चा एक ही डिब्बे पर कूद रहा है, यह एकाग्रता है। वह बच्चा डिब्बों पर कूद ही नहीं रहा, नीचे उतर गया, यह ध्यान है।
चंचलता में भी ऑब्जेक्ट होता है, लेकिन बदलता हुआ होता है। चंचलता में भी कोई विषय होता है, कोई विचार होता है, लेकिन बदलता हुआ होता है। एकाग्रता में भी कोई ऑब्जेक्ट होता है, कोई विचार होता है, लेकिन बदलता हुआ नहीं होता, वही होता है। ध्यान में न कोई विचार होता है, न कोई ऑब्जेक्ट होता है; न वहां बदलाहट होती है, न वहां न-बदलाहट होती है, वहां चित्त विषय से, ऑब्जेक्ट से मुक्त हो जाता है।
तो पहली बात, एकाग्रता नहीं है जो हम करने जा रहे हैं।
फिर, एकाग्रता का परिणाम जो है, वह घातक है। अगर आप चित्त को जबरदस्ती किसी एक चीज पर रोक दें--किसी मूर्ति पर, किसी विचार पर, किसी मंत्र पर, किसी भगवान के नाम पर--अगर विचार को आप जबरदस्ती रोक दें, तो एक बड़ी अदभुत घटना घटती है, जिसका आपको पता नहीं है। विचार को अगर जबरदस्ती रोका जाए, तो थोड़ी देर में उस जबरदस्ती के परिणाम में मन मूर्च्छित हो जाता है। उसे आटो-हिप्नोसिस, आत्म-सम्मोहन कहते हैं। अगर आप पांच मिनट तक एक ही चीज को देखते रहें, आपकी आंख बिल्कुल थक जाएगी। अगर आप फिर भी देखते रहें तो थोड़ी देर में आप पाएंगे कि आंख अपने आप बंद हो गई। और उस घड़ी में आप मूर्च्छित हो जाएंगे। वह एक तरह की सम्मोहन निद्रा है। वह ध्यान नहीं है।
अगर किसी भी चीज पर कोई एकाग्रता करे, तो थोड़ी देर में मूर्च्छित हो जाएगा। उस मूर्च्छा में भी एक तरह का सुख मिलता है, जैसे शराब पीने में, और किसी भी भांति की मूर्च्छा में मिलता है। जब आप मूर्च्छा के बाद होश में आएंगे, तो आपको ऐसा लगेगा, बहुत सुख था।

सुख बिल्कुल नहीं था, केवल दुख का अभाव था। केवल चिंताएं, पीड़ाएं और परेशानियां मौजूद नहीं थीं, क्योंकि आप मूर्च्छित थे। आखिर सारी दुनिया में शराब के पीछे इतना आकर्षण क्यों है? एक ही बात हैः शराब आपकी चिंताओं को, आपकी परेशानियों को मिटा देती है, क्योंकि आप मूर्च्छित होते हैं, आप होश में नहीं होते हैं। वे मिटती नहीं हैं, केवल आपकी आंखों से ओझल हो जाती हैं, क्योंकि आप मूर्च्छित हो जाते हैं।
इस तरह के ध्यान को असम्यक ध्यान मैं कहता हूं। यह ध्यान वास्तविक नहीं है। यह ध्यान का धोखा है। अगर आप मूर्च्छित हो जाएं, तो आप सम्मोहन में चले गए, हिप्नोसिस में चले गए, आप ध्यान में नहीं गए। ध्यान का अर्थ हैः परिपूर्ण जाग्रत हो जाना। ध्यान का अर्थ हैः पूरे होश से भर जाना। ध्यान का अर्थ हैः पूरे अप्रमाद की स्थिति में हो जाना, पूरी अवेयरनेस में। उसका अर्थ मूर्च्छा नहीं है। उसका अर्थ बेहोशी नहीं है। वह तब संभव होगा, जब आप एकाग्रता न करें।
तो फिर आप क्या करेंगे? अगर एकाग्रता हम नहीं करेंगे तो हम क्या करेंगे?
हम चंचलता को जानते हैं, हम एकाग्रता को भी जानते हैं। हम मंदिरों में, मस्जिदों में बैठ कर एकाग्रता करने की कोशिश भी करते हैं।
हम एक तीसरा प्रयोग करने को हैं, जिसमें हम न चंचलता करेंगे, न एकाग्रता करेंगे। हम कोई एक नई बात करना चाहते हैं। और वह यह, जैसा मैंने कल रात आपको कहा--मैंने आपको कहा कि बैठ जाएं किसी एकांत में, सारे शरीर को ढीला छोड़ दें और फिर आसपास जो आवाजें सुनाई पड़ती हैं, उन सबको चुपचाप सुनते रहें।...
शरीर को, रीढ़ को सीधा और शरीर को ऐसे ढीला छोड़ देना है, जैसे खूंटी पर हमने कोट लटका दिया हो। रीढ़ की खूंटी पर सारा शरीर बिल्कुल ढीला छूटा हुआ है। रीढ़ सीधी है और शरीर बिल्कुल ढीला है। जैसे शरीर में कोई प्राण नहीं, ऐसा ढीला छोड़ दिया है। जितना ढीला आप शरीर को छोड़ देंगे, उतनी शीघ्रता से भीतर गति होगी। जितना शरीर ढीला छूट जाता है, उतना ही शरीर का स्मरण क्षीण होने लगता है। और आपका भीतर प्रवेश संभव हो जाता है।
तो शरीर को ढीला छोड़ेंगे और फिर गहरी श्वास लेंगे। गहरी श्वास में झटके से नहीं लेना है कि तकलीफ मालूम हो। इतने जोर से नहीं लेना है कि आपको कोई परेशानी मालूम हो। इतने जोर से नहीं लेना है कि दस मिनट में आप थक जाएं। इतने आहिस्ते लेना है, इतने रिदमिक लेना है कि कोई तकलीफ न हो, कोई पीड़ा न हो। श्वास धीमे से जाए, श्वास लेना एक आनंद हो, काम न हो। उस श्वास को बड़े आनंद से, बड़ी शांति से, गहरा लेकर धीरे-धीरे गहरा छोड़ना है। उसे न तो भीतर रोकना है, न बाहर रोकना है। रोकना कहीं भी नहीं है, केवल गहरे लेना और गहरे छोड़ देना है। लेते वक्त पेट जहां ऊपर उठे, आंख बंद रखनी है और उस जगह ध्यान को जगाए रखना है कि पेट अब ऊपर उठा, अब नीचे गिरा। उसी बिंदु को चुपचाप देखते रहना है। उसको देखते-देखते मस्तिष्क के सारे तंतु शांत हो जाएंगे, सारे विचार शांत हो जाएंगे, थोड़ी देर में केवल श्वास का स्पंदन मात्र रह जाएगा। फिर तीन दिन हम प्रयोग करेंगे, उसमें गहराई रोज-रोज बढ़ती चली जाएगी।
स्मरणीय यह भी है कि हम सब इस तरह बैठेंगे कि कोई किसी को छुएगा नहीं। वस्त्र जो पेट को कसे हों उन्हें थोड़ा ढीला कर लेंगे, ताकि वे आपके पेट पर बाधा न बनें। और अगर यहां अंदर थोड़ी कम जगह मालूम पड़ती हो, तो दोनों तरफ बरांडों में चले जाएंगे। आवाज मेरी वहां पहुंचेगी, बल्कि और सुखद होगा, वहां खुली हवा होगी और आप ज्यादा एकांत में बैठ सकेंगे। और इस भांति बैठें कि कोई किसी को छूता नहीं है, कोई का किसी को धक्का न लगे, इस भांति फैल जाएं। और अगर थोड़ी जगह कम है तो बाहर आ जाएं। जगह की अड़चन की वजह से भीतर न बैठें। ये बगल के जो बरांडे हैं, बहुत साफ हैं, इनमें आप आ जाएंगे तो बड़ा लाभ होगा।
सीधा कर लें। सीधा का मतलब खींचा हुआ नहीं है। आराम से सीधा कर लें, वह कहीं झुकी हुई न हो। अच्छा हो दीवाल से न टिके कोई, अन्यथा आप अपनी रीढ़ सीधी नहीं कर पाएंगे। रीढ़ सीधी रखें, रीढ़ के ही सहारे हों। और आंख बंद कर

लें। आहिस्ते से पलकों को झप जाने दें, धीमे से पलक गिर जाने दें, आंख बंद कर लें। अब धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। बहुत आहिस्ता से, बहुत शांति से, बहुत आनंद से गहरी श्वास लें। श्वास पेट तक जाती हुई मालूम हो। पेट ऊपर उठेगा, नीचे गिरेगा। श्वास को धीरे-धीरे वापस हो जाने दें। बहुत धीमी और गहरी श्वास लें। बहुत आहिस्ता से, आराम से। श्वास पेट तक जाए, पेट ऊपर उठे, फिर धीरे से वापस हो जाए। आपके पेट का स्पंदन देख लें--कहां हो रहा है। जहां पेट ऊपर गिर रहा है, उठ रहा है, जहां पेट कंप रहा है--आंख बंद किए हुए उसी जगह पर अपने ध्यान को ले जाएं। वहीं जाग जाएं, उस जगह को देखें, उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें। उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें जहां श्वास जाकर पेट को उठा रही है। उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें। उस जगह को देखते रहें। शांति से वहीं जाग जाएं। अपने जागरण को, अपनी स्मृति को, अपने ध्यान को वहीं जगा लें। वहीं देखें। नाभि दिखाई पड़ेगी, उसका कंपन दिखेगा। वही दिखता रह जाए, केवल वही रह जाए। ठीक है, गहरी श्वास, नाभि के पास ध्यान।
मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, उससे कोई काम नहीं लेना है। मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेना है, उसे बिल्कुल ढीला छोड़ दें। मस्तिष्क से कोई भी काम नहीं लेना है, मस्तिष्क के सारे स्नायु ढीले छोड़ दें। केवल श्वास लें। जैसे हम केवल श्वास ही ले रहे हैं। केवल श्वास लें और नाभि को देखें...
बिल्कुल ठीक है। नाभि को देखते चले जाएं, नाभि को देखते चले जाएं... ।
सब शांत होता जा रहा है, सब शांत होता जा रहा है, सब शांत होता जा रहा है... ।
जल्दी न करें।

समाधि कमल
दूसरा प्रवचन

अप्रमत्त जीवन--निराधार, निरालंब, निर्विचार

प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।

असुविधा न मालूम हो, बस इतना ख्याल रखें। फिर वह सबके लिए अलग-अलग समय होगा। आराम रहे, उसमें तकलीफ न मालूम हो।

प्रश्नः पीठ झुक जाए तो?

कोई हर्जा नहीं है यूं, तकलीफ न हो आपको बस इस तरह से, कोई तकलीफ की बात नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

सिर्फ गहरा नहीं लेना है, धीमा और गहरा।

प्रश्नः श्वास लेते वक्त आधार...

चित्त की तो आदत है कि उसे कुछ न कुछ आधार चाहिए। अगर कोई भी आधार न हो
तो चित्त की मृत्यु हो जाएगी। उसी मृत्यु में आपको समाधि का अनुभव होगा। जब चित्त बिल्कुल मर जाएगा, बिल्कुल शून्य होगा, तब आपको आत्मा का पता चलेगा। तो चित्त अपने जीवन के लिए भोजन चाहता है। वह आधार मांगता है, कोई आधार हो। राम-राम जपते रहें, तो चित्त को बड़ी प्रसन्नता है, कोई दिक्कत नहीं है। कोई भजन गाते रहें, तो चित्त को कोई कठिनाई नहीं है।
जो चित्त, कोई न कोई उसे भोजन मिल जाए, तो वह बना रहेगा। और वह बना रहेगा तो आत्मा का अनुभव नहीं होगा। तो उससे भोजन छीनना है, उसे निराधार करना है, वही हमारी साधना है। अब हम ही उसको आधार दे दें, तो चित्त तो बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लेगा। एक आधार दे दें तो जरा कम प्रसन्नता से, बहुत आधार दे दें तो बहुत प्रसन्नता से। चंचलता में बहुत प्रसन्न रहता है। एकाग्रता में उतना प्रसन्न नहीं रहता, क्योंकि हम उसके कई आधार छीन कर एक दे रहे हैं। ध्यान में और भी दिक्कत उसको मालूम होती है, क्योंकि हम आधार ही छीन रहे हैं।
यह आप बात समझे न?
वह बिना आधार के रह नहीं सकेगा। और उसे अपने मरने का डर लगता है। और वह बिल्कुल स्वाभाविक है। और यही तपश्चर्या है कि जब वह आधार मांगे, तब हम साहस करके उसे आधार न दें। वह आधार मांगेगा। हम उसे आधार न दें।
तो यह हो सकता है कि शुरू-शुरू में हमारे बिना दिए भी वह आधार पकड़ ले। लेकिन वे आधार देर तक नहीं टिकेंगे। जो आधार हम उसे देते हैं वह तो टिक सकता है। जैसे हमने ही अगर उसको राम-राम जपना सिखाया, तब तो वह टिकेगा। हमने ही अरिहंत-अरिहंत जपना सिखाया, तब तो वह टिकेगा। क्योंकि हम ही उसे दे रहे हैं। और हम चाह रहे हैं कि वह टिके। लेकिन समझ लें कि अगर उसने अपने आप आधार खोजने की कोशिश भी की--जैसे बाहर आवाजें आती हैं, उनको ही उसने आधार बना लिया--और आप आधार देने को उत्सुक नहीं हैं, बल्कि आप उसे निराधार करने में उत्सुक हैं, तो यह आधार थोड़ी-बहुत देर से ज्यादा टिकेगा नहीं, यह आधार चला जाएगा अपने आप।
हमें आधार नहीं देना है। चित्त आधार खोजता हो, तो भी हम जो प्रयोग कर रहे हैं, हमें वही प्रयोग करना है। उसके आधार को खोजने में सहयोगी नहीं होना है। तो वह अपने आप निराधार हो जाएगा। निराधार हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। जैसे ही उसके आधार गए कि वह मिट जाएगा। जिस क्षण चित्त बिल्कुल ही नहीं होता है, वह जो नो-माइंड की स्थिति होती है, जब कोई चित्त नहीं रह गया, उस वक्त आप अपने को जानते हैं।

तो अपने को जानना हो तो चित्त को दूसरी चीजें, जिन्हें वह जानता है, उनसे मुक्त कर देना जरूरी है। क्योंकि चित्त जो है अगर वह दूसरी चीजों को जान रहा है, तो स्वयं को आप नहीं जान सकेंगे। मैं अगर आप सबको देख रहा हूं, तो फिर मैं अपने को नहीं देख सकूंगा। एक घड़ी ऐसी आनी चाहिए कि मुझे आप कोई भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। जब मुझे कोई भी नहीं दिखाई पड़ रहा है, तब मैं किसको देखूंगा? देखने की शक्ति तो मेरी मौजूद रहेगी। देखने की शक्ति आप में नहीं है मेरी। आप मेरे दृश्य हैं, आप मेरे देखने की शक्ति नहीं हैं; आप मेरे दर्शन नहीं हैं, मेरे दृश्य हैं। आप जब समाप्त हो जाएंगे, मेरे सामने मौजूद न होंगे, तब मेरा दर्शन कहां जाएगा? मेरा दर्शन तो मेरे भीतर रहेगा, देखने की शक्ति तो मेरे पास रहेगी। वह देखने की शक्ति, जब देखने को कुछ भी न होगा, तब किसको देखेगी? तब वह देखने की शक्ति स्वयं को देखेगी। आत्म-दर्शन तब होता है, जब सब पर-दर्शन से हम मुक्त हो जाते हैं। स्वयं
का ज्ञान तब होता है, जब हम सारे पर-ज्ञान से शून्य हो जाते हैं। ध्यान अपने में तब आता है, जब हम उसे सब आधारों से छीन लेते हैं और निराधार कर देते हैं।
यह आप बात समझे न?
इसी को हम सामायिक कहते हैं या इसी को समाधि कहते हैं। जब हमने सारे आधार छीन लिए ध्यान के तो वह कहां जाएगा? हम उसके एक-एक आधार छीनते चले जाते हैं। आखिर में वह निराधार हो जाता है। जब निराधार हो जाता है तो अपने पर खड़ा होना पड़ता है। वह स्व-आधार हो जाता है। निराधार होना स्व-आधार हो जाना है। निरालंब होना स्वावलंब हो जाना है। तो हमें उसे निराधार करना है, निरालंब करना है, ताकि वह स्वयं में थिर हो जाए, अपने में खड़ा हो जाए। वह अपने में खड़े होने का नाम समाधि है।
और जब तक आप उसे कोई आधार देते रहेंगे, वह दूसरे में खड़ा रहेगा। आप फिर स्व-ज्ञान को उपलब्ध नहीं होंगे।
तो कोई भगवान का नाम आपको भगवत्ता तक नहीं ले जाएगा, वह नाम चित्त का
ही एक रूप है। वह भी एक शब्द है। कोई मंत्र आपको आत्मज्ञान तक नहीं ले जाएगा। वह भी चित्त की ही एक प्रक्रिया है। वह भी एक विचार है। जब आप निर्विचार होंगे, कोई भी विचार आपके भीतर नहीं होगा, तब आप कहां होंगे? इसे थोड़ा सोचिए। जब आपके भीतर कोई विचार न होगा, तो आप कहां होंगे? आप मिट तो न जाएंगे। उस निर्विचार क्षण में आप कहां होंगे? आप अपने में होंगे। उस अपने में होने का नाम सामायिक है। उस अपने में होने का नाम समाधि है।
तो मैं कोई आधार आपको देने को नहीं कह रहा। आपने प्रयोग किए होंगे, उनमें आधार रहे होंगे। और जिन प्रयोगों में भी आधार हों...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुंडलिनी शक्ति कहा है, कुंडलिनी इसलिए कि वह अपने में ही कुंडल मारे सोई हुई है। वह कोई सर्प नहीं है, लेकिन जैसे सर्प सोया रहता है अपने में कुंडल मार कर, वैसे हमारी आत्म-शक्ति अपने में ही छिपी हुई सोई हुई है। वह शक्ति जाग्रत हो जाती है।
हम सारे लोग सोए हुए लोग हैं। चलते हैं तो सोए हुए चलते हैं। हम चल रहे हैं रास्ते पर और हमारे भीतर अनेक विचार चल रहे हैं, हम उनमें ही सोए हुए हैं। हमें वे विचार घेरे हुए हैं। हम रास्ते पर चल जरूर रहे हैं, लेकिन हम लगभग सोए हुए चल रहे हैं। हम अपने कपड़े पहन रहे हैं, लेकिन सोए हुए पहन रहे हैं। हम खाना खा रहे हैं, लेकिन सोए हुए खा रहे हैं। सोए हुए होने का अर्थ हैः हमारे भीतर उस समय और कुछ भी चल रहा है, जो हमको घेरे हुए है।
आपने कभी अनुभव किया होगाः आप रास्ते पर चले जा रहे हैं, कोई करीब से निकल गया, आपने देखा ही नहीं। आपकी आंख खुली हुई है, फिर आपने देखा कैसे नहीं? आपने कभी देखा होगा पढ़ते समयः आप पूरा पन्ना पढ़ गए, और बाद में आपको याद आया कि आपने कुछ भी नहीं पढ़ा। यह सोया हुआ पढ़ना था। आप पढ़ जरूर रहे थे, आंख देख रही थी, लेकिन चित्त कहीं और संलग्न था, इसलिए आप करीब-करीब देख जरूर रहे थे, लेकिन सोए हुए देख रहे थे। आप रास्ते पर चल रहे हैं, कोई करीब

से निकल गया, वह आपको दिखाई नहीं पड़ा। आपकी आंख बराबर देख रही थी, लेकिन आप भीतर सोए हुए थे इसलिए दिखाई नहीं पड़ा। हमारी सारी क्रियाएं सोई हुई हो रही हैं।
महावीर ने इन क्रियाओं को प्रमत्त क्रियाएं कहा है। ये सोई हुई क्रियाएं, इसको उन्होंने प्रमाद कहा है। हम सोए हुए हैं। इस सोए हुए में अगर जागरण का हम प्रयोग करें और हम अपनी क्रियाओं को जाग्रत करने की चेष्टा करें, तो आपका सतत चौबीस घंटे का जीवन ध्यान में परिणत हो जाएगा। तो यह भी मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं कि यहां इन तीन दिनों में
आप थोड़ा इसका भी प्रयोग करेंगे। जब आप खाना खा रहे हों तो सिर्फ ख्याल रखें कि मैं सिर्फ खाना ही खा रहा हूं। चित्त में और कुछ न चले, सिर्फ खाना ही खाना हो रहा है। मैंने कौर बनाया है तो मैं सिर्फ कौर ही बना रहा हूं, मैंने उठाया है तो मैं सिर्फ उठा रहा हूं। और मेरे चित्त में कुछ भी नहीं, वही क्रिया मात्र हो रही है।
गांधीजी चरखा कातते थे, तो वे कहते थे, चरखा कातना मेरा ध्यान है, वह मेरी प्रार्थना है। और उनका मतलब यह था कि जब मैं चरखा कातता हूं तो बस चरखा ही कातता हूं। सूत कतता है तो सूत के साथ मेरी चेतना ऊपर तक आती है, फिर लिपटता है तो मेरी चेतना उसके साथ वापस चली जाती है।
जैसा मैंने अभी आपसे कहा कि आप नाभि के स्पंदन को देखें। श्वास जाएगी
तो पेट उठेगा, देखें। फिर पेट गिरेगा तो देखें। वैसे ही वे सूत के धागे को देखते रहे हैं। अगर आप सूत कातते वक्त इतना कर पाएं, तो आप पाएंगे सूत कातना ध्यान हो गया।
वहां चीन में एक साधु हुआ। वह जब अपने गुरु के आश्रम गया हुआ था, तो उसके गुरु ने उससे कहा कि तुम अगर सच में साधु होना चाहते हो और केवल साधु दिखना नहीं चाहते हो, तो तुम्हें लंबा समय लगेगा। अगर तुम दिखना चाहते हो, तो आज ही हो सकते हो। और अगर साधु होना है, तो तुम्हें लंबा समय लगेगा। तुम्हारा जो चुनाव हो।
उस युवक ने कहा, मैं होना चाहता हूं। दिख कर क्या करूंगा?
तो फिर, उसने कहा, तुम एक काम करो। यह आश्रम, पांच सौ साधु हैं यहां, इनका जो यह भोजनालय है, इसमें बहुत चावल कूटने की जरूरत पड़ती है, तुम चावल कूटो। और तुम सिर्फ चावल कूटो! और तुम कुछ मत करना! तुम सुबह उठना, चावल कूटना, जब थक जाओ तो सो जाना, फिर जब तुम उठो तो अपना चावल कूटना। और एक ही बात स्मरण रखना कि सिर्फ चावल कूटना, और कुछ मत करना। चित्त में और कुछ न चले। बस चावल ही कूटते चले जाना। पूरा चित्त चावल कूटने में ही संलग्न हो, चित्त की कोई शक्ति बाकी न बच जाए जो कुछ और कर रही हो। पूरे चित्त की शक्ति चावल ही कूटे। तुम्हारा मूसल उठे, तुम देखते रहना; नीचे जाए तो तुम देखते रहना, देखते रहना। और दुबारा मेरे पास मत आना। जरूरत होगी तो मैं आऊंगा।
वह आदमी बारह वर्षों तक चावल कूटता रहा अपने आश्रम के पीछे। उसे लोग भूल ही गए आश्रम में कि वह है भी, या कभी साधु होने आया था। उसे लोग चावल कूटने वाला करके ही जानने लगे। लेकिन एक अदभुत बात हुई। वह रोज चावल ही कूटता रहा; और उसने कुछ भी नहीं किया। वह किसी से बात भी नहीं करता, कोई ग्रंथ भी नहीं पढ़ता। वह चुपचाप आश्रम के पीछे एक एकांत कोने में चावल कूटता रहता। कुट जाते, दे आता; फिर ले आता, फिर कूटता। थक जाता, सो जाता; सुबह उठता, फिर कूटता। आप सोचते हैं, कितने दिन! बारह वर्ष लंबा वक्त होता है। वह कूटता रहा, कूटता रहा, धीरे-धीरे चावल कूटना ही शेष रह गया। चित्त अब कुछ करता ही नहीं था, कुछ सोचता ही नहीं था, वह चावल कूटने में आप्त था। और चावल कूटने में सोचना क्या है? चावल कूटने में विचार की और थिंकिंग की गुंजाइश क्या है? कूटना है, सोचना क्या है? तो वह कूटता था। पहले सारे विचार चले गए, फिर विचार ही चला गया, फिर वह कूटना ही रह गया। अब वह परिपूर्ण जागा हुआ चावल ही कूटता रहता।
बारह वर्ष बाद उसके गुरु की मृत्यु करीब आई, उसने घोषणा की कि मैं फलां दिन प्राण छोड़ दूंगा, तो मैं अपने बाद किसी को चुनना चाहता हूं। तो उसने कहा कि जो व्यक्ति चार पंक्तियों में धर्म के सारभूत अंश को लिख कर

मुझे दे देगा, मैं उसे अपनी जगह बिठा दूंगा। लेकिन स्मरण रहे कि वे चार पंक्तियां चोरी की हुई और उधार की न हों। वे तुम्हारी अपनी अनुभूति से हों। इतना मैं जानता हूं, इतना मैं पहचानता हूं कि कौन सी पंक्तियां अनुभूति से आई हैं, कौन सी शास्त्र से आई हैं। तो, उसने कहा, धोखा नहीं चलेगा कि कोई शास्त्र की चार पंक्तियां लिख लाए। क्योंकि शास्त्रों में तो सब लिखा हुआ है। लेकिन मैं पहचानता हूं।
और आप हैरान होंगे कि किसी शास्त्र में इतना पूरा सत्य नहीं लिखा हुआ
है कि आप उसकी पंक्तियां उद्धृत कर दें और समझ लें कि सत्य हो गया। उसमें कुछ शेष है। कोई शास्त्र की पंक्ति पूर्ण नहीं है। उसमें कुछ शेष है, जो आपको अपनी अनुभूति से जोड़ना होता है। और वही परीक्षा है। और गुरु जान लेता है जब आप उस पंक्ति को, वह भी जोड़ देते हैं जो शास्त्र में लिखा हुआ नहीं है और अनुभव से आता है, तब गुरु जान लेता है कि अब पंक्ति आपसे आ रही है। इसलिए जान कर किसी शास्त्र को पूरा नहीं लिखा गया है। कोई शास्त्र पूरा नहीं लिखा गया है। यह बड़ी समझ की बात है, उसमें कुछ छोड़ दिया गया है, जो आप अपने अनुभव से जोड़ेंगे। जो केवल शास्त्र को दोहरा देता है, वह नासमझ है। उसमें तो सत्य है ही नहीं; कुछ हिस्सा छूटा हुआ है।
तो उस गुरु ने कहा कि तुम्हारे शास्त्र की पंक्तियां काम नहीं करेंगी।
पांच सौ लोग थे, उसमें बड़े विद्वान लोग थे। लेकिन वे जानते थे कि वे जो
भी जानते हैं वह ग्रंथ से जानते हैं, स्वयं का जाना हुआ कुछ भी नहीं है। सिर्फ एक व्यक्ति ने हिम्मत की, उसने जाकर चार पंक्तियां लिख दीं। उसने भी डर के मारे खुद लिख कर न दीं, उसके दरवाजे पर लिख आया। रात को गुरु सोता था, उसके दरवाजे पर लिख आया। वे चार पंक्तियां थीं, अदभुत थीं। उसने चार पंक्तियां लिखीं--कि मनुष्य का मन एक दर्पण की भांति है, उस पर विचार की और विकार की धूल जम जाती है, उस धूल को हम झाड़ दें, धर्म इससे ज्यादा नहीं है। ये पंक्तियां सुंदर हैं। लेकिन सुबह गुरु ने उठ कर कहा, यह कचरा यहां किसने लिख दिया? यह सब कचरा है, बकवास है, इसे पोंछ दो यहां से।
सारे आश्रम में खबर फैल गई। वे पंक्तियां अदभुत थीं, मूल्यवान थीं, और धर्म का अर्थ उनमें प्रकट था। सारे आश्रम के लोग चर्चा किए। कुछ भिक्षु निकलते थे उस चावल कूटने वाले के पास से और बात करते थे कि इतनी बहुमूल्य पंक्तियों को भी उन्होंने इनकार कर दिया। इसमें तो धर्म आ गया। क्योंकि उसने लिखाः मनुष्य का मन एक दर्पण की तरह है, जिस पर विकार की और विचार की धूल जम जाती है, इस धूल को झाड़ दें, धर्म इससे ज्यादा नहीं है।
तो वह चावल कूटने वाले भिक्षु ने कहा, सच में ही कचरा है।
यह बारह वर्षों में वह पहली दफा बोला। जिसने सुना उसने कहा कि तुमको
भी क्या सत्य का पता चल गया चावल कूटते-कूटते? जो शास्त्रों में जीवन गंवा दिए हैं उन्होंने लिखा है!
उसने कहा, शास्त्रों में जीवन गंवा कर भला लिखा हो, लेकिन पंक्तियां बिल्कुल बेकार हैं। पंक्तियां ये होनी चाहिए! और उसने कहा कि मनुष्य के मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह धर्म को जानता है। उसने कहा, मनुष्य के मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह धर्म को जानता है। और उसके गुरु ने उसे अंगीकार कर लिया और वह चावल कूटने वाला उसके बाद उस आश्रम का प्रधान हुआ।
ध्यान के क्रमशः प्रयोग के बाद आपको दिखाई पड़ेगा--मन है ही नहीं। मन
एक भ्रम था। उस पर धूल जमी है, यह दूसरा भ्रम था। मन है ही नहीं। और जब आपको यह पता चलेगा कि मन है ही नहीं, तो आप एक अलौकिक सत्ता के अनुभव से भर जाएंगे। वही अनुभव केवल मनुष्य को धर्म में ले जाता है। और वह अनुभव क्रियाओं में जाग जाने से संभव होता है।
तो यहां तीन दिन हम रहेंगे, यह मैं आपसे आकांक्षा करूंगा कि इन तीन दिनों में रास्ते पर आप चलने जाएं तो होश से चलें। होश से चलने का मतलबः आप पूरे होश से चलें कि सिर्फ चल रहे हैं, और कुछ नहीं कर रहे हैं। पैर उठ रहा है तो आपको पता है, आप रास्ते पर मुड़ रहे हैं तो आपको पता है। आप अंधे और सोए हुए आदमी की तरह नहीं चले जा रहे हैं। आप कोई बात कह रहे हैं तो आपको

पता है। और आप हैरान होंगे, अगर इस बोधपूर्वक जीवन-स्थिति का आप निर्माण कर लें, आपसे बुराई होनी बंद हो जाएगी। आप किसी को गाली नहीं दे सकते, अगर आपको पता हो जाए गाली देने के पहले कि आप गाली दे रहे हैं। यह असंभव है। गाली आप बेहोशी में और सोने में दे पाते हैं। आप क्रुद्ध नहीं हो सकते किसी पर, अगर आपको पता हो जाए कि आप क्रोध में आ रहे हैं। वह सिर्फ मूर्च्छा में संभव होता है। मेरी तो पाप की परिभाषा यह है कि वे क्रियाएं जो आप मूर्च्छित करते हैं, पाप है। और वे क्रियाएं जो आप परिपूर्ण जागरूक रह कर करते हैं, पुण्य है। क्योंकि परिपूर्ण जागरूक रह कर पाप करना असंभव है। परिपूर्ण होश से भरे रह कर कोई भी पाप करना असंभव है।
तो महावीर या बुद्ध पाप को छोड़ते नहीं हैं, वे केवल जाग गए हैं इसलिए पाप उनसे नहीं होते हैं। इसे थोड़ा समझ लेना इस बात को। वे कोई भी पाप को छोड़ते नहीं हैं। उन्होंने हिंसा नहीं छोड़ी है, उन्होंने झूठ नहीं छोड़ा है, उन्होंने क्रोध नहीं छोड़ा है। उन्होंने तो जागरण का प्रयोग किया है। ध्यान के प्रयोग और जागरण के प्रयोग से वे इतने जाग गए हैं कि अब पाप होना असंभव है। पाप के लिए मूर्च्छा अनिवार्य है। कोई भी बुरा काम करने के लिए आपका बेहोश होना जरूरी है। सब बुरे कामों के पहले आप एकदम बेहोश हो जाते हैं। स्मरण रखना, जब आप क्रोध से भरते हैं, आप बेहोश हो जाते हैं, फिर क्रोध संभव हो पाता है। जब आप होश में आते हैं, आप पछताते हैं। काश यह होश उसी वक्त मौजूद होता, क्रोध असंभव हो जाता!
तो होश का एक जागरण इन तीन दिनों में करें। और ये तीनों प्रयोग जो ध्यान के हैं, ये क्रमशः आपके भीतर होश को जगाने के लिए हैं। उस जगे हुए होश का वास्तविक उपयोग अपनी छोटी-छोटी क्रियाओं में है। आप घर में बुहारी दे रहे हैं तो जाग कर दें, होशपूर्वक दें। बुहारी दें, वह आपका ध्यान हो जाएगी। आप कपड़े पहन रहे हैं, होशपूर्वक पहनें, बेहोशी से न पहनें, कि आपका चित्त कुछ और कर रहा है और आपने कपड़े पहन लिए। छोटी-छोटी क्रियाओं में जागरण आ जाए तो समस्त चौबीस घंटे ध्यान में परिणत हो जाते हैं।
वे जो तीन ध्यान मैं कह रहा हूं, वे तीनों ध्यान इस चौथे ध्यान को पैदा करने के लिए भूमिका मात्र हैं। असली चीज यह है, असली चीज यह चौथी चीज है कि आपके चौबीस घंटे के जीवन में होश परिव्याप्त हो जाए। आप अप्रमत्त हो जाएं, अप्रमाद की स्थिति हो, अवेयरनेस हो। आप जो भी करें, जो भी आपसे हो, होशपूर्वक हो--स्नान करने से लेकर कपड़े पहनने तक, भोजन से लेकर सोने तक। बुद्ध कहते थे, मैं रात को करवट भी लेता हूं तो जानता हूं।
और लोगों ने, बीस-तीस वर्ष जो उनके करीब थे, उन्होंने देखा कि वे जिस पैर पर पैर रख कर सो गए हैं, तो रात भर वह पैर उसी पर रखा हुआ है। वे जिस करवट सो गए हैं, तो वे उसी करवट सोए हुए हैं, सुबह वे उसी करवट उठ आए हैं।...

समाधि कमल
तीसरा प्रवचन

सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा

सम्यक आहार से अर्थ है कि भोजन इतना न हो कि वह शरीर की सारी शक्तियों
को पचाने के लिए आमंत्रित कर ले। भोजन के बाद इसीलिए नींद मालूम होती है, क्योंकि शरीर की सारी शक्ति भोजन को पचाने में लग जाती है, इसलिए सारा शरीर शिथिल होने लगता है। जितनी शक्ति है शरीर के पास वह पचाने में लग जाती है, इसलिए शरीर के लिए जरूरी होता है कि वह सो जाए, और कोई काम न करे। अगर वह काम करेगा तो पाचन में बाधा होगी, क्योंकि उतनी शक्ति काम में लगेगी और पाचन नहीं हो सकेगा।
सम्यक आहार का अर्थ हैः इतना भोजन कि वह आपको नींद न लाए। उसका अर्थ हुआ इतना भोजन, उसकी जो परिसीमा है वह इतनी कि पेट, जब आप भोजन करें, तो भोजन के बाद पेट का आपको पता न चले। अगर आपको बोध होता हो पेट का, तो समझना चाहिए आपने ज्यादा भोजन कर लिया। जैसा कल मैंने आपको कहा, शरीर के उसी अंग का बोध होता है जो अस्वस्थ हो जाए। शरीर के उस अंग का बोध नहीं होता जो स्वस्थ हो। मस्तिष्क में दर्द है तो मस्तिष्क का पता चलेगा, हाथ में तकलीफ है तो हाथ का पता चलेगा, पैर थक गए हैं तो पैरों का पता चलेगा। जो अंग अपनी ठीक स्थिति में है, उसका आपको पता नहीं चलेगा। तो भोजन के बाद अगर आपको पेट का पता चलता हो, तो समझना चाहिए आपने भोजन सम्यक नहीं लिया।
तो पहली बात हैः सम्यक आहार। भोजन सम्यक हो तो आपको ध्यान में बड़ी सुगमता, सरलता और गहराई उत्पन्न होगी।
इससे ज्यादा मैं कुछ और नहीं कहूंगा। यह आप पर छोड़ दूंगा--आप क्या खाते हैं, पीते हैं। इतना ही स्मरण रखें कि वह हलका हो और पेट पर भारी न पड़ता हो। न केवल वह ध्यान में उपयोगी होगा, वह आपके स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद होगा।
मैंने एक उक्ति सुनी है, किसी बड़े चिकित्सक ने कहा है--कि लोग जितना भोजन करते हैं, उसमें से आधे से उनका पेट भरता है, आधे से डाक्टरों का पेट भरता है। जितना भोजन हम करते हैं, उससे आधे से हमारा पेट भरता है, आधे से डाक्टरों का पेट भरता है। क्योंकि वह शेष आधा हमें बीमार करता है और हमें डाक्टरों की तरफ ले जाता है।
तो डाक्टरों का पेट न भरे, इतना भोजन, उसको मैं सम्यक आहार कहता हूं। यानी करीब-करीब, जितना आप लेते हैं, उससे आधा उपयोगी होगा। करीब-करीब, कोई मोटी बात नहीं कह रहा हूं। करीब-करीब, जितना आप लेते हैं, उससे आधा उपयोगी होगा।

प्रश्नः यहां तो खाने की इच्छा ज्यादा होती है।

हां, खाने की इच्छा ही भोजन को असम्यक कर देती है। भोजन कितना जरूरी है, यह एक तरफ रह जाता है और खाने का रस ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। हममें से बहुत ही कम लोग शरीर को भोजन देते हैं, हममें से अधिक लोग स्वाद को भोजन देते हैं।
स्वाद शरीर की आवश्यकता नहीं है। स्वाद हमारे मन की वासना है। और स्वाद के कारण हम ज्यादा खा लेते हैं। थोड़ा होशपूर्वक करेंगे तो ऐसा नहीं होगा। थोड़ा होशपूर्वक करेंगे और इतना स्मरण रखेंगे कि शरीर के लिए भी हितकर हो, मन के लिए भी हितकर हो, तो बहुत कठिन बात नहीं है। यानी इतनी कठिन बात नहीं है जितना हम सोचते हैं।
फिर अगर ज्यादा खाने की इच्छा होती हो तो ज्यादा अच्छा है कि बहुत चबा
कर खाएं। तो आप ज्यादा देर तक खाएंगे। आखिर ज्यादा देर तक, एक आदमी आधा घंटे तक खाना खाने में क्या रस पाता होगा? आधा घंटे तक उसको स्वाद का अनुभव होता है। तो जितना भोजन आप पंद्रह मिनट में कर लेते हैं, उतने भोजन को आधा घंटे में चबा कर करें। तो आपको रस आधा घंटे भोजन करने का मिलेगा और लाभ बहुत ज्यादा हो जाएंगे। लाभ बहुत ज्यादा ये हो जाएंगे, वह चबा हुआ

भोजन सुपाच्य होगा, वह पेट को भारी नहीं करेगा, कम मात्रा में आपके शरीर को ज्यादा पोषण मिलेगा, शरीर ज्यादा स्वस्थ होगा। और जो भोजन शरीर को ज्यादा स्वस्थ करता हो, वह भोजन चित्त को शांत करने में सहयोगी हो जाता है। अगर शरीर परिपूर्ण निरोग स्थिति में हो, तो चित्त का शांत हो जाना बहुत आसान है, कठिन नहीं है। चित्त की अशांति का बहुत कारण शारीरिक होता है।
तो वह जो ताराचंद्र भाई ने पूछा, यह संभव है कि कल उनको ठीक से न हुआ हो। उसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो उन्होंने भोजन ज्यादा किया, कल सांझ को वे टहले भी ज्यादा। उसकी थकान भी नुकसान पहुंचाएगी।
सम्यक आहार हो, सम्यक व्यायाम भी हो। सम्यक व्यायाम का अर्थ है कि आप इतना श्रम करें कि श्रम आपको थकान का बोध न दे। जिस सीमा पर श्रम थकान का बोध देने लगे, समझना चाहिए शरीर उस सीमा तक श्रम करने को राजी नहीं है। सम्यक व्यायाम न हो तो भी ध्यान में असुविधा और बाधा होगी। अगर बिल्कुल व्यायाम न हो तो भी बाधा होगी, अगर अतिशय हो जाए तो भी बाधा होगी। सम्यक का अर्थ हैः बिल्कुल संतुलित, बिल्कुल बीच में, बिल्कुल माध्यमिक।
जो बिल्कुल श्रम नहीं करता, उसके शरीर में, उसके चित्त में एक तरह का आलस्य छाया रहेगा। वह आलस्य बाधा होगा। जिसने बहुत ज्यादा श्रम कर लिया है, उसके चित्त और शरीर में एक तरह की थकान होगी, वह थकान बाधा होगी। अगर आप दिन भर कोई श्रम नहीं किए हैं तो भी आपको रात में नींद नहीं आएगी और अगर आप अति श्रम कर लिए हैं तो भी नींद नहीं आएगी। दोनों स्थितियों में विश्राम को बाधा पहुंच जाएगी। और उसी भांति दोनों स्थितियों में ध्यान को भी बाधा पहुंच जाएगी।
तो सम्यक आहार हो, सम्यक व्यायाम हो और सम्यक निद्रा हो।
सम्यक निद्रा का अर्थ हर एक के लिए अलग होगा--जैसे सम्यक आहार का अलग होगा, सम्यक व्यायाम का भी अलग होगा।
हमारे मुल्क में निद्रा के प्रति कुछ बुरी धारणा है। कम से कम साधकों
के मन में निद्रा के प्रति बुरी धारणा है। उनका ख्याल है, निद्रा जो है वह पाप ही है। जितनी कम ली जाए उतना अच्छा।
यह बात गलत है। न तो निद्रा का ज्यादा लेना अच्छा है। अगर ज्यादा निद्रा हो जाएगी तो उसका परिणाम होगा कि दिन भर आपमें एक ताजगी का अभाव रहेगा, शरीर बहुत शिथिल मालूम होगा, मस्तिष्क भारी मालूम होगा। और अगर निद्रा कम हुई तो वह कम निद्रा पूरा होने की दिन भर कोशिश करेगी। और उसकी वजह से आप दिन भर उनींदे अनुभव करेंगे।
अभी कुछ लोगों ने मुझे कहा कि ध्यान में उन्हें नींद आ गई। ध्यान में नींद तभी आ सकती है जब आपकी निद्रा कम हो रही हो, नहीं तो नींद नहीं आ सकती। अगर आपने रात्रि निद्रा कम ली है, तो जब आप ध्यान करने बैठेंगे--शरीर शिथिल होगा, चित्त शांत होगा--पहला ही काम होगा कि नींद आ जाएगी। क्योंकि नींद के लिए भी ये दो बातें जरूरी हैं कि शरीर शिथिल हो और चित्त थोड़ा शांत हो। अगर चित्त बहुत अशांत है, चिंतित है, चिंताओं से भरा है, तो नींद विलीन हो जाती है। अगर शरीर में बहुत टेंशन्स, बहुत तनाव हैं, तो नींद विलीन हो जाती है। तो नींद के लिए वे दो गुण, लक्षण अनिवार्य हैं--जब कि चित्त शांत हो और शरीर शिथिल हो। ध्यान के लिए भी वे जरूरी हैं कि चित्त शांत हो और शरीर शिथिल हो। ये दोनों प्रारंभिक सीढ़ियां दोनों के लिए जरूरी हैं। तो जिसकी नींद कम है वह इन दो सीढ़ियों के बाद तत्क्षण निद्रा की दिशा में चला जाएगा। लेकिन जिसकी निद्रा पूर्ण हो गई है, वह निद्रा में तो नहीं जाएगा, वह फिर ध्यान में जा सकेगा। ध्यान और निद्रा की प्राथमिक अवस्थाएं वे ही हैं, एक सी हैं। अंतिम अवस्था में भेद है। शरीर शिथिल होगा, चित्त शांत होगा, निद्रा में मूर्च्छा आ जाएगी। शरीर शिथिल होगा, चित्त शांत होगा, ध्यान में जागृति आ जाएगी। वह जागृति और मूर्च्छा का भेद है पीछे। लेकिन प्राथमिक दो चरण दोनों में समान हैं।
इसलिए निद्रा भी सम्यक हो। और यह हर एक को अपने लिए तय कर लेना चाहिए थोड़े दिन प्रयोग करके कि कितनी नींद उसे जरूरी है। बच्चे अठारह-बीस घंटे सोएंगे, फिर कम होती जाएगी, फिर दस-बारह घंटे रह जाएगी, फिर आठ घंटे रह जाएगी, फिर वृद्ध होते-होते वह चार-पांच घंटे रह जाएगी। और इसलिए यह धारणा

भी आपकी गलत है कि कम सोना अच्छा है; क्योंकि अगर आप युवावस्था में कम सोने लगते हैं तो वृद्धावस्था जल्दी आ जाएगी, वह वृद्धावस्था का लक्षण है। इसलिए कभी भूल कर यह प्रयोग न करें कि आप कम सोने की चेष्टा करें। जैसा धार्मिक लोग, जो धर्म में उत्सुक हो जाते हैं, वे करना शुरू कर देते हैं। और इसमें भी गौरव अनुभव करते हैं कि हम तीन घंटे सोते हैं कि चार घंटे, कि हम सिर्फ पांच ही घंटे सोते हैं, कि हम कोई बड़ी भारी बात साध रहे हैं। वे सिर्फ नासमझी कर रहे हैं।
शरीर को निद्रा की जरूरत तब कम रहती है, जब उसमें नये सेल्स, नये कोष्ठ बनना बंद हो जाते हैं। बच्चा अठारह घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है। मां के पेट में वह चौबीस घंटे सोता है। उस वक्त उसके शरीर में निर्माण हो रहा है। सारी शक्तियां निर्माण कर रही हैं। इसलिए जागने की फुर्सत नहीं है। फिर जैसे-जैसे शरीर की निर्माणकारी शक्तियां कम होने लगती हैं और शरीर की विध्वंस की शक्तियां तीव्र होने लगती हैं, यानी शरीर में ज्यादा सेल्स टूटते हैं और कम बनते हैं, वैसे-वैसे नींद कम होती चली जाती है। बुढ़ापे में सेल्स टूटते ही हैं, बनते नहीं हैं, इसलिए नींद खतम हो जाती है। तो नींद का कम हो जाना कोई अच्छा लक्षण नहीं है।
लेकिन एक और कारण से भी नींद कम हो सकती है। तो नींद आपको कम करना नहीं है, आपको तो पूरा लेना है जितना आपके लिए जरूरी मालूम हो। कम से कम सात घंटा--कम से कम प्रत्येक के लिए जरूरी। ज्यादा से ज्यादा आठ घंटे, कम से कम छह घंटे, इससे कम नहीं, इससे ज्यादा नहीं, सामान्यतः। अगर आप बहुत ठीक से सम्यकरूपेण चौबीस घंटे का जीवन जीए हैं, तो यह हो सकता है नींद आपकी छह घंटे में पूरी हो जाए। वह अपने आप छह घंटे में पूरी हो जाती हो और छह घंटे के बाद आपको कोई वजह न मालूम होती हो पड़े रहने की, तो उसका अर्थ यह है कि आप इतने शांत हैं और आप इतने व्यवस्थित हैं कि शरीर के बहुत से सेल्स नहीं टूट रहे हैं, और इसलिए नींद आपकी अल्प हो गई है। अल्प निद्रा नहीं है जरूरी, अगर ध्यान के और शांत जीवन के प्रयोग से नींद थोड़ी कम हो जाए तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन अगर आप कोशिश करके कर लें तो हर्ज है। और इस सदी में खासकर हमारी तीन-चार चीजों पर ही हमला हो गया है। मैंने कहाः सम्यक व्यायाम, सम्यक आहार और सम्यक निद्रा। ये तीनों चीजें हमारी सभ्यता ने तोड़ दी हैं।
निद्रा पर तो बहुत आघात हुआ है। नींद तो जैसे हम तोड़े ही जा रहे हैं, जैसे हम सोचते हैं, नींद की कोई जरूरत नहीं। हमारे जितने वैज्ञानिक आविष्कार हैं वे सब नींद के विरोधी हैं। सिनेमा है, रेडियो है, और सारी बातें हैं। और हमारी जो सभ्यता और संस्कृति है, वह भी नींद की विरोधी है। जैसे शाम के बाद ही दुनिया शुरू होती है। दिन भर आप काम करते हैं और शाम के बाद दुनिया शुरू होती है। रात को देर तक आप काम में लगे रहेंगे, देर तक व्यस्त रहेंगे और ऐसी चीजों में व्यस्त रहेंगे जिनका आंख पर इतना जोर पड़ता है--या तो पढ़ेंगे या सिनेमा देखेंगे--ये इतने जोर डालने वाली बातें हैं आंख पर कि इनके खिंचाव और तनाव, जब आप सो जाएंगे, तब भी आपकी आंखों के भीतर के स्नायु खिंचे रहेंगे, वे आपको नींद नहीं आने देंगे।
यह सदी सबसे ज्यादा अनिद्रा से ग्रसित है। और जो जितना मुल्क सभ्य है,
आप इससे उसका अंदाज लगा सकते हैं कि कौन कितना मुल्क सभ्य है। जिस मुल्क में जितने लोगों को कम नींद आती हो, वह मुल्क उतना ज्यादा सभ्य है। अमरीका सबसे ज्यादा सभ्य मुल्क है, क्योंकि वहां अनिद्रा की बीमारी सबसे ज्यादा है। और वहां सैकड़ों लोगों को, जिनकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती है, बिना दवा लिए सोना असंभव हो गया है। एक वक्त आएगा जब हम सब लोग बिल्कुल सभ्य हो जाएंगे, तो कोई भी बिना दवा के नहीं सो सकेगा।
सभ्यता जो हमारी है वह प्रकृति के बिल्कुल प्रतिकूल होने से, हमारा
सब जीवन अस्तव्यस्त हुआ चला जा रहा है। नींद पर बहुत चोट हुई है। हम उसका ख्याल ही भूल गए। जैसे वह एक गैर-जरूरी चीज है, वक्त मिला तो उसे ले लिया, उसकी कोई खास जरूरत नहीं है। मेरा कहना है, वह सबसे ज्यादा जरूरी चीज है और उसे सम्यक होना जरूरी है।

तो नींद आपकी सम्यक हो, संतुलित हो; भोजन सम्यक हो, संतुलित हो; और व्यायाम भी संतुलित हो और सम्यक हो।
व्यायाम भी हमसे छिन गया है। इस समय दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक,
जो केवल व्यायाम करते हैं, वे इसलिए परेशान हैं कि उन पर व्यायाम का बोझ ज्यादा है, श्रम ज्यादा है। दूसरे वे लोग हैं जो बिल्कुल श्रम नहीं करते, वे इसलिए परेशान हैं कि उन पर श्रम का बोझ बिल्कुल नहीं है। समाजवाद अगर दुनिया में कोई एक लाभ लाएगा तो मेरे लिहाज से वह यह होगा कि उससे श्रम बराबर वितरित हो जाएगा। और बाकी लाभ जो होंगे होंगे, कम से कम श्रम बराबर वितरित हो जाना चाहिए। कुछ लोग हैं जो श्रम की वजह से दुखी और पीड़ित हैं, जिनका जीवन श्रम सोख लेता है। और कुछ लोग विश्राम से पीड़ित और दुखी हैं, जिनका जीवन विश्राम सोख लेता है। संतुलन दोनों तरफ टूट गया है। यह संतुलन भी आपको जीवन में सम्हाल लेना चाहिए। अगर ध्यान में बहुत तीव्र गति में जाना हो, तो यह संतुलन भी सम्हाल लेना बड़ा काम का है।
ये तीन बातें आपके लिए बड़ी सहयोगी होंगी। इसमें एक बात और आपको कह दूं--कि इन तीनों बातों का एक तो मोटा अर्थ है जो मैंने आपको बताया, कुछ सूक्ष्म अर्थ भी है।
जैसे सम्यक आहार है। आहार का अर्थ हम साधारणतः भोजन लेते हैं, लेकिन आहार का और सूक्ष्म अर्थ भी है--जो भी हम इंद्रियों से लेते हैं वह सब आहार है। आंख से लेते हैं रूप, वह भी आहार है। कान से ध्वनि सुनते हैं, वह भी आहार है, वह कान का आहार है। रूप आंख का आहार है। हाथ से कोई चीज स्पर्श करते हैं, वह हाथ का आहार है। आहार का मतलब हैः जो भी इंद्रियों के द्वारा मेरे भीतर आता है। भोजन तो आता ही है, वह तो आहार है ही, बाकी ये सब चीजें भी आहार हैं। ये भी अगर सम्यक हों, तो ध्यान में अदभुत गति हो जाएगी। अगर आप आंख से वही देखें जो देखने जैसा है और उसे न देखें जो कि देखने जैसा नहीं है, तो आप पाएंगे कि आपके ध्यान में बड़ी गति आ जाएगी। कान से आप वही सुनें जो सुनने जैसा है, जो सुनने जैसा नहीं है उसे न सुनें, तो आपके जीवन में बड़ी शांति आ जाएगी।
अभी हम क्या है, हमें इसका कोई भेद ही नहीं कि क्या देखने जैसा है, क्या नहीं देखने जैसा है। हम सब देखे चले जाते हैं। हम यह भी फिक्र नहीं करते कि क्या सुनने जैसा है, क्या नहीं सुनने जैसा है। हम सब सुने जाते हैं। अगर मेरे घर में कोई कचरा फेंक दे तो मैं झगड़ा करूंगा और मेरे कान में कोई कचरा फेंक जाता है, मैं बिल्कुल झगड़ा नहीं करता।
अब मैं सुबह से ही सुन रहा हूं, चारों तरफ देखता हूं, हर आदमी एक-दूसरे
के कान में कुछ न कुछ डाल रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है! और आप बड़े मजे से बैठे उसको बर्दाश्त कर रहे हैं और सह रहे हैं कि आप डाले चले जाइए और आप बैठे हैं। तो यह कान का आहार हो गया। फिर आप सोचते हैं कि डाल देने से मुक्ति है? डाल देने से मुक्ति नहीं है, डालने के बाद अब आप उसको मथेंगे, वह आपके दिमाग में चलेगा, वह आपको परेशान करेगा। और हम इतने उत्सुक हैं एक-दूसरे के कान में कुछ भी डालने को! जिसका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है, उसको हम दूसरे के कान में क्यों फिजूल डाल रहे हैं? अगर उसका कोई मूल्य होता तो हमारी जिंदगी में कुछ मूल्य आ जाता। पर हम सब लोग एक-दूसरे के कानों के दुश्मन हैं।
अब बड़ी हैरानी है! अखबार आप पढ़ लेंगे, आपने पढ़ा वह तो गलती की ही, अब उसको पढ़ कर आप दूसरे के दिमाग में भी डालेंगे। यानी आपने तो गलती की कि आप आंख को गलत आहार दिए, अब आप एक काम यह करेंगे कि जो अब आपके दिमाग में घुस गया है अब आप उसको दिन भर में प्रचारित करेंगे। दुनिया में तीन अरब आदमी हैं। और एक-एक आदमी के पीछे समझ लीजिए कितने-कितने आदमी पड़े हुए हैं! अब एक आदमी बेचारा, उसकी कितनी क्षमता है कान की सुनने की! वह सुन रहा चौबीस घंटे। फिर आप डाल रहे हैं, फिर सड़कों पर भाषण हैं, और राजनीतिज्ञ हैं, और पत्र हैं, पत्रिकाएं हैं, और अखबार हैं, और पोस्टर हैं, और रेडियो है--सब चौबीस घंटे। ये जो आहार हैं, ये भी आपके भीतर जाकर बेचैनी और परेशानी पैदा करेंगे। ये आपकी शक्ति को क्षीण करते हैं। अब आपने एक अखबार पढ़ लिया, उससे

क्या होगा? अखबार में है क्या? नब्बे प्रतिशत तो बातें ऐसी हैं, जो कि आप न जानते तो कोई हर्ज नहीं था।

प्रश्नः मारा-मारी...

हां, यही सारी की सारी घटनाएं होंगी। ये सब आपके चित्त में चली जाएंगी। यह कचरा आपमें इकट्ठा होता चला जाएगा। रोज सुबह से आप अखबार पी लेंगे, वह आपका भोजन हो गया। उसको आप आहार की तरह ले लेंगे, फिर दिन भर उसको मथेंगे। कहां किसने किसी को मार डाला है, कहां किसी की हत्या हो गई है, कहां चोरी हो गई है, कहां नाव डूब गई, कहां ट्रेन टकरा गई, वह आपके दिमाग में घूमता रहेगा। फिर वह घूमा हुआ आपके चित्त को व्यर्थ ही अशांत कर रहा है, जिससे कोई मतलब नहीं है। यानी दुनिया में अशांति नब्बे प्रतिशत से ज्यादा मूढ़ता की वजह से है, वास्तविक कोई कारण नहीं है उसका। यानी आप व्यर्थ उसके लिए अशांत हैं। कोई आदमी सार्थक रूप से अशांत हो, तब भी ठीक है कि उसकी कोई परेशानी है। उसकी परेशानी नहीं है। दूसरों की परेशानियां, जिनसे कोई वास्ता भी नहीं है उसको, वे उसके चित्त को बहुत ज्यादा व्यथित और परेशान करती हैं।
तो मेरा कहना है, कान के लिए भी सम्यक आहार चाहिए। आप उतना सुनिए जितना आपके लिए उपयोगी मालूम हो; फिर क्षमा मांग लीजिए कि अब आप बंद करें। क्योंकि यह कोई कचराघर नहीं है मेरा दिमाग कि आप उसमें कुछ भी डाले चले जा रहे हैं।
हम उसको बिल्कुल कचराघर बनाए हुए हैं। और हम किसी को नहीं रोकते। और
यह हमारी सभ्यता का हिस्सा भी नहीं है कि हम... यह मैं सभ्य आदमी का लक्षण समझता हूं कि वह किसी के दिमाग में जबरदस्ती कुछ न डाले। जब तक कि वह उसको आमंत्रण न दे कि आप आएं और डालें, तब तक उसको कृपा करनी चाहिए और पूछ लेना चाहिए कि हम आपके दिमाग में कुछ डालते हैं, आप राजी हैं कि नहीं?
अब अभी मैं सुबह से देखता हूं सांझ तक, चारों तरफ लोग लगे हैं। क्या कर रहे हैं आप? चौबीस घंटे आप बातें कर रहे हैं। चौबीस घंटे आप बातें कर रहे हैं। क्या मतलब है? क्यों आप बातें कर रहे हैं? क्या मतलब की बातें आप कह रहे हैं किसी से? आपने जिंदगी में कोई मतलब की बात कही है किसी से? यानी आपको स्मरण आता है कि आपने जिंदगी में कोई मतलब की बात कही हो?
एक साधु था वहां दक्षिण में। वह अपने गुरु के आश्रम पर था। एक बहुत बड़े विद्वान का आना हुआ। उस साधु का उस विद्वान से विवाद हो गया। गुरु बैठा हुआ सुनता रहा। विवाद जब पूरा हो गया, जब वह विद्वान चला गया बिल्कुल परेशान और पराजित होकर, तो उस युवक ने बड़े गौरव से अपने गुरु की तरफ देखा कि शायद वह उसकी पीठ थपथपाएगा। उसके गुरु ने कहा, मैं हैरान हूं कि तुम इतनी देर तक इतनी फिजूल बातें कैसे कर सके? और मैं तुमसे यह पूछता हूं, तुमने जिंदगी में एक भी बात कभी काम की की है? और अगर नहीं की हो तो आगे के लिए होश रखना!
उसने गौर किया अपने पीछे, उसे याद ही नहीं आया कि उसने कोई बात ऐसी कही
हो जो मतलब की थी, जो कि कहनी जरूरी थी, जिसके बिना कहे इस दुनिया में कुछ बिगड़ जाता। वह उसी क्षण चुप हो गया।
उसके गुरु ने उससे पूछा, समझे?
वह कुछ नहीं बोला।
उसके गुरु ने कहा, बोलते क्यों नहीं?
वह फिर बोला ही नहीं। फिर वह चालीस साल जीया, फिर वह बोला नहीं। उसके गुरु से लोगों ने कहा, यह बिल्कुल पागल मालूम होता है। यह तो चुप ही हो गया।
उसके गुरु ने कहा, अगर ऐसे पागल दुनिया में थोड़े ज्यादा हों तो दुनिया बहुत बढ़िया हो जाए।
मैं आपको नहीं कहता कि उस सीमा तक आप पागल बनें। लेकिन अगर थोड़ी भी समझ आपमें आए, तो कृपा करिए, दूसरे के कान में व्यर्थ बातें मत डालिए और अपने कान में भी व्यर्थ बातें दूसरे को मत डालने दीजिए। यह एक-दूसरे के घर

में कचरा फेंकने से ज्यादा अनैतिक है, सड़क पर छिलके फेंकने से यह ज्यादा अशिष्ट है। यह बहुत कीमत की बात है जो आप कर रहे हैं और एक यह बिल्कुल फिजूल की बात कर रहे हैं।
तो कान का भी सम्यक आहार हो, आंख का भी हो। आंख से भी आप फिजूल बातें... मैं देखता हूं, आप रास्ते पर चले जा रहे हैं, तो आप पोस्टर क्यों पढ़ रहे हैं जो सिनेमा के दीवालों पर लगे हुए हैं? या मैं देखता हूं, अभी मेरे साथ एक महिला सफर करती थीं, जो भी कार आगे जा रही है, उसका नंबर पढ़ रही हैं। तो मैंने उनसे पूछा, ये नंबर आप क्यों पढ़ती हैं? वे बोलीं, यूं ही आदत हो गई। अब इसको मैं कहूंगा कि ये आप होश में कर रहे हैं सब? इससे प्रयोजन क्या है? आप आंख को गलत आहार दे रहे हैं। फिर अगर यह भीतर जाकर आपको परेशान करे तो फिर इसमें जिम्मा किसका है? बेहतर है, आंख की जरूरत हो तो खोलना, न हो तो उसको बंद ही रहने देना, जरूरत क्या है खास! आप सफर में बैठे हैं तो काहे को आंख खोले फिजूल बैठे हैं? बंद कर लें। आपको दुकान पर फुर्सत मिली तो आप काहे को सड़क को देख रहे हैं? उससे क्या प्रयोजन है? थोड़ी देर आंख बंद कर लें। उतनी देर के लिए आंख को आहार नहीं मिलेगा, वह विश्राम करेगी। आंख ध्यान में होगी उतनी देर कम से कम। जब कोई फिजूल बात सुन रहे हैं तो कान बंद ही कर लें, चुप हो जाएं; उतनी देर कम से कम कान विश्राम में होंगे।
अगर हम अपनी इंद्रियों को सम्यक आहार दें, तो उन्हीं इंद्रियों से तो हमारा मन बनता है।

प्रश्नः अच्छा साहित्य पढ़ें तो?

मैं बात करता हूं।
जो भी हम इकट्ठा करते हैं, उन्हीं से हमारा मन बनता है। मन हमारी इंद्रियों का संग्राहक है। जो हम इंद्रियों से भीतर ले जाते हैं वह वहां इकट्ठा हो जाता है। फिर वही हमारी शांति-अशांति का कारण बनता है। तो मेरा कहना है कि अपनी एक-एक इंद्रिय के आहार के प्रति सजग हों। अगर सच में ही ध्यान की बड़ी गहराई में जाना है, तो यह सब सहयोगी होगा। यह सब उसकी पृष्ठभूमि बनेगा। और आप प्रवेश कर सकेंगे बहुत गति से। यह मैंने कहा सम्यक आहार के बाबत।
सम्यक निद्रा का भी और गहरा अर्थ है। उसका अर्थ हैः निद्रा का तो सामान्य अर्थ होता है कि हम पूरे शरीर को रात्रि को विश्राम के लिए छोड़ दें; और सूक्ष्म अर्थ यह होता है कि जिन अंगों का हम व्यर्थ काम नहीं ले रहे हैं उनको टेंस न रखें दिन में।
अब मैं देखता हूं, एक आदमी परीक्षा में लिख रहा है। वह लिख तो हाथ से रहा है, ज्यादा से ज्यादा अंगूठे और अंगुली, इन दो पर भार पड़ना चाहिए। लेकिन उसके पैर भी खिंचे हुए हैं, उसकी गर्दन भी खिंची हुई है, उसके हाथ भी अकड़े हुए हैं। ये क्यों आप इनको इतना खींचे हुए हैं? इनकी तो कोई जरूरत नहीं है। ये तो आप अकारण श्रम दे रहे हैं, जिसका कोई मतलब नहीं है। जिस अंग की जरूरत है उस अंग को श्रम दें, बाकी अंगों को शांत रहने दें।
इसको जरा देखें प्रयोग करके। आप साइकिल चला रहे हैं तो पूरे शरीर पर थोड़े ही जोर पड़ने की जरूरत है, वे सिर्फ पैर काफी हैं उसको चलाने को। तो पैर भर श्रम करे, बाकी सारा शरीर शांत हो। तो आप हैरान होंगे कि आप साइकिल चला कर, पूरे शरीर को तनाव में रख कर, मील भर में थक जाते हैं, अब आप दस मील चलाते हैं और नहीं थकेंगे। क्योंकि आप बहुत सा व्यर्थ श्रम ले रहे हैं शरीर से जो कि अनावश्यक है।
मेरी आप बात समझ रहे हैं न? चौबीस घंटे हम एक अंग से अगर काम कर रहे हैं तो बाकी अंगों को सो जाने दें। उनको मत जगाए रखें, जगाने का मतलब है कि उनसे मत काम लें। जो चीज से काम ले रहे हैं उससे ही काम लें, उतना काफी है। उसका परिणाम आप पर होगा कि आपमें एक शक्ति का स्रोत निर्मित होगा। मनुष्य के पास बहुत शक्ति है, लेकिन छेद बहुत बनाए हुए है वह। वह सब उनसे निकल जाती है। जीवन के अंत में हम पाते हैं--हम बिल्कुल खाली ड्रम की तरह हैं, जिसमें भीतर कुछ भी नहीं। आखिर में आपको पता चलता है कि आप एक खाली डिब्बा

हैं, जिसके भीतर कुछ भी नहीं। जब आप पैदा हुए थे, आप बड़ा स्रोत लेकर पैदा हुए थे, लेकिन जीवन कुछ ऐसा गलत था कि सब डिफ्यूज होता चला जाता है, सब रोज निकलता चला जाता है। आपकी बड़ी विराट शक्ति बड़ी क्षुद्र बातों में व्यर्थ खोई चली जाती है। आप कुछ भी नहीं करते जिसमें शक्ति न खोती हो। शक्ति तो आपके हर करने में खोती है। तो उतना करें जितना जरूरी है, शेष को विश्राम करने दें। सम्यक निद्रा के भीतर यह भी समाविष्ट होगा कि आप उसको विश्राम करने दें। एक काम करके आप चुकते हैं, बहुत बेहतर है दो क्षण बिल्कुल विश्राम में छोड़ दें, तब दूसरा काम शुरू करें।
गांधीजी उन्नीस सौ बयालीस के आंदोलन में जब पकड़े गए। वे जब सभा से, जहां ठहरे थे, वहां पहुंचे, तो महादेव देसाई ने उनसे कहा कि बापू अब देर नहीं है कि पुलिस आती होगी और पकड़ेगी। उनके हाथ-पैर कंपते हैं महादेव के। और सारे लोगों के कंप रहे हैं और सारे लोग घबड़ाए हुए हैं। और गांधीजी ने कहा, मैं तब तक थोड़ा विश्राम कर लूं। यानी वे आते ही होंगे, अब दिन भर की सभा और थकान, मैं तब तक थोड़ी एक झपकी ले लूं।
महादेव ने अपनी डायरी में लिखा हैः मैं इतना हैरान हुआ कि ये आदमी हैं
या कुछ और बात! यह मौका झपकी का, इसे ख्याल कैसे? और गांधी तो लेट गए हैं और उन्होंने अपनी झपकी लेनी शुरू कर दी। इसके पहले कि पुलिस आए, वे एक झपकी ले लेना चाहते हैं। आप ले सकेंगे? और नहीं ले सकते तो आप सम्यक निद्रा का अर्थ नहीं जानते।
पुलिस आई, गांधीजी झपकी लेकर तैयार हो गए हैं, उन्होंने हाथ-मुंह धो लिया है। पुलिस आ गई है, वह वारंट ले आई है। सारे लोग घबड़ाए हुए हैं, घबड़ाहट बड़ी है, क्योंकि इतनी बड़ी क्रांति को जन्म दिया है उन्होंने, हो सकता है हुकूमत उनको जिंदा भी न छोड़े, या हो सकता है कितने लंबे दिन का कारावास हो, अब दुबारा उनसे मिलना भी हो या न हो। और गांधीजी कहते हैं, मेरे नींबू का वक्त हो गया है, वह नींबू निचोड़ दो।
इसको मैं सम्यक निद्रा कहता हूं। यानी इसका मतलब यह हुआ कि यह आदमी बिल्कुल विश्राम में है, सारी परेशानी इसको खींच नहीं रही, परेशान नहीं कर रही।
वे अपना नींबू पीकर गाड़ी में बैठ गए हैं। वह गाड़ी चलने लगी है और सारे लोग रोए हुए खड़े हैं, उनकी समझ में नहीं आता--क्या पूछें? किसी ने पूछा कि कोई अंतिम संदेश हो आपका देने को?
तो उन्होंने कहा, संदेश तो मैंने जिंदगी भर दिया। और फिर जब मैं बाहर नहीं रहूंगा तो मेरे संदेश का क्या मूल्य है? जो बाहर रहेंगे वे देंगे। एक बात है, सुबह घनश्यामदास ने, बिरला ने आश्रम की बकरी का दूध लिया था, उसके छह पैसे उन पर रह गए हैं, वे लेकर जमा कर देना।
इसको मैं, विश्राम में जो चित्त है, वह कहता हूं। यह जो क्रांति, इतनी बीच में जो आग लग गई है, यह सारा मुल्क जलेगा, क्या होगा, इसके बाद भी वह घनश्यामदास ने छह पैसे का दूध लिया है वह जमा कर देना।
सुकरात जब मर रहा था, उसके हाथ में जहर का प्याला दे दिया, तो उसके मित्रों ने पूछा, कोई अंतिम बात?
सुकरात ने कहा, अंतिम तो क्या, मेरी जो प्रथम बात थी वह अंतिम भी है। लेकिन मैंने अचिलियत से एक छह आने की मुर्गी खरीदी थी, उसके पैसे नहीं चुका पाया। तो मेरे मित्र, तुम इकट्ठा करके उसे चुका देना। वह अपरिचित है; मरते वक्त मित्रों का भार रहे तो ठीक, अपरिचित का ठीक नहीं।
वह जहर का प्याला हाथ में लिए है। उसने एक छह आने की मुर्गी खरीदी थी,
वह नहीं चुका पाया है। मृत्यु के वक्त, जब कि आपको जहर दिया जा रहा हो, तब आपको याद होगा? यह स्मृति तभी संभव है, जब चित्त अव्यग्र है, अचिंत है, विश्राम में है। उस विश्राम के क्षण में, कुछ भी जो भूला है, सब शांति से पकड़ता है।
तो सम्यक निद्रा का मेरा अर्थ है सम्यक विश्राम। वह चौबीस घंटे की बात है, रात सोने की ही बात नहीं है। जब आपको समय मिलता है, थोड़ा ढीला छोड़ दें। उस थोड़े से ढीले छोड़ने में आप बहुत शक्ति को वापस उत्पन्न कर लेंगे। वह वापस जग जाएगी, आप फिर सजग हो जाएंगे। और अगर ऐसा चौबीस घंटे आप करते

हैं, हमेशा करते हैं, तो आप पाएंगे--जब ध्यान को बैठते हैं, आपमें बहुत शक्ति है।
और उसी भांति सम्यक व्यायाम का भी अर्थ है। उसका मोटा अर्थ मैंने आपको कहा, वह तो है कि हम श्रम करें, तो वह सम्यक हो, तो वह संतुलित हो। उसको बहुत गहराई से देखें तो आप जो भी श्रम करें--चाहे मानसिक तल पर, चाहे शारीरिक तल पर--वह हमेशा सम्यक हो, वह कभी अति पर न चला जाए। वह अति पर चला जाएगा, घातक हो जाएगा।
बुद्ध के पास श्रोण नाम का एक राजकुमार दीक्षित हुआ था। वह राजकुमार था, वह दीक्षित हुआ। वह बड़े वैभव में पला, उसने कभी कोई दुख नहीं देखे, कभी नंगे पैर सड़क पर नहीं चला। वह भिखारी हो गया, उसको अब चीथड़े पहनने पड़े और नंगे पैर सड़क पर चलना पड़ा। लेकिन बुद्ध देख कर हैरान हुए कि और भिक्षु तो ठीक रास्ते पर चलते हैं, वह उन पगडंडियों पर चलता है जहां कांटे पड़े हों, जान कर चलता है। और जब उसके पैरों से खून बहने लगता है और फफोले हो जाते हैं, तो इसमें गौरव अनुभव करता है। इसको वह तपश्चर्या समझ रहा है, इसको वह त्याग समझ रहा है। तीन महीने में वह सूख कर हड्डी हो गया। बड़ा सुंदर था, गौरवर्ण था, एकदम काला पड़ गया, सूख गया।
बुद्ध ने उसके पास जाकर एक दिन कहा, एक बात पूछनी है। मैंने सुना, जब तुम राजकुमार थे, तो तुम वीणा बजाने में बहुत कुशल थे। तो मैं यह पूछने आया हूं कि अगर वीणा के तार बहुत ढीले हों तो उनमें संगीत पैदा होता है?
उसने कहा, अगर तार बहुत ढीले हों तो संगीत कैसे पैदा हो, ध्वनित ही नहीं होंगे।
और बुद्ध ने कहा, तार अगर बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होता है?
उस श्रोण ने कहा, अगर वे बहुत कसे हों तो टूट जाएंगे, तब भी ध्वनित नहीं होंगे।
तो बुद्ध ने कहा, मैं तुमसे यह कहने आया हूं कि जो वीणा का नियम है वही जीवन का नियम भी है। तार बहुत ढीले हों तो बेकार हैं, तार बहुत कस जाएं तो बेकार हो जाएंगे। तारों की एक स्थिति ऐसी भी है जब वे न ढीले हैं और न कसे हुए हैं। तारों की एक स्थिति ऐसी भी है जहां न वे बिल्कुल ढीले हैं, न कसे हुए हैं। वही स्थिति जहां न तुम उन्हें ढीले कह सको और न कसे कह सको, वहीं उनमें संगीत पैदा होता है। और जीवन में भी संगीत वहीं पैदा होता है जहां संतुलन होता है, जहां इस तरफ और उस तरफ आप अति पर नहीं निकल जाते हैं।
अब मैं देखता हूं, एक आदमी अतिशय भोजन करता है, फिर एक दिन उपवास भी करता है। ये दोनों बातें पागलपन की हैं। ये दोनों बातें पागलपन की हैं। एक आदमी अति भोजन करता रहता है, फिर एक दिन आता है, उपवास भी कर लेता है।
न, मैं न तो आपको निराहार होने को कहता हूं और न अति आहार को कहता हूं। मैं तो सम्यक आहार को कहता हूं। आपने जो अति भोजन किया वह एक गलती थी और अब आप जो अनाहार कर रहे हैं वह दूसरी गलती कर रहे हैं, वह दूसरी अति है। और यह नियमित नियम है जीवन का कि एक अति पर जो गलती करता है वह तत्क्षण दूसरी अति पर चला जाता है। जो अति कामी है, जो बहुत सेक्सुअल है, अगर कभी वह दूसरी गलती करेगा तो ब्रह्मचर्य ग्रहण करने की करेगा, एकदम से। वह गलती ही कर सकता है। जो बहुत ज्यादा भोजन प्रिय है, अगर वह दूसरी गलती करेगा किसी भी दिन तो वह यह करेगा कि वह निराहार हो जाएगा। जो आदमी बहुत भोग में था, अगर वह कोई गलती करेगा तो तत्काल त्याग में चला जाएगा।
न तो भोग संयम है और न त्याग संयम है। संयम तो चित्त की वह अवस्था है,
जब न तो भोग में आपका कोई रस है, न त्याग में आपका कोई रस है। उस वक्त एक संगीत आपमें पैदा होना शुरू होता है, एक संतुलन पैदा होना शुरू होता है। सम्यक व्यायाम से मेरा मतलब हैः जीवन की किसी भी दिशा में इतना अति मत करिए कि वह आपके तारों को ढीला कर दे या आपके तारों को इतना कस दे कि आप टूट जाएं। स्मरण रखिए कि तार बीच में हों और उनसे संगीत पैदा हो सके। तो इन तीन शब्दों के भीतर--सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम और सम्यक निद्रा--मैं पूरे जीवन को समझता हूं।
कल कोई पूछता थाः जीवनचर्या कैसी हो?

जिन्होंने यह पूछा हो वे समझ लें कि जीवनचर्या ऐसी हो। इस जीवनचर्या
के केंद्र पर अगर आप ध्यान को साधेंगे, वह अपरिसीम आनंद को उपलब्ध कराएगा और आपकी एक गति होगी।

आपने पूछा है बीच में कि अच्छा साहित्य पढ़ें तो? आप पूछते हैं--अच्छा साहित्य पढ़ें तो वह सम्यक आहार होगा कि नहीं? क्योंकि फिल्म देखें तो बुरा आहार है। कोई रद्दी साहित्य पढ़ें तो बुरा आहार है। अच्छा साहित्य पढ़ें तो?

मेरा कहना यह है कि बुरे साहित्य से तो पढ़ना अच्छा मालूम होता ही है।
एक आदमी एक फिल्म की कथा पढ़ रहा है और एक आदमी रामायण पढ़ रहा है। तो ऊपर से देखने में तो ठीक लगता ही है कि रामायण पढ़ना बेहतर है और फिल्म की कथा बेकार है। लेकिन सच में क्या आप सोचते हैं कि फिल्म की कथा में कुछ और है और रामायण की कथा में कुछ और है? वही ट्रायंगल है, वही दो प्रेमी हैं और एक प्रेमिका है। और वही दो प्रेमियों का एक प्रेमिका के लिए झगड़ा है और लड़ाई है और उपद्रव है। यानी बात क्या है? यानी कथा क्या है वह? उस कथा में है क्या? लेकिन हां, उस प्रेम-कथा में भी बहुत से सदुपदेश बीच में डाले गए हैं। कथा तो वह प्रेम की है, उपद्रव तो वह प्रेम पर खड़ा हुआ है और एक प्रेमिका पर खड़ा हुआ है, एक प्रेयसी की छीना-झपट है वह, पर उसमें बड़े आदर्श डाले गए हैं। और आप सोचते हैं उसको पढ़ने से, अच्छा साहित्य है।
मेरे हिसाब से, आप अच्छे साहित्य को तो जान ही नहीं सकते उस समय तक, जब
तक कि आपके भीतर किसी अच्छे का जन्म न हो जाए। उस वक्त तक तो सब साहित्य ही है, अच्छा-वच्छा कुछ नहीं है। एक आदमी फिल्म को याद कर लेगा, एक आदमी रामायण की कथा को याद कर लेगा और दोनों ही कचरा हैं उस समय तक, जब तक कि उसके भीतर किसी अच्छे के बोध का जन्म न हो जाए। आप उसको दोहराने लगेंगे, वे चौपाइयां आपको वैसे ही याद हो जाएंगी जैसे किन्हीं को फिल्मी गीत याद हो गए हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। बल्कि एक खतरा भी है जो कि बुरे साहित्य वाले को नहीं है। उसमें अहंकार नहीं होगा, आपमें अहंकार भी होगा। आपमें एक अहंकार होगा कि मैं रामायण, मैं गीता और फलां-फलां शास्त्रों का जानकार हूं। वह उस बेचारे में कम से कम नहीं होगा। बल्कि वह डरेगा कि किसी को पता न चल जाए कि हम कैसा साहित्य पढ़ते हैं। और आप चाहेंगे! और आप चाहेंगे कि जब आप पढ़ते हों तब दो-चार लोग जरूर निकल जाएं और देख लें कि आप कैसा साहित्य पढ़ते हैं।
नहीं, मेरा कहना यह नहीं है कि आप रामायण न पढ़ें। मेरा कहना कुल इतना
है कि अभी तो आपका चित्त जैसा है उसमें आप जो भी इकट्ठा कर लेंगे वह करीब-करीब कचरा होगा। अभी तो अच्छा है कि पढ़ना ही है तो फिर रामायण पढ़ लें, यानी वह मजबूरी है। मेरी बात समझ लें आप। उस जिसको नेसेसरी ईविल कहते हैं। यानी आवश्यक बुराई जिसको कहते हैं। अगर पढ़ना ही है और बिना पढ़े नहीं मानता, तो बेहतर है जासूसी उपन्यास न पढ़ें, रामायण पढ़ लें, गीता पढ़ लें। पर नेसेसरी ईविल समझ कर, एक जरूरी बुराई समझ कर कि अब मानता ही नहीं है मन, कुछ पढ़ना ही है, तो फिर पढ़ लें।
लेकिन अगर समझ हो तो उसे भी देने की जरूरत नहीं है। और अगर आप चित्त को
इस तरह के विचारों से न भरें और चित्त खाली और इनोसेंट हो, निर्दोष हो, तो आपके ऊपर से कुछ और आना शुरू हो जाएगा, जो कि वास्तविक ज्ञान है।
उसको आने का मौका अगर देना है तो इस कचरे से मत रोकें अपने चित्त को, खाली जगह छोड़ दें। तो सत्य का अवतरण होगा आपके भीतर। और फिर आप साहित्य को पहचान सकेंगे, क्या सत है और क्या असत है। यानी साहित्य के मामले में यूं मामला है कि सत और असत आप अभी पहचान भी नहीं सकते। सत और असत की पहचान तब होगी जब चित्त बिल्कुल शांत होगा और सत्य का आपको बोध होगा, तो फिर आपको साहित्य में सत और असत दिखेगा।
लेकिन उसके पहले अगर बिना पढ़े मानता ही नहीं मन, क्योंकि हमारी सारी
की सारी शिक्षा-दीक्षा पढ़ाने की है। हम सिखाते हैं--पढ़ो! अगर ऐसी स्थिति है कि पढ़ाने की शिक्षा-दीक्षा है और आपको कुछ पढ़ना ही है, तो अच्छा है कि जो

आपको लगता है श्रेष्ठ है, धार्मिक है, उसको पढ़ो। लेकिन इतना स्मरण रहे कि वह आपके अहंकार का पोषण न करता हो।
नहीं तो धार्मिक आदमी से ज्यादा दंभी आदमी खोजना बड़ा कठिन होता है। बहुत कठिन होता है। उसकी जो ईगो है वह बड़ी पैनी होती है, बड़ी तीखी होती है।
क्योंकि वह एक दफा मंदिर जाता है, क्योंकि वह कभी उपवास करता है, क्योंकि वह रोज माला फेरता है। हम कितने... हैरान हूं मैं कि धार्मिकता हमारे केवल अहंकार का पोषण ही कर पाती है, जब कि धार्मिकता शुरू वहां होती है जहां कि अहंकार विलीन हो।
तो अगर आपका सत-साहित्य जिसको आप समझ रहे हैं, अगर वह आपके अहंकार की पूर्ति न करता हो, तो समझना आहार सम्यक है। तो उसे पढ़ लेना। और अगर वह आपके अहंकार की पूर्ति करता हो, तो समझ लेना आहार असम्यक है, उसे पढ़ने से कोई लाभ नहीं है, आपको नुकसान हो जाएगा। यानी, मेरी आप बात समझे? साहित्य को पढ़ते वक्त आपकी चित्त-स्थिति निर्णीत करेगी कि जो आप ले रहे हैं वह सम्यक है या नहीं है। मेरी आप बात समझे न? आपकी चित्त-स्थिति अगर उससे आपके दंभ को भरती हो...
रूमी हुआ, एक फकीर था सूफी, वह अपने युवक पुत्र को बोला कि तुम रोज सुबह मेरे साथ मस्जिद चलो, वहां प्रार्थना किया करो। उसके साथ दो-चार दिन उसका लड़का गया। सर्दी के दिन थे और लोग देर तक सोए रहते थे। एक दिन वे लौटते थे पांच-छह दिन बाद, तो उसके लड़के ने रूमी से कहा कि देखते हैं, लोग कितने पापी हैं कि अभी तक सो रहे हैं! तो रूमी ने परमात्मा से वहीं प्रार्थना की कि हे परमात्मा, मैंने बड़ी भूल की जो मैं इसे मस्जिद ले आया। यह घर सोता था तो कम से कम किसी को पापी तो नहीं समझता था।
तो यह मस्जिद जाना असम्यक हो गया, यह मस्जिद जाना पाप हो गया। जिस मस्जिद और जिस मंदिर के जाने से दूसरे आपको पापी दिखाई पड़े, वह मस्जिद न जाना बेहतर था, वह सम्यक था। पर हम अगर विचार करेंगे तो हमको दिखाई पड़ेगा, हमारी धार्मिकता कुछ ऐसा ही करवा देती है।
आप साधु क्या होते हैं, शायद आपको साधु होने की तो बिल्कुल इच्छा नहीं है, दूसरों को असाधु कहने का रस है। दूसरों को असाधु कहने का रस लेना चाहते हैं? साधु हो जाएं। बहुत रस होगा निंदा का, कंडेमनेशन का। और दूसरों को निंदित करने का बड़ा रस होगा और दूसरों को पापी और भोगी कहने का बड़ा रस होगा। और दूसरे नरक में सड़ेंगे, यह कल्पना आपको बड़ा आनंद देगी।
मेरा कुल कहना इतना ही है, थोड़ा ही सा, कि वह आपकी वृत्ति पर, पकड़ पर निर्भर करेगा। अगर आपमें वृत्ति ऐसी हो कि वह आपके भीतर कुछ सरल कर जाती हो, तो फिर जो भी पढ़ें, आपको वह साहित्य सम्यक हो जाएगा। यानी यह हो सकता है कि एक फिल्म की कथा, एक जासूसी उपन्यास आपके लिए सम्यक हो जाए।
एक फकीर बहुत दिन तक एक चोर के साथ रहता था। बहुत दिन उस चोर के साथ रहा। लोगों ने कहा, तुम इसके साथ रहते हो, बड़ा असत संग है। अरे बड़ा दुष्ट संग है! तुम साधु आदमी और तुम चोर के साथ रहते हो और उसके झोपड़े पर ठहरते भी हो!
वह बोला, इस चोर से मैंने इतना सीखा कि किसी साधु से कभी नहीं सीखा।
लोगों ने पूछा, तुमने चोर से क्या सीखा होगा? चोर के पास भी सीखने को क्या है? अरे उसको ही सीखना है सब। तुम उससे क्या सीखोगे?
वह बोला, मैं बहुत सी बातें सीखा, मेरा जीवन इसी आदमी ने बदला, यह मेरा गुरु है। जब पहली-पहली दफा मैं इसके पास रुका, तो मैंने कई अदभुत बातें देखीं। पहली बात तो यह देखी कि इसका काम, जब सब सो जाते हैं, तब शुरू होता है। मैं इससे सीख लिया। अपना जो काम है परमात्मा की खोज का वह किसी की आंख में न पड़े। वह चोरी है परमात्मा की। वह किसी की आंख में न पड़े। नहीं तो पकड़ जाएंगे, मामला सब खराब हो जाएगा। तो मैंने इससे सीख लिया कि अपनी साधना तब होनी है जब सारी दुनिया सो जाए। और अपनी साधना उस तरह होनी है कि किसी को पता न चले। पता चलाने की जो आकांक्षा है वह साधना में बाधक है। पता चलाने की आकांक्षा--कि पता चल जाए लोगों को कि मैं ध्यान साधता हूं, कि मैं यह करता हूं, कि मैं वह करता हूं--तो आप साधक नहीं हैं, आप केवल अहंकार के लिए नये आभूषण खोज रहे हैं। बड़ा मकान बना लिया था, बड़ा फर्नीचर खरीद लिया था,

सब था, अब एक आभूषण की कमी और थी--कि आप धार्मिक हैं और परमात्मा भी आपके पजेशन में है। वह और आप किए ले रहे हैं, दंभ पूरा हो जाएगा।
तो उसने कहा, इससे मैंने सीखा कि अंधेरे में काम शुरू करना, किसी को पता न चले। और इससे मैंने सीखा कि एक दिन जाता था, लौट आता था, घुस नहीं पाता था। दूसरे दिन जाता था, घुस नहीं पाता था, लौट आता था। पहरे पर लोग थे, रास्ते जगे थे, प्रकाश था, घर में कोई बात करता था। लेकिन जाना नहीं छोड़ता था। मैंने भी कहा कि पक्का! अनेक दफे भीतर जाता हूं, घुस नहीं पाता। अनेक बार भीतर जाता हूं, ताला नहीं तोड़ पाता। मैंने कहा, यह चोर है कि कोशिश किए ही चला जाता है, मुझे भी कोशिश किए ही चले जाना है। मैं किए ही चला गया।
तो उसने कहा, यह चोर मेरा गुरु है। और सारी दुनिया इससे कहती थी--छोड़ इसको। यह सब बंद कर! यह क्या पागलपन है! और सारी दुनिया मुझसे भी कहती कि छोड़ो यह परमात्मा-वरमात्मा, यह क्या पागलपन है! इसने नहीं छोड़ा। मैंने कहा, हम भी छोड़ने वाले नहीं, जब चोर ही नहीं छोड़ता। इससे मैंने तीन बातें सीख लीं, जो मैंने किसी साधु से नहीं सीखीं। इसके सत्संग में मुझे जो मिला है वह कहीं नहीं मिला।
तो मैं आपसे कह सकता हूं कि चोर का साथ भी सत्संग हो सकता है और साधु
का साथ भी असत्संग हो सकता है। वह आपकी वृत्ति पर निर्भर है।
तो साहित्य आप कौन सा पढ़ते हैं, यह बहुत विचारणीय नहीं मेरे हिसाब से। यानी वह आपकी वृत्ति पर निर्भर है कि वह आपमें क्या कर रहा है। तो आप उस पर जरा जागे रहें कि वह क्या कर रहा है?
अब अभी मैं देखता हूं, सीधे-सरल लोग साधुओं के पास चले जाते हैं। वहां कुछ रटी-रटाई बातें सीख कर लौट आते हैं। वे जटिल हो जाते हैं। वे सीधे-सरल लोग थे। वे सीधे-सरल लोग थे, उन्हें कभी कोई दंभ नहीं था जानने का। वे महीने दो महीने में किसी साधु के पास रह कर लौट आते हैं, उन्हें जानने का दंभ और हो जाता है। वे दूसरों को सिखाने में और दूसरों को बताने में उनकी संलग्नता आ जाती है। वे विवाद-चुस्त हो जाते हैं। और यही ठीक है, इसका आग्रह उनमें भारी हो जाता है। तो मैं कहूंगा कि वे असत्संग से लौटे। वे सत्संग करके नहीं लौटे।
तो आहार, या कोई भी और बात, बहुत कुछ आपकी वृत्ति पर निर्भर है। और वह वृत्ति ध्यान में रहे, तो फिर आप जो भी करेंगे वह सम्यक हो जाएगा।
यानी यूं समझिए कि तीन बातें मैंने कहीं, अब एक में उसे कह दूं--सम्यक वृत्ति, राइट एटिट्यूड उन तीनों को ले लेता है। जिसके पास राइट एटिट्यूड है, वह ठीक सोएगा, ठीक खाएगा, ठीक चलेगा, ठीक पढ़ेगा, ठीक सुनेगा। तो वे तीन जो मैंने कहीं बातें वे अलग-अलग कहीं, अब एक ही शब्द में उसको समझ लें--वह राइट एटिट्यूड। या चाहें तो महावीर का शब्द ले लें--सम्यक दृष्टि। यानी उससे क्या फर्क पड़ता है! वह दृष्टि सम्यक हो आपकी तो सब सम्यक हो जाएगा। और दृष्टि सम्यक न हो तो सब असम्यक है। तो उसका थोड़ा ध्यान रखेंगे तो उपयोगी होगा।

प्रश्न तो बहुत हैं... कि जीवन के कर्तव्य, उत्तरदायित्व ठीक ढंग से कैसे निभाए जाएं?

अगर मेरी बात आप समझ रहे हैं कल से, तो मैं कहूंगाः अगर आप ठीक हैं, तो आपके सारे उत्तरदायित्व और सारे कर्तव्य ठीक ढंग से निभाए जाएंगे। और अगर आप ठीक नहीं हैं, तो आप चेष्टा भला करें, आप अपना पूरा जीवन खपा दें, न तो आपके कर्तव्य आप पूरे कर पाएंगे, न कोई उत्तरदायित्व निभा पाएंगे।
विचार इसका मत करें कि आप क्या कर रहे हैं, विचार इसका करें कि आप क्या हैं। आप ठीक हैं, तो आपसे जो भी निकलेगा वह ठीक होगा। और आप गलत हैं, तो जो भी निकलेगा उसका ठीक होना संभव नहीं है। मेरा पूरा जोर आपके ऊपर है, आपके व्यवहार पर बहुत नहीं है।
इसका यह मतलब न समझें कि मैं आपके व्यवहार को कोई मूल्य नहीं देता। मैं उसको बहुत मूल्य देता हूं। लेकिन मैं यह समझ पाता हूं कि वह चूंकि आपसे निकलता है, इसलिए आपसे अन्यथा नहीं हो सकता। चूंकि आपसे निकल सकता

है, आपसे निकलता है, इसलिए आपसे भिन्न नहीं हो सकता। अगर आप भीतर अंधेरे में हैं, तो आपका सारा व्यवहार अंधेरे में होगा। और उसमें आप कुछ कर्तव्य न निभा पाएंगे। आपको यह भ्रम होगा कि आपने निभाया और जिनके प्रति आपने निभाया, उन सबको यह शिकायत होगी कि बिल्कुल नहीं निभाया। आप समझेंगे मैं उत्तरदायित्व पूरा कर रहा हूं और जिनके प्रति कर रहे हैं वे समझेंगे इस आदमी ने कोई उत्तरदायित्व पूरा नहीं किया। आप समझेंगे मैं प्रेम दे रहा हूं, लेकिन जिसको आप प्रेम दे रहे हैं उसको बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि आपने प्रेम दिया। उसकी शिकायत यह होगी कि मुझे प्रेम उपलब्ध नहीं हुआ। क्या आप नहीं अनुभव करते रोज? अपने परिवार में क्या आप अनुभव नहीं करते कि आप सोचते हैं आप पिता को आदर दे रहे हैं और पिता समझते हैं कि इससे ज्यादा इतना अनादर देने वाला शायद ही किसी का पुत्र होगा। और क्या आप नहीं सोचते कि आप अपनी पत्नी को सोचते हैं प्रेम कर रहे हैं और आपकी पत्नी सोचती है कि अभाग्य है, दुर्भाग्य है यह कि प्रेम का कोई पता ही नहीं है। क्या चौबीस घंटे आपके सारे संबंध में आपको यही शिकायत नहीं है सबको? क्या जो आपसे कहते हैं कि हम आपको प्रेम करते हैं, आपको पता चलता है कि वे आपको प्रेम करते हैं?
यह संभव नहीं है। आप भ्रम पैदा कर लेते हैं कि हम कर्तव्य पूरा कर लेंगे, वह हो नहीं सकता। आप सोचते हैं हम प्रेम दे देंगे, वह हो नहीं सकता। अभी प्रेम आपके भीतर नहीं है, तो आप दे कैसे सकेंगे? जिनको आप प्रेम देना चाहते हैं, इसके पहले कि उन्हें दें, वह आपके भीतर तो होना चाहिए। तो आप देने के तो मनसूबे बांधते हैं, लेकिन आपके पास है नहीं। तो आप जो भी देंगे वह प्रेम नहीं होगा, वह कुछ और होगा। तो आप भला भ्रम में रहें कि वह प्रेम था, लेकिन जिसको दिया वह कैसे भ्रम में रहेगा? यानी आप भ्रम में हो सकते हैं कि मैंने दिया जो प्रेम था, लेकिन जिसको दिया वह कैसे भ्रम में होगा? तो यह सारा हमारा जो जीवन है, बड़े भ्रमों पर खड़ा है। और सबसे बड़ा भ्रम
यह है कि हम जिंदगी में दूसरों को वे चीजें देना चाहते हैं जो हमारे पास हैं ही नहीं। न हमारे पास श्रद्धा है, न हमारे पास प्रेम है, न हमारे पास आदर है, न हमारे पास सहानुभूति है, न दया है, न करुणा है। लेकिन ये ही हम देना चाहते हैं। न हमारे पास सेवा है। यह कुछ हमारे पास नहीं है। हम ये देना चाहते हैं। और ये झूठे सिक्के जो हमारे पास नहीं हैं, नहीं चलते, और दुनिया सब खराब हो जाती है।
दूसरे भी हमको यही झूठे सिक्के पकड़ाते हैं। तो व्यक्ति को दोहरा असंतोष जीवन में होता है। उसने जिनको देना चाहा था, नहीं दे सका, इसका दुख। जिनसे उसने पाना चाहा था, नहीं पा सका, इसका दुख। वह जीवन उसका एक दुख में परिणत हो जाता है।
जब कि आप हैरान होंगे, अगर आपके भीतर प्रेम उत्पन्न हो जाए, तो आप जिनको देना चाहते हैं उन्हें तो दे ही देंगे, प्रेम के साथ दोहरी घटना घटती हैः देने की सामर्थ्य आ जाती है, मांगने की इच्छा चली जाती है। क्योंकि जिसके पास प्रेम है वह किसी से क्या मांगेगा कि तुम मुझे प्रेम दो! हम सारे लोग प्रेम के प्यासे इसलिए हैं कि हमारे भीतर प्रेम नहीं है, उसकी कमी अखरती है, दूसरे से मांगते हैं। हम सारे लोग प्रेम चाहते हैं कि कोई प्रेम दे, कोई प्रेम दे हमको। क्यों चाहते हैं? चाहते इसलिए हैं कि भीतर प्रेम नहीं है, इसलिए दूसरे से मांगते हैं। अब मजा यह है कि जिनसे हम मांग रहे हैं उनके पास भी नहीं है, वे भी दूसरों से मांग रहे हैं। हम सब भिखमंगे इकट्ठे हो गए हैं और एक-दूसरे को बादशाह समझ रहे हैं। इससे जीवन दुख में परिणत हो जाएगा। जहां सारे भिखमंगे हों और एक-दूसरे को बादशाह समझते हों, वहां क्या होगा? वहां क्या होगा?
एक मुसलमान फकीर हुआ, फरीद। अकबर के समय में था। उसके गांव के लोगों
ने कहा, बादशाह तुम्हें बहुत मानता है, तुम बादशाह को जाकर कहना, गांव में एक स्कूल खोल दे। फरीद ने कहा, कभी जाऊंगा तो जरूर कहूंगा। वह गया। वह दिल्ली गया, वह अकबर के महल गया। उसे बड़े सम्मान से लोग भीतर ले गए। लोगों ने कहा, अभी बादशाह नमाज में हैं, अभी वे प्रार्थना कर रहे हैं। फरीद ने कहा, मैं जरा देखूं वे क्या नमाज करते हैं। वह उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया।

वे अपनी निजी मस्जिद में प्रार्थना करते थे। जब वे प्रार्थना करके उठे तो बादशाह अकबर ने कहा, हे परम पिता, मुझे और धन दे! और दौलत दे! और राज्य का विस्तार दे!
फरीद वापस लौट आया। अकबर ने उसे लौटते देखा, वह सीढ़ियां उतरता था, उन्होंने कहा, अरे आप आए और लौटते हैं! कैसे आए?
फरीद ने कहा, आया कुछ और सोच कर था, कुछ और पाकर वापस लौटा जा रहा हूं। मैंने सोचा तुम बादशाह हो। यहां पाया कि तुम भिखारी हो। हम सोचते थे तुमसे कुछ मांगेंगे; हमने तुमको खुद मांगते पाया। हम लौट चले। हमने कहा, तुम जिससे मांगते हो उसी से हम मांग लेंगे।
यह हमारी पूरी जिंदगी में है। यह हंसने की बात नहीं, रोने की बात है।
यह करीब-करीब रोने की बात है, इससे ज्यादा रोने की कोई बात नहीं हो सकती जिंदगी में। हमारे पास कुछ नहीं है और जो हमारे आसपास हैं उनके पास भी कुछ नहीं है। और हम सबकी शिकायत यह है कि कोई हमें कुछ देता नहीं। और हम सबकी शिकायत यह है कि हम सबको सभी कुछ दिए दे रहे हैं, लेकिन हमें कोई कुछ नहीं दे रहा है। यह आपका भ्रम है। न आपके पास है, न उनके पास है।
तो मैं आपसे यह नहीं कहूंगा कि आप उत्तरदायित्व निभाएं और कर्तव्य पूरा करें, यह मैं नहीं कहूंगा। ये कोई जबरदस्ती की बातें हैं! मुझसे कोई कहे, फलां को प्रेम करो, तो मैं कैसे करूंगा? हम बच्चों को सिखाते हैं, एक-दूसरे को प्रेम करो। हम लोगों को सिखाते हैं, पड़ोसी को प्रेम करो। यह कितनी फिजूल बात है! प्रेम क्या इस तरह किया जा सकता है? कि आप किसी को कह दें कि करो, और वह करने लगे। और ऐसा किया हुआ क्या प्रेम होगा? कि मां-बाप हमको सिखाएं कि बच्चे हमारा आदर करें। कि शिक्षक हमको सिखाएं कि विद्यार्थी हमारा आदर करें। यह बड़ी हैरानी की बात है। अब आदर क्या किया जा सकता है यूं? क्या प्रेम इस तरह किया जा सकता है? क्या कर्तव्य निभाए जा सकते हैं?
जहां निभाना है वहीं झूठ शुरू हो गया। जब आप सोचते हैं कि मैं अपने पिता के प्रति कर्तव्य निभा रहा हूं, जब आपको यह पता चलने लगा कि मैं कर्तव्य निभा रहा हूं, तभी कर्तव्य समाप्त हो गया। आप झूठ कर रहे हैं। आप बोझ ढो रहे हैं, कर्तव्य नहीं निभा रहे हैं। अगर आप सच में कर्तव्य निभा रहे होते, वह आपके भीतर से पैदा हो रहा होता, तो आपको यह कभी न लगता कि मैं निभा रहा हूं; आपको यह लगता कि मैं बिल्कुल नहीं निभा पा रहा हूं।
अभी उलटी हालत हैः जिसके प्रति निभा रहे हैं उसे लगता है नहीं निभा रहे हैं और जो निभा रहा है उसको लग रहा है मैं बहुत निभा रहा हूं। अगर आपके भीतर प्रेम हो, तो प्रेम हमेशा यह अनुभव करेगा कि मैंने कुछ भी नहीं दिया जो मुझे देना था। और अभी हमको ऐसा लगता है, हमने तो सब दिया, दूसरे ने बिल्कुल नहीं माना।
मेरा कहना यह है कि आपके कर्तव्य की मैं बात नहीं करता, मैं आपकी चित्त-स्थिति की बात करता हूं। मुझे यह लगता है कि आपके भीतर प्रेम आए, शांति आए, तो आप अपने आप कर्तव्य को निभाते हुए पाएंगे। उसे निभाना क्या है? उसे सोचना क्या है? वह अपने से होगा। आपके भीतर प्रेम होगा तो वह अपने से हो जाएगा। और एक फर्क पड़ेगा, आपके भीतर प्रेम होगा तो प्रेम की मांग मिट जाएगी।
मैं आपको एक सूत्र की बात कहूंः जिस मनुष्य के पास प्रेम है उसकी प्रेम की मांग मिट जाती है। और यह भी मैं आपको कहूंः जिसकी प्रेम की मांग मिट जाती है वही केवल प्रेम को दे सकता है। जो खुद मांग रहा है वह दे नहीं सकता है।
इस जगत में केवल वे लोग प्रेम दे सकते हैं जिन्हें आपके प्रेम की कोई अपेक्षा नहीं है--केवल वे ही लोग! महावीर और बुद्ध इस जगत को प्रेम देते हैं। जिनको हम समझ ही नहीं पाते। हम सोचते हैं, वे तो प्रेम से मुक्त हो गए हैं। वे ही केवल प्रेम दे रहे हैं। आप प्रेम से बिल्कुल मुक्त हैं। क्योंकि उनकी मांग बिल्कुल नहीं है। आपसे कुछ भी नहीं मांग रहे हैं, सिर्फ दे रहे हैं।

प्रेम का अर्थ हैः जहां मांग नहीं है और केवल देना है। और जहां मांग
है वहां प्रेम नहीं है, वहां सौदा है। जहां मांग है वहां प्रेम बिल्कुल नहीं है, वहां लेन-देन है। और अगर लेन-देन जरा ही गलत हो जाए तो जिसे हम प्रेम समझते थे वह घृणा में परिणत हो जाएगा। लेन-देन गड़बड़ हो जाए तो मामला टूट जाएगा। ये सारी दुनिया में जो प्रेमी टूट जाते हैं, उसमें और क्या बात है? उसमें कुल इतनी बात है कि लेन-देन गड़बड़ हो जाता है। मतलब हमने जितना चाहा था मिले, उतना नहीं मिला; या जितना हमने सोचा था दिया, उसका ठीक प्रतिफल नहीं मिला। सब लेन-देन टूट जाते हैं।
प्रेम जहां लेन-देन है, वहां बहुत जल्दी घृणा में परिणत हो सकता है, क्योंकि वहां प्रेम है ही नहीं। लेकिन जहां प्रेम केवल देना है, वहां वह शाश्वत है, वहां वह टूटता नहीं। वहां कोई टूटने का प्रश्न नहीं, क्योंकि मांग थी ही नहीं। आपसे कोई अपेक्षा न थी कि आप क्या करेंगे तब मैं प्रेम करूंगा। कोई कंडीशन नहीं थी। प्रेम हमेशा अनकंडीशनल है। कर्तव्य, उत्तरदायित्व, वे सब अनकंडीशनल हैं, वे सब प्रेम के रूपांतरण हैं।
तो मैं आपसे नहीं कहता आप कैसे कर्तव्य निभाएं। जब आपको यह ख्याल ही
उठ आया है कि कैसे कर्तव्य निभाएं, तो आप पक्का समझ लें, आपके भीतर कोई प्रेम नहीं है। तो मैं आपसे यह कहूंगा--प्रेम कैसे पैदा हो जाए।
और यह भी आपको इस सिलसिले में कह दूं कि प्रेम केवल उस आदमी में होता
है जिसको आनंद उपलब्ध हुआ हो। जो दुखी हो, वह प्रेम देता नहीं, प्रेम मांगता है, ताकि दुख उसका मिट जाए। आखिर प्रेम की मांग क्या है? सारे दुखी लोग प्रेम चाहते हैं। वे प्रेम इसलिए चाहते हैं कि वह प्रेम मिल जाएगा तो उनका दुख मिट जाएगा, दुख भूल जाएगा। प्रेम की आकांक्षा भीतर दुख के होने का सबूत है। तो फिर प्रेम वह दे सकेगा जिसके भीतर दुख नहीं है। जिसके भीतर कोई दुख नहीं है, जिसके भीतर केवल आनंद रह गया है, वह आपको प्रेम दे सकेगा। अब अगर मेरी बात ठीक से समझेंः दुख भीतर हो तो उसका प्रकाशन प्रेम की मांग में होता है और आनंद भीतर हो तो उसका प्रकाशन प्रेम के वितरण में होता है। प्रेम जो है आनंद का प्रकाश है। तो जो आदमी भीतर आनंद से भरेगा उसके जीवन के चारों तरफ प्रेम विकीर्ण हो जाएगा। जो भी उसके निकट आएगा उसे प्रेम उपलब्ध होगा। जो भी उसके करीब होगा उसका कर्तव्य पूरा हो जाएगा, उसका उत्तरदायित्व निभेगा। और उस आनंद के लिए तो मैं आपसे कहा कि अगर मैं कहूं कि प्रेम आनंद का प्रकाश है, तो आनंद आत्मबोध का अनुभव है, उसके पूर्व नहीं है। दुख है कि हम अपने को नहीं जानते, अपने को नहीं जानते इसलिए प्रेम मांगते हैं। अगर हम अपने को जानेंगे, आनंद होगा; आनंद होगा तो प्रेम हमसे विकीर्ण होगा।
तो मैं कर्तव्य निभाने को नहीं, प्रेम को उपलब्ध करने को आपसे कहूंगा।

एक प्रश्न हैः अपने को, अपनी आत्मा को पाने की क्या जरूरत है? जो अपना
है उसको ही कैसे पाना है?

बड़ा अच्छा प्रश्न है। बड़ी समझदारी का और बड़ी नासमझी का भी।
लिखा हैः "अपने को, अपनी आत्मा को पाने की क्या जरूरत है?"
बिल्कुल ही ठीक लिखा है। जो अपनी है उसको पाने की क्या बात है? उसको पाने का कोई सवाल नहीं है। जो अपना ही है उसको पाना क्या है? तो जो आत्मा है उसे क्या पाना है? यह तो बिल्कुल ठीक बात है। आत्मा को पाने की बिल्कुल जरूरत नहीं है।
लेकिन आत्मा आपके पास है? जो अपना है वह है आपके पास? यानी आपको लगता
है कि आत्मा आपमें है?
अगर है तो जरूर ही बिल्कुल नहीं पाना है। और अगर नहीं लगता तो फिर? अगर आपको लगता है सुनिश्चित कि मेरे भीतर आत्मा है, तो सच में ही नहीं पाना है। फिर पाने की क्या बात है! लेकिन आपको लगता है कि आत्मा है? लगता नहीं होगा। लगता इतना ही होगा यह देह है, ज्यादा से ज्यादा मन है, और क्या है?

तो मैं आपको कहूं, जो अपना है वह अपना होने की वजह से ही ज्ञात नहीं हो पाता। जो बहुत निकट होता है वह स्मरण में नहीं रह जाता। दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, पास, बहुत पास की चीजें फिर दिखाई नहीं पड़तीं। जो बिल्कुल ही निकट है वह इसीलिए नहीं दिखाई पड़ता कि वह बहुत निकट है। और जो बिल्कुल अपना है उसे हम इसीलिए भूल जाते हैं। अपना इसीलिए भूल जाता है कि वह बिल्कुल अपना है। वह चौबीस घंटे सतत, सोते-जागते, उठते-बैठते हमारे भीतर है। वह इतना हमारे साथ है कि जन्म हमारा नहीं हुआ तब वह था, जब हमने जन्म पाया तब है, जब हम मरेंगे तब होगा। तो और सब तो दिखता है जो परिवर्तित होता रहता है, जो परिवर्तित नहीं होता वह दिखता नहीं है।
आप यह जान कर हैरान होंगे, जो चीज बिल्कुल परिवर्तित नहीं होती वह आपको दिखेगी नहीं, जो चीजें परिवर्तित होती हैं वे दिखाई पड़ेंगी। परिवर्तन उनको हमारी आंख में स्पष्ट कर देता है। जो बिल्कुल ही मौजूद है और कभी बदलता नहीं और हमेशा साथ है, वह भूल जाता है। असल में हम उसी को याद रख पाते हैं जिसे पाना है। आप समझ लें। हम उसी को याद रख पाते हैं जिसे पाना है। जो मिला नहीं है उसकी याद रहती है, जो मिल जाता है वह भूल जाता है। इसलिए जगत में जो चीजें आप पा लेंगे वे आपको भूल जाएंगी। जो आपने नहीं पाई हैं वे आपको स्मरण बनी रहेंगी। सारी वासना, सारी डिजायर यही तो करती है। जो मिल गया वह भूल जाएगा। आपके पास एक बड़ा भवन है वह आपको भूल जाएगा। जो बड़े भवन आपके पास नहीं हैं वे आपकी याद में होंगे। जो प्रेम आपको मिला वह आपको भूल जाएगा, जो नहीं मिला वह आपके स्मरण में होगा। जो नहीं है वह दिखता रहता है और जो है वह दिखना बंद हो जाता है।
तो आत्मा इसीलिए आपको उपलब्ध होकर भी अनुपलब्ध हो जाती मालूम होती है, क्योंकि वह निरंतर उपलब्ध है, उसका स्मरण नहीं रहता। उसे पाना नहीं है न, इसलिए स्मरण नहीं रहता। उसे खोजना नहीं है, इसलिए स्मरण नहीं रहता। इसलिए साधक को एक बार एक बड़ी अबूझ पहेली में से गुजरना पड़ता है। उसे उसको फिर से पाना होता है, जिसे वह कभी खोया नहीं। उस सत्य को उसे फिर से पाना होता है, जिसे उसने कभी खोया नहीं। उस भूमि पर पैर रखने होते हैं, जिस भूमि से पैर कभी हटाए ही नहीं थे। उसके प्रति आंख खोलनी होती है, जो निरंतर आंख में था, इसलिए दिखना बंद हो गया था।
यह बात विपरीत लगती है, लेकिन विपरीत नहीं है। बहुत स्वाभाविक है। बहुत स्वाभाविक है। अगर आपको लगता हो कि आत्मा मेरे भीतर है, तब तो कोई सवाल ही नहीं है और कोई प्रश्न भी नहीं है--पूछने न पूछने, जानने न जानने, पाने न पाने का कोई प्रश्न नहीं है। लेकिन अगर न लगता हो, तो अभी तो आपको पता ही नहीं है कि आत्मा है भी या नहीं। जिस दिन आपको पता लगेगा आत्मा मैं हूं, उस दिन पाने जैसा कुछ भी नहीं है। जब तक यह नहीं पता लगा है तब तक तो सब पाने जैसा है।
तो अगर कोई यह सोच ले कि आत्मा तो है ही, इसलिए पाना क्या है? तो जीवन नष्ट कर लेगा। यह केवल बातचीत थी, सुन लिया कि आत्मा तो है ही, इसलिए पाना क्या है? यह केवल एक लाजिकल कनक्लूजन था। सुन लिया कि लोग कहते हैं आत्मा भीतर है। जब यह सुन लिया, तो हमने सोचा कि फिर पाना क्या है? पाना क्या है, यह हमारा निष्कर्ष है। यह हमारी तरकीब है बचने की। और वह दूसरे का निष्कर्ष है कि आत्मा है। आत्मा है, यह दूसरे का निष्कर्ष है। अब पाना क्या है, पाने की कोई जरूरत नहीं, यह हमारा निष्कर्ष है। आप समझ लें! इस वाक्य में दो व्यक्तियों के निष्कर्ष हैं, एक के नहीं। अगर एक के हों तो बात हल हो जाएगी। आत्मा है, यह महावीर का होगा, बुद्ध का होगा, कृष्ण का होगा। फिर पाना क्या है जब हमारे भीतर है ही, यह हमारा है। अगर पहला भी आपका है, तो फिर कोई दिक्कत नहीं। अगर पहला दूसरे का है, तो दूसरे के अनुभव से आप निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। अपना अनुभव अपना निष्कर्ष होगा। दूसरे का अनुभव आपके लिए निष्कर्ष नहीं हो सकता।
तो आप एक तरकीब उपयोग में ला रहे हैं। एक आधा हिस्सा पीछे का अपना जोड़ रहे हैं। जो कि केवल इस बात की सूचना है, केवल इस बात की सूचना है कि हम अपनी निद्रा से नहीं जागना चाहते हैं, हम चुपचाप जैसा चल रहा है चलते देना

चाहते हैं और अपने को एक रेशनेलाइज्ड, एक बौद्धिक तर्क भी दे देना चाहते हैं कि उसको पाना ही क्या है जो कि उपलब्ध ही है!
कुरान में एक पंक्ति है कि वे लोग जो शराब पीते हैं, वे लोग जो व्यभिचारी हैं, वे लोग जो बुरे कामों में रस लेते हैं, उनको अनिवार्यरूपेण नरक जाना होगा। कोई पंक्ति है। एक व्यक्ति शराब पीता, व्यभिचारी है, उसको किसी साधु ने कहा कि आपको पता नहीं है कि इसका परिणाम क्या होगा! वह बोला, मैंने सोचा, अगर हम पूरे वाक्य को नहीं मान सकते हैं, तो कम से कम आधे को तो मानें ही। उसने कहा, अगर सदग्रंथों का पूरा वाक्य हमसे नहीं सम्हलता है, तो कम से कम आधे को तो सम्हालें ही। आधा वाक्य यह है कि वे लोग जो शराब पीते हैं, वे लोग जो व्यभिचार करते हैं, वे जो अनाचारी हैं, आधा इतना है और आधा यह है कि वे नरक जाएंगे। तो उसने कहा, पूरी बात अगर न भी बनती हो, तो आधी हम सम्हाल लेते हैं। जितनी बनती है उतना करते हैं अभी।
ये जो हमारी आधी बातें हैं, इनमें हमारे बड़े हिसाब हैं। इसमें आधी बात आपकी है और आधी किसी दूसरे की है। वह पहली भी आधी आपकी हो तो ठीक है और नहीं तो आपकी आधी का कोई मूल्य नहीं है। और हमने सारे ग्रंथों में और सारे सदवचनों में अपने हिसाब की चीजें निकाल ली हैं। वे आधी-आधी बातें हैं। वे आधी-आधी बातें हैं और आधी हमने छोड़ दी हैं, जिनके बिना वे न केवल निरर्थक हैं बल्कि घातक हैं।
तो मैं यही कहूंगा, प्रश्न तो अच्छा है। और अगर यह मान कर आप बैठ गए कि आत्मा है इसलिए क्या पाना है? तो घातक हो जाएगा। अभी आपको आत्मा नहीं है, अभी यह आपके लिए सुना हुआ शब्द है, यह अनुभव नहीं है। जिस दिन यह अनुभव होगा उस दिन जरूर पाने का कोई प्रश्न नहीं रह जाता। उस समय तक तो पाने जैसी केवल एक ही चीज है वह आत्मा है। उसके पहले पाने जैसा कुछ भी नहीं है।
अब दोपहर में बाकी प्रश्नों को ले लेंगे।

समाधि कमल
चौथा प्रवचन

सबसे बड़ा चमत्कार--जल में कमलवत

बहुत से प्रश्न हैं, थोड़े से के उत्तर मैं दे पाऊंगा।
लेकिन अगर आपने ठीक-ठीक अपने ही प्रश्न के शब्दों को खोजने की कोशिश की, तो हो सकता है उत्तर न भी मिले। लेकिन जो उत्तर मैं दे रहा हूं, उनमें बाकी प्रश्नों के उत्तर भी होंगे। और सच तो यह है कि जो भी मैं कह रहा हूं अगर वह आपको ठीक से समझ में आ जाए, तो शायद ही आपके मन में कोई प्रश्न होने की गुंजाइश है।

एक प्रश्न पूछा है कि यदि जल में कमल की भांति मनुष्य अपने सांसारिक कामों में निमज्जित रह कर ही, उसमें डूबा रह कर ही शांति लाभ कर सकता है, तो माथेरान और एकांत में आने की जरूरत क्या है? इस एकांत में आने की और सारी चीजों से दूर हो जाने की जरूरत क्या है?

हम इस उपमा को बहुत बार सुने होंगे कि जल में और मिट्टी से कमल पैदा हो जाता है। लेकिन कमल के पैदा होने के लिए उसे मिट्टी से दूर हो जाना होता है और उसे जल से भी ऊपर उठ जाना होता है। अगर वह मिट्टी में ही निमज्जित रहे, तो कमल कभी पैदा नहीं होगा। वह मिट्टी से पैदा होता है, लेकिन मिट्टी से दूर होकर पैदा हो पाता है। उसकी जड़ें मिट्टी में होती हैं, लेकिन वह मिट्टी में नहीं होता। वह जितने दूर होता चला जाता है, उतना ही खिलता चला जाता है, उतना ही परिपूर्णता को उपलब्ध होता है।
मैं तो मानता ही यह हूं कि जीवन की सामान्य स्थिति से दूर भागने का कोई सवाल नहीं है। जीवन की सामान्य स्थिति से दूर भागने का सवाल नहीं है, कोई भाग भी नहीं सकता। फिर जो हम एकांत खोजते हैं, अकेलापन खोजते हैं, साधना के लिए कोई परिस्थिति खोजते हैं, उसका उपयोग दूसरा है। उसका उपयोग यह नहीं है कि आप जीवन से टूट जाएंगे। मेरा मानना है, उसके माध्यम से ही आप पहली दफा जीवन से संबंधित होंगे।
अभी आपको ख्याल होगा कि आप घर में हैं, गृहस्थी में हैं। आप गलती में हैं। आप सिवाय अपने में और कहीं भी नहीं हैं। घर-गृहस्थी में आप दिखते हैं, आप वहां हैं नहीं; आप अपने में ही घिरे हैं। अभी सुबह ही मैंने कहा, जिनको आप प्रेम करते हैं उनको आप प्रेम थोड़े ही कर रहे हैं। आप सिवाय अपने को और किसी को प्रेम नहीं करते हैं। अभी आप अपने में घिरे हैं। तो मैं आपको घर-गृहस्थी से दूर नहीं ले जा रहा, मैं अपना यह जो घिराव है आपके भीतर, उससे दूर ले जा रहा हूं। सच में तो जमीन पर कोई मनुष्य तब तक न तो किसी को प्रेम करता है, न उसका कोई परिवार होता है, जब तक वह स्वयं को नहीं जानता। आमतौर से लोग कहेंगे कि जिन्होंने स्वयं को जाना है वे परिवार छोड़ कर गए थे। और मेरा मानना है, जिन्होंने स्वयं को जाना, यह पूरा संसार उनका परिवार हो गया है।
महावीर परिवार छोड़ कर गए हैं, ऐसा ही हमने देखा; फिर हमने यह नहीं देखा
जब यह पूरा संसार उनका परिवार हो गया। छोटी गृहस्थियां गृहस्थियों के विपरीत नहीं तोड़ी गई हैं, वे बड़ी गृहस्थी में निमज्जित हो गई हैं। संसार को छोड़ कर भागने की बात नहीं है, आप जो अपने में घिरे हैं बुरी तरह, चौबीस घंटा जो एक सेल्फ आक्युपेशन चल रहा है, वह जो अपने में व्यस्तता चल रही है, उस दीवाल को तोड़ देने की बात है। उसको तोड़ कर आप पहली दफा संसार को देखेंगे। पहली दफा आप देख पाएंगे कि आसपास कौन है और क्या है। अभी आप आसपास देख भी नहीं रहे हैं। अभी आप भीतर इतने व्यस्त हैं कि आप आसपास भी नहीं देख पा रहे हैं।
तो यहां इस एकांत में आकर हम संसार से दूर नहीं जा रहे हैं, अगर ठीक से समझिए तो अपनी व्यस्तता से, वह जो हमारा आक्युपाइड माइंड है, वह जो निरंतर उलझा हुआ मस्तिष्क है, हम उससे थोड़ा पीछे सरक रहे हैं और उसको खाली करने का उपाय कर रहे हैं। इस उपाय में जो भी सहयोगी है उसको हम माध्यम की तरह चुन

रहे हैं। एक बार भी वह खाली हो जाए और एक बार भी उसके खाली होने पर हम उसको अनुभव कर लें जो उसके पीछे है, फिर उस अनुभव को खोना असंभव है, फिर आप कहीं भी चले जाएं वह अनुभव आपका खोएगा नहीं। यह जो एकांत है, यह जो अकेले में चले आना है, इसकी उपयोगिता केवल इतनी है कि वह आपके दिमाग की जो निरंतर धारा बह रही है, अंतरधारा, वह थोड़ी खंडित हो जाए, थोड़ी टूट जाए। एक बार भी आप उसके पीछे झांक सकें, तो फिर जो आप झांक लेंगे उसे भूलना असंभव है। सत्य को एक दफा जान लिया जाए, उसका विस्मरण नहीं होता है। सत्य का विस्मरण नहीं होता है और जो ज्ञान उपलब्ध हो जाए उसे खोया नहीं जा सकता है। ज्ञान को खोना असंभव है।
तो एक दफा व्यवस्था करके हम एकांत में, अकेले में उसे जानने की कोशिश करते हैं। और इस बीच हम उन सारी चीजों को और उनसे थोड़ा दूर रहना चाहेंगे जो कि उस कोशिश के विपरीत पड़ती हों।
... अव्यस्त माइंड, यह अनआक्युपाइड माइंड, यह मस्तिष्क का ऐसा खाली आकाश की तरह खाली हो जाना, आपके भीतर जो है उसकी अनुभूति में ले जाएगा। फिर मैं आपसे नहीं कहता आप संसार से टूट जाएंगे। उसके बाद ही आप पहली दफा कमल की भांति जल में हो सकेंगे। उसके बाद ही! उसके बाद ही आप सबके बीच हो सकेंगे और फिर भी अकेले होंगे। उसके बाद ही आप सब करेंगे और फिर भी जो आप करेंगे उसमें आपकी आसक्ति और मोह नहीं होगा। उसके बाद फिर आप पूरे जीवन में जीएंगे, लेकिन आप पूरे वक्त जानते रहेंगे वास्तविक जीवन कुछ और है। उस वक्त आप सारे जगत के बीच सब करते हुए भी उस करने से ग्रसित हुए और बंधे हुए नहीं होंगे।
एक साधु था, च्वांगत्सु। उसकी पत्नी का देहांत हो गया। चीन का जो उस समय का बादशाह था वह च्वांगत्सु को बहुत आदर करता था। वह सम्मान प्रकट करने और संवेदना प्रकट करने च्वांगत्सु के घर गया। सुबह पत्नी को दफनाया है, वह बारह बजे के करीब च्वांगत्सु के घर गया, बादशाह खुद एक अत्यंत गरीब और दरिद्र आदमी के घर आया। सारा गांव देखने खड़ा हो गया। लेकिन बादशाह जब पहुंचा तो वह देख कर हैरान हुआ, वह अपने एक झाड़ के नीचे बैठे एक बर्तन को बजाता था और एक गीत गाता था। तो उसे बहुत हैरानी हुई। उसकी पत्नी अभी सुबह-सुबह मरी है और वह बर्तन को बजा कर गीत गा रहा है। यह बड़ा अशोभन था। उसने जाकर च्वांगत्सु को कहा, मित्र एक तो दुख न मनाना ही काफी अशोभन है, अशिष्ट है, दूसरा तुम गीत गाते हो? यह तो... यह मुझे ठीक नहीं मालूम होता।
उस च्वांगत्सु ने कहा कि अगर मैं पत्नी के मरने पर गीत न गाऊं, तो तुम समझना कि मैंने उसे प्रेम ही नहीं किया। बहुत अच्छी बात कही। उसने कहा, अगर मैं पत्नी के मरने पर गीत न गाऊं, तो तुम समझना कि मैंने उसे प्रेम ही नहीं किया। और अगर पत्नी के मरने पर च्वांगत्सु गीत गाता हुआ न पाया जाए तो दुनिया कहेगी च्वांगत्सु कुछ जानता ही नहीं था। तो सारी दुनिया याद रखेगी कि च्वांगत्सु कुछ जानता ही नहीं था। यह मेरा गीत सूचना होगी कि मैंने उसे प्रेम किया था। और यह गीत मेरी सूचना होगी कि मैं जानता था कि कोई मरता नहीं है।
यह जो च्वांगत्सु ने कहा कि दुनिया कहेगी कि च्वांगत्सु जानता नहीं था। अगर आप जानते हैं, तो च्वांगत्सु ने कहा कि आपको दिखाई पड़ती है कि मृत्यु हुई और मुझे दिखाई पड़ता है मेरी पत्नी का मोक्ष हो गया। आपको दिखाई पड़ती है कि मृत्यु हुई, तो आप सोचते हैं रोऊं! मैं जरूर रोता अगर वह मृत्यु उसकी होती। उसकी मृत्यु नहीं हुई, उसका मोक्ष हो गया। मैं जरूर रोता, वे लोग रोने योग्य हैं जिनकी मृत्यु ही होती है और वे लोग गीत गाने योग्य हैं जिनका मोक्ष हो जाता है। और उसने कहा, उसे मैंने इतना प्रेम किया कि जीवन भर एक ही हमारी आकांक्षा थी कि मृत्यु न हो, मोक्ष हो जाए। और उसने मुझे इतना प्रेम किया कि उसकी भी जीवन भर यही आकांक्षा थी कि मेरी मृत्यु न हो, मोक्ष हो जाए।
अगर आप प्रेम करते हैं किसी को, तो आप उसकी मृत्यु से नहीं, उसके मोक्ष
न होने से डरेंगे। और अगर आप प्रेम करते हैं किसी को, तो आपके लिए असंभव होगा कि आप उसको मोह कर सकें और उसे मोह में गिरा सकें। यह अप्रेम का लक्षण होगा। यानी इसे थोड़ा समझना जरूरी है। जिसे हम प्रेम करते हैं उसे हम मोह

में गिराने का कारण बन सकें, यह असंभव है। हम उसे मोह-मुक्त करने का कारण बनेंगे। जिसे हम प्रेम करते हैं उसे हम बांधें, यह असंभव है। हम उसे मुक्त करने में सहयोगी बनेंगे। प्रेम का लक्षण यह होगा। जितना आपके भीतर जीवन का अनुभव, शांति का और आनंद का अनुभव और प्रकाश उत्पन्न होगा, उतना आप आसपास पाएंगे आप सबको प्रेम कर पा रहे हैं। और उस प्रेम का एक ही अर्थ होगाः आप उनके जीवन में सहयोगी हो जाएं कि वे परम जीवन को पा सकें।
अभी हम सब एक-दूसरे के लिए सहयोगी हैं कि हम कैसे एक-दूसरे को नरक में पहुंचा सकें। इसको हम प्रेम कहते हैं! अभी हम सहयोगी हैं कि एक-दूसरे को नरक में कैसे पहुंचा सकें। इसको हम प्रेम कहते हैं!
प्रेम का अर्थ होगाः हम कैसे एक-दूसरे को नरक के बाहर निकाल सकें। और अगर आपको अपनी थोड़ी आंतरिक अनुभूति शुरू होती है, तो आपके आसपास आपका प्रेम एक ही फल लाएगा कि जिस भांति कीचड़ से आप उठ कर कमल बने हैं, दूसरे भी बन जाएं। वे कोई आपके निकट हों, दूर हों। और उस स्थिति में आपके जीवन से कोई क्रियाएं नहीं शून्य हो जाएंगी कि आप भाग जाएंगे सब छोड़ कर। भागने का प्रश्न ही तब है जब जो आप कर रहे हैं उससे डर हो।
अभी सुबह ही मैं कहता था, कोई किसी साधु के पास गया, उसने रुपये-पैसे उसके सामने किए तो उसने मुंह मोड़ लिया। वह मुझसे बोला कि कितने अनासक्त वे साधु होंगे, उन्होंने पैसे पर से मुंह मोड़ लिया। मैंने कहा, अभी वे अनासक्त न होंगे। एक व्यक्ति है, उसके सामने पैसे रखो और धन रखो, उसकी लार टपक जाएगी कि उसे पा ले। और एक व्यक्ति है जो कि दूसरी तरफ मुंह फेर रहा है। जो उससे दूसरी तरफ मुंह फेर रहा है वह किसलिए फेरता होगा? लार टपकने का डर होगा। दूसरी तरफ मुंह फेरने का प्रयोजन क्या होगा? दूसरी तरफ मुंह फेरने का प्रयोजन एक ही हो सकता है कि अगर उस धन पर आंख रही तो वह उसे खींच लेगा। वह अनासक्ति नहीं है, यह संसार से भागना है।
संसार से भागते वे हैं जिनके मन में संसार बहुत घना है और बहुत गहरा है। संसार से भागते वे हैं जो संसार से डरे हुए हैं। संसार से भागने का प्रश्न नहीं है, अपने को परिवर्तित करने और बदलने का प्रश्न है। और अगर आप अपने को परिवर्तित करते हैं और बदलते हैं, तो आपको धन को देख कर आंख फेरने की जरूरत नहीं है। धन आपको दिखेगा, लेकिन आपको पकड़ेगा नहीं। यानी सवाल यह नहीं है कि धन को छोड़ दें; सवाल यह है कि धन आपको पकड़े नहीं। सवाल यह नहीं है कि आप मकान को छोड़ कर बाहर चले जाएं; सवाल यह है कि मकान आपके भीतर न प्रवेश कर जाए।
एक साधु था। एक बादशाह उसे बहुत प्रेम करता रहा, बहुत प्रेम किया। इतना प्रेम किया कि एक दिन उसने कहा कि आप मेरे महल में आ जाएं तो बड़ी कृपा हो, वहीं रहें। मुझसे नहीं देखा जाता कि इस झोपड़े में और दरख्त के नीचे आप पड़े रहें।
वह साधु बोला, तुम्हारी मर्जी! हम यहां सोते थे, वहां सो जाएंगे।
बादशाह जब उसे रथ पर लेकर घर लौटने लगा, रास्ते में उसे संदेह हुआ। अगर वह सच में फकीर था, अगर सच में ही साधु था, तो कैसा साधु है कि राजमहल जाने के लिए तैयार हो गया? उसे इनकार करना था कि मैंने लात मार दी राजमहल को, मैं वहां नहीं आता। तो समझता बादशाह कि हां, कोई साधु है। बादशाह को शक हो गया। वह साथ बैठा है। उसने रथ पर बैठने में भी इनकार नहीं किया। वह मजे से गद्दी से टिक कर बैठ गया। वह राजमहल जाने को राजी भी हो गया, उसने एक दफे भी नहीं कहा कि नहीं, मैं राजमहल नहीं जा सकता। बादशाह को लगा कि जरूर कुछ गड़बड़ है। साधु पूरा नहीं मालूम होता। लेकिन अब ले ही आया था तो उसे ले गया। उसे बढ़िया से बढ़िया भवन में ठहराया, वह मजे से ठहर गया। उसे बढ़िया भोजन दिए, उसने खाए। राजा तो बहुत हैरान हुआ! दो ही दिन में वह समझा कि हम गलत आदमी को ले आए। सारा आदर खराब हो गया, यह काहे का साधु है! उसे बहुत बढ़िया बिस्तरों पर सुलाया, वह मजे से सो गया। थोड़े ही दिन, राजा को तो बहुत संदेह जोर से पकड़ने लगा। श्रद्धा सब संदेह में खंडित हो गई। क्योंकि श्रद्धा साधु पर थोड़े ही थी। श्रद्धा तो उस दरख्त पर थी, उस झोपड़े पर थी। श्रद्धा तो उस भूखे मरते आदमी पर थी, साधु पर थोड़े ही थी। श्रद्धा तो उस भीख मांगने

में थी, साधु पर थोड़े ही थी। वह तो न भीख मांगता है, न दरख्त के नीचे है, न नंगा है, न उघाड़ा है। अब काहे पर श्रद्धा होने वाली थी।
आपने भी अभी तक जो श्रद्धा की होगी शायद ही कभी किसी साधु पर की हो।
मैं आपको स्मरण दिलाता हूं, अभी तक आपने शायद ही किसी साधु को जाना भी हो।
आपने कम कपड़ों पर श्रद्धा की होगी, कम भोजन पर श्रद्धा की होगी, उघाड़े-नंगे आदमी पर श्रद्धा की होगी, घर-द्वार छोड़े पन पर श्रद्धा की होगी। अभी साधु को तो आप जाने भी नहीं होंगे।
वह बादशाह एक दिन सुबह-सुबह उस साधु के पास आया और बोला, क्षमा करें,
एक संदेह मुझे बड़ा हैरान किए दे रहा है। जब तक आप मेरे महल में नहीं आए थे, मैं आपके प्रति एक आदर अनुभव करता था। जब से आ गए हैं, मैं इतनी हैरानी में हूं, मेरे संदेह का निवारण कर दें। मेरी रातों की नींद मुश्किल हो गई है। उस राजा ने कहा कि जब से आप आए हैं, एक ख्याल मुझे पकड़ता है कि मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं है। और अब तो निश्चित ही हो गया। जैसा मैं रहता हूं, आप रहते हैं; जैसा मैं सोता हूं, आप सोते हैं; जो मैं खाता हूं, आप खाते हैं। तो मुझमें आपमें भेद क्या है?
उस साधु ने कहा, भेद अगर जानना ही चाहते हैं, थोड़ा गांव के बाहर चलना होगा।
वह बोला, मैं जानना ही चाहता हूं, गांव के बाहर चलूंगा।
वे दोनों सुबह-सुबह उठे और गांव के बाहर गए। जब नदी की रेखा समाप्त हो गई, उस राजा ने कहा, अब बता दें। वह साधु बोला, थोड़ा और आगे चलें तो बताऊं, और यह भी हो सकता है आगे चलने से ही उत्तर भी मिल जाए। राजा कुछ समझा नहीं। वे थोड़े और आगे गए, फिर राजा ने कहा। उसने कहा, थोड़ा और चलें। दोपहर घनी होने लगी, राजा ने कहा, बहुत देर हो गई, अब उत्तर दे दें। उस साधु ने कहा, उत्तर मेरा यह है कि मैं तो अब आगे जाता हूं, आप भी चलते हैं? वह राजा बोला, मैं कैसे जा सकता हूं? मेरा राज्य है, मेरा महल, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे-- मेरा सब कुछ पीछे है।
वह फकीर बोला, मेरा पीछे कुछ भी नहीं है। तो मैं तो जाता हूं। तुम्हारे महल में जरूर था, इससे तुम्हें भ्रम हो गया कि मेरे भीतर तुम्हारा महल होगा। मैं तुम्हारे महल में था, इससे तुम्हें भ्रम हो गया कि मेरे भीतर तुम्हारा महल होगा। तुम्हारे महल में जरूर गया था, तुम्हारे महल को अपने भीतर नहीं लिया है। मैं जाता हूं।
वह बादशाह ने पैर पकड़े और कहा कि मत... मुझे बड़ा दुख है, मुझे बोध हो गया। वापस चलें।
वह साधु बोला, वापस तो अभी चलूं, लेकिन फिर तुम्हें संदेह पकड़ लेगा।
तो इसलिए नहीं अब मैं पीछे जाने से रुक रहा हूं कि मुझे कोई दिक्कत है।
क्योंकि जिसे झोपड़े में और महल में फर्क है वह अभी साधु नहीं है। जिसे झोपड़े में, महल में अभी फर्क है वह अभी साधु नहीं है।

उसने कहा, मैं तो अभी चलूं, लेकिन तुम्हें दिक्कत हो जाएगी, तुम्हें फिर संदेह पकड़ लेगा। तुम्हें संदेह न पकड़े इसलिए अब मुझे जाने ही दो।
आप हैरान होंगे, वस्तुतः जो साधु हैं, वे इसलिए दरख्त के नीचे नहीं हैं कि महल में रहना कोई कठिन है। आप भर को संदेह न पकड़ जाए। आप भर को चिंता और दुख और परेशानी न हो जाए। अन्यथा उन्हें इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। जिसे थोड़ा सा जीवन और आत्मिक अनुभव होना शुरू होगा, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह कहां है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह कहां है और वह क्या कर रहा है, क्या करना पड़ रहा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उस सारे करने और होने के भीतर वह निरंतर अलिप्त रह पाता है। उसको ही हम कर्मयोग कहते हैं। वह करेगा, लेकिन करने में उसकी आसक्ति नहीं होगी, मोह नहीं होगा।
पर कोई सोचता हो, कोई सोचता हो कि तब ठीक है, हम घर-गृहस्थी में हैं, कोई मोह न रखेंगे। तो आप गलती में हैं। आत्मज्ञान के पूर्व अमोह नहीं हो सकता। आप कहेंगे, फिर हम घर-गृहस्थी में हैं और मोह नहीं रखेंगे, ऐसा कर्म करेंगे कि मोह नहीं रखेंगे, आसक्ति नहीं रखेंगे और वहीं हमको तो जल में कमलवत रहने दें। आपकी यह जो दलील है, यह दलील केवल ना-कुछ करने की है। यह

दलील केवल गृहस्थी में बने रहने की है। यह दलील झूठी है, यह आत्म-प्रवंचना है। आप सोचते हों, हम मोह न करेंगे, लेकिन वहीं रहने दें। असंभव है कि आप मोह नहीं करेंगे। मोह तो तभी जा सकता है, जब थोड़ी सी आत्मिक झलकें उपलब्ध हो जाएं। मोह तो इसलिए है कि मैं जानता हूं कि मैं देह हूं, इसलिए दूसरे की देह पर आकर्षण है, इसलिए दूसरे की देह से मोह है। जब तक मैं जानता हूं मैं देह हूं, तब तक धन से मोह होगा। जब तक मैं जानता हूं मैं देह हूं, तब तक मकान से मोह होगा। यह मेरा देह होना ही मेरा मकान के प्रति, मेरा देह के प्रति, दूसरे की देह के प्रति, धन के प्रति मोह है। जब तक मैं जानता हूं मैं पदार्थ हूं, तब तक पदार्थ से मेरा मोह विलीन नहीं हो सकता। जिस दिन मैं जानूंगा कि मैं पदार्थ नहीं, चैतन्य हूं, उस दिन जो-जो पदार्थ है उनसे मेरा मोह विलीन हो जाएगा। पदार्थ से मोह नहीं है, आत्म-अज्ञान है, देह का बोध है, वही मोह है।
तो कोई सोचता हो कि हम घर में रहेंगे और मोह न करेंगे, तो गलती में है,
वह धोखा दे रहा है अपने को। और दुनिया में दूसरे को धोखा देना उतना बुरा नहीं है जितना अपने को धोखा देना बुरा है।
यह उस आत्मबोध के लिए थोड़ा सा, जो हमारी रोजमर्रा की परिस्थिति है, उससे अलग हट जाना जरूरी है। उस परिस्थिति से थोड़ा सा अलग हट कर अपने को देखना जरूरी है। क्योंकि उस घनेपन में आप अपने को देख नहीं पाएंगे। उस व्यस्तता में आपको फुर्सत नहीं है, समय नहीं है कि अपने को देख पाएं। इसलिए अच्छा है वर्ष में थोड़े दिन को कभी किसी एकांत में, किसी वन-प्रदेश में, किसी जंगल में चले जाएं। इसलिए नहीं कि जंगल में रहना है, बल्कि इसलिए कि जंगल में रह कर बस्ती को देखना आसान होगा। थोड़ी दूरी चाहिए न, पर्सपैक्टिव के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। थोड़ा फासला चाहिए किसी भी चीज को देखने के लिए। तो थोड़ा वन में हट जाएं ताकि देख सकें कि घर-गृहस्थी क्या है? बस्ती क्या है? वह संसार क्या है जिसमें मैं था? तो दो-चार-आठ दिन को, पंद्रह दिन को, महीने भर को कहीं बिल्कुल एकांत में हट जाएं। वहां से आप बहुत कुछ देख पाएंगे। और वह जो आपको बोध होगा--आप वापस लौट आएं--और फिर उस बोध के अनुसार जीना, उस बोध के अनुसार जीएं। तो किसी दिन वह घटना घटेगी कि आप जल में कमलवत हो जाएं। अन्यथा कोई जल में कमलवत नहीं होता। उसके बाद ही संभव हो सकता है।
आत्मज्ञान के बाद ही अमोह संभव हो सकता है। अमोह हो तो अनासक्ति फलित
हो जाती है। पर इस प्रवंचना में कोई न पड़े कि तब हम तो घर-गृहस्थी में हैं ही, तो मजे से वहीं रहे चले जाएं, वहीं अमोह हो जाएगा, वहीं अनासक्ति हो जाएगी। और जैसे वह फकीर जिसकी मैंने बात कही, महलों में रहता था, ऐसे ही महलों में हम भी रहें, कोई हर्ज नहीं है। यह धोखा अपने आप को न दें। वह महलों में रहता था, लेकिन रहने का उसका बड़ा विशिष्ट ढंग है। वह महलों में वैसे ही रह रहा है जैसे दरख्तों के नीचे रहा है। शायद उसके लिए महल है ही नहीं, शायद वह अभी दरख्त के नीचे ही है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ रहा। वह अंतर्दृष्टि आपमें हो तो फिर कहीं रह आएं। लेकिन अपने को धोखा मत देना, अपने को धोखा देने की व्यवस्था नहीं कर लेना। हमने बहुत सी व्यवस्था कर ली है। और ये अच्छे-अच्छे शब्द--कर्मयोग और अनासक्तियोग और घर के भीतर ही रह कर संन्यास और कर्म करते हुए अकर्म--ये अच्छे-अच्छे शब्द बहुत जहरीले हैं, बहुत घातक हैं। लाखों लोग इन शब्दों के धोखे में अपने को डुबा लेते और नष्ट कर लेते हैं।
तो स्मरण रहे कि कहीं जल में मिट्टी की भांति न पड़े रहें, जल में कमल
की भांति होना बड़ी भारी बात है, बड़ी क्रांतिकारी बात है। और उसके पहले मिट्टी से इतना दूर होना चाहिए कमल को... कमल अपनी डंडियों को फेंकता है मिट्टी से दूर, और जब वह मिट्टी को भी पार कर जाता है, फिर वह पानी को भी पार कर जाता है, तब वह खड़ा होता है। वह दो पर्तें पार कर जाता है--मिट्टी की पर्त, जिससे वह पैदा हुआ। आप किससे पैदा हुए हैं? आप शरीर से पैदा हुए हैं। आप दो शरीरों से पैदा हुए हैं। जब आप शरीर से इतना दूर निकल जाएं जितना कि कमल अपनी डंडियों को मिट्टी से फेंक कर दूर निकल जाता है। और फिर आप पानी से पार हो जाएं।

और पानी क्या है?
आपके चारों तरफ की परिस्थिति, जो आप शरीर के बाद उत्पन्न होकर उपलब्ध करते हैं। एक बच्चा मां-बाप से पैदा होता है, फिर वह क्या पाता है? आसपास जो पाता है वही संसार है। एक कमल जब अपने बीज को फोड़ता है और मिट्टी के ऊपर उठता है तो पानी को पाता है। मिट्टी को पार कर गया, फिर पानी को उपलब्ध होता है। फिर पानी को पार करता और ऊपर निकलता है।
तो दो चीजें आपको पार करनी हैं। देह को पार कर जाएं, जिससे आप पैदा हुए, वह आपकी मिट्टी है। और उस संसार को जो आपको चारों तरफ घेरे है, उसका घेरा आप पर न रह जाए, उसका इम्प्रिजनमेंट आपके ऊपर न रह जाए, आप उसको पार कर जाएं। तो फिर आप कमल की स्थिति में होंगे, उसके पहले नहीं हो जाएंगे।
तो इन अच्छे शब्दों में कभी खो जाने और भूल जाने जैसी बात नहीं होनी चाहिए। नहीं तो आदमी अपने को धोखा देने में बहुत होशियार है। बहुत होशियार है, उसकी होशियारी हद्द है, वह अपने को पूरे जीवन धोखा दे सकता है। अनेक जीवन धोखा दे सकता है।
तो मैं समझूंगा मेरी बात समझ में आपको पड़ी होगी।

प्रश्नः ध्यान के संबंध में जानकारी देते हुए कृत्रिम शब्द का उपयोग किया था। क्या ध्यान कृत्रिम तरीके से आत्मा के पास पहुंचने का माध्यम है अर्थात वह केवल आत्मा के पास जाने का आभास है?

मैंने कृत्रिम शब्द का प्रयोग बहुत सोच-विचार कर किया है। जैसे समझ लें, एक आदमी स्वप्न में कुछ देखे। एक आदमी स्वप्न में कुछ देखे, वह स्वप्न में जो देख रहा है वह तो झूठ है। कुछ जो देख रहा है वह आभास है। अगर आपने उसे हिला कर जगा दिया तो आभास टूट जाएगा। आभास टूट जाएगा और आभास के टूट जाने पर जो शेष रह जाएगा वह सत्य होगा।
ध्यान के माध्यम से हम किसी सत्य को नहीं पाते हैं, केवल आभास को ही तोड़ते हैं। हमने आत्मा को खोया नहीं है, हम यह समझ रहे हैं कि हमने खो दिया। यानी यह हमारी एक भ्रांति है कि हमने उसे खो दिया है। तो ध्यान आपको आत्मा को नहीं दिलाता है, केवल इस भ्रांति को तोड़ देता है।
तो जो भ्रांति झूठी है, उसे तोड़ने का उपाय उतना ही झूठा होगा। अगर सपने में किसी चीज को आप मिटाएं, तो क्या मिटाना वास्तविक कहा जाएगा। जब सपना ही असत्य था तो उसे मिटाना वास्तविक कैसे हो सकता है? यानी मेरा मतलब यह है कि ध्यान जो है वह आत्मा को पाने का उपाय है, ऐसा मत समझें; ऐसा कहा जाता है, ऐसा मैं कहता हूं, वह इस अर्थ में कह रहा हूं कि भ्रांति टूट जाएगी तो आत्मा आपको अनुभव होगी। लेकिन वस्तुतः ध्यान आत्मा को पाने का उपाय नहीं है, ध्यान केवल भ्रांति को तोड़ने का उपाय है। इसलिए मैंने उसे कृत्रिम कहा। एक भ्रांति को तोड़ने का उपाय कृत्रिम ही हो सकता है। भ्रांति को तोड़ने का उपाय वास्तविक नहीं हो सकता, क्योंकि वास्तविक चीज भ्रांति को नहीं तोड़ सकती है। वे एक ही तल की चीजें एक ही चीज को तोड़ती हैं। भ्रांति को भ्रांति ही तोड़ती है, आभास को आभास ही तोड़ देता है।
हम एक आभास में दूर निकल गए हैं कि हमको प्रतीत हो रहा है कि हम शरीर हैं। एक आभास हमने आरोपित किया है कि हम शरीर हैं। अब इस आभास को मिटाना है तो हमें यह आभास अभी करना होगा कि हम शरीर नहीं हैं। पहला आभास जितना झूठा है, दूसरा आभास भी उतना ही झूठा है। दोनों एक-दूसरे को काट देंगे और तब जो शेष रह जाएगा वह आपकी आत्मा होगी, वह आपकी वस्तुस्थिति होगी।
मेरी आप बात समझ रहे हैं? ध्यान जो है आत्मा को पाने का सीधा उपाय न होकर केवल भ्रांति के विसर्जन का उपाय है। एक भूल है उसके विसर्जन का उपाय है। अगर ध्यान से आत्मा पाई जाती हो, तो आत्मा ध्यान के खोने पर फिर खो जाएगी। अगर ध्यान से आत्मा पाई जाती हो तो वह अपनी चीज न होगी। जो चीज किसी चीज से पाई जाए वह अपनी नहीं हो सकती। वह अगर कोई उपलब्धि हो, कोई एचीवमेंट हो, तो वह अपना नहीं हो सकता है, वह स्वरूप का नहीं हो सकता है। स्वरूप का अर्थ यह है कि जिसे हमने खोया ही नहीं है। लेकिन हम एक भ्रम में, एक आभास में हैं। उस आभास को कोई तोड़ दे, तो हमें जो हमारे पास था वह दिख जाए।

इसे यूं समझेंः मनुष्य को धर्म कुछ भी देता नहीं है, धर्म केवल उसके अज्ञान को छीन लेता है। समस्त योग ज्ञान-उपलब्धि का माध्यम नहीं है, अज्ञान-विसर्जन का माध्यम है। वह अज्ञान विसर्जित होता है और ज्ञान जो अज्ञान से आच्छादित था प्रकट हो जाता है, वह मौजूद है। वह मौजूद है! देखने में ऐसा ही लगेगा कि योग से हमें ज्ञान मिला। योग से ज्ञान नहीं मिला, केवल अज्ञान गया। ज्ञान मौजूद था। आच्छादित था, वह प्रकट हो गया। ज्ञान हमारा स्वरूप है। स्वरूप का अर्थ यह हैः जिसके बिना हम नहीं हो सकते हैं। आत्मा हमारा स्वरूप है। उसका अर्थ है कि जिसके बिना न हम कभी थे, न कभी हम होंगे। तो ध्यान को इसलिए मैंने कृत्रिम कहा, आर्टिफीशियल कहा। आर्टिफीशियल इसलिए कि वह एक दूसरी आर्टिफीशियलिटी को तोड़ रहा है। वह सत्य को नहीं दे रहा आपको, वह एक कृत्रिम है, दूसरे कृत्रिम को तोड़ रहा है।
विवेकानंद अमेरिका में थे। उनसे किसी ने कहा कि आप यह जो ध्यान वगैरह
की बात करते हैं, यह तो एक तरह का हिप्नोटिज्म है। अभी आज सुबह ही मुझसे किसी ने कहा कि आप रात जो कहे वह तो एक तरह का हिप्नोटिज्म है। विवेकानंद ने क्या कहा? विवेकानंद ने कहा कि जरूर वह एक तरह का हिप्नोटिज्म है, लेकिन वह डी-हिप्नोटिज्म है। उन्होंने जो शब्द का प्रयोग कियाः वह डी- हिप्नोटिज्म है। डी-हिप्नोसिस। उन्होंने कहा, हम एक तरह के सम्मोहन में, एक तरह के हिप्नोटिज्म में हैं। और उस हिप्नोटिज्म को, उस सम्मोहन को, उस मूर्च्छा को तोड़ने के लिए हमें एक दूसरे सम्मोहन के सिवाय कोई रास्ता नहीं है प्रयोग करने का। सम्मोहन सम्मोहन को काट देगा और तब जो शेष रह जाएगा वह हमारा सत्य होगा। आप बात समझ रहे हैं न? सम्मोहन सम्मोहन को काट देगा, एक भ्रम दूसरे भ्रम से खंडित हो जाएगा और तब जो शेष रह जाएगा वह हमारी सत्ता होगी, वह हमारी वास्तविकता होगी।
इसलिए ध्यान को वास्तविक मत समझ लेना। अन्यथा कोई ध्यान को ही पकड़ लेता है कि वही सब कुछ है। तो वह एक दूसरे भ्रम में पड़ गया, वह एक दूसरी दिक्कत में पड़ गया। ऐसे लोग हैं, जो ध्यान को उस भांति पकड़े हुए हैं।
एक साधु था, वह वर्षों से ध्यान कर रहा था। और ध्यान के पीछे पागल था
और चौबीस घंटे कर रहा था, चौबीस घंटे ध्यान में लगा हुआ था। उसका गुरु आया। उसका गुरु सुना कि वह उसका शिष्य बड़े निरंतर अखंड ध्यान में लगा हुआ है। वह गया, उसने देखा। वह तो किसी से बोलता नहीं, कोई आ जाए तो उसकी तरफ देखता नहीं, कोई वहां से निकल जाए तो आंख बंद कर लेता है। वह बिल्कुल खंडित नहीं होना चाहता, वह अपने ध्यान में लगा हुआ है। वह जितना वक्त मिलता है, ध्यान में। तो उसका गुरु बाहर बैठ गया, उसने एक पत्थर को लाया और उसकी देहली पर उसे घिसना शुरू कर दिया। उस पत्थर की ईंट को घिसता रहा बैठा--घंटा, दो घंटा, तीन घंटा। वह शिष्य कुछ भी नहीं बोला, वह अपने ध्यान में ही रहा, उसने इससे विघ्न नहीं माना। पर वह घिसता ही रहा, दोपहर बीत गई, वह घिसता ही रहा, सांझ आ गई। वह आखिर ध्यान करने वाला घबड़ा गया कि यह पत्थर क्यों घिसे जा रहा है उसका गुरु? सांझ को उसने उससे गुस्से में कहा कि क्षमा करिए, ये क्या पत्थर घिसे चले जा रहे हैं? क्या प्रयोजन है आपका यहां पत्थर घिसने से? सुबह से देख रहा हूं सांझ हो गई, आप पत्थर घिसे जा रहे हैं!
उसने कहा, मैं इसका एक दर्पण बनाना चाहता हूं। उसने कहा, मैं इसका एक दर्पण बनाना चाहता हूं।
वह शिष्य बोला, आप बुढ़ापे में पागल हो गए! पत्थर को घिसने से दर्पण बनेगा?
उसके गुरु ने कहा, मैं पागल नहीं हुआ हूं, केवल तुम्हें बताने आया हूं
कि मन को कितने ही घिसते रहो, उससे भी आत्मा नहीं मिलेगी। मन से जागो! मन को घिसते रहो, उससे भी आत्मा नहीं मिलेगी, वह पत्थर घिसना है। मन से जागो!
तो अगर आप ध्यान को ऐसा पकड़ लें, तो वह मन के घिसने जैसा हो जाएगा। फिर उसको घिसे जा रहे हैं, उससे कुछ भी नहीं होगा। जागना है! इसलिए मैंने उसे कृत्रिम कहा। हर सीढ़ी कृत्रिम है। इसलिए कृत्रिम है कि अगर सच में ऊपर पहुंच जाना है, तो एक समय तो सीढ़ी पर पैर रखना होता है, फिर दूसरे समय उसे छोड़ देना होता है।

अभी मैं परसों यहां से गया, तो किन्हीं मित्र ने कहा कि आपने पहले तो इतना ध्यान को समझाया और फिर आपने यह कह दिया कि इसको भी छोड़ देना पड़ेगा। तो फिर पकड़ें ही क्यों? जैसे मैं आपको एक छत के किनारे कहूं कि अगर आपको छत पर जाना है तो सीढ़ी पर चढ़िए। जब आप सीढ़ी पर चढ़ कर खड़े हो जाएं, तो मैं आपसे कहूं, अब इसको छोड़िए ताकि आप ऊपर जा सकें। तो आप कहेंगे, अगर ऐसे ही इसको छोड़ना ही था तो मुझे चढ़ने को क्यों कहा? मैं नीचे ही खड़ा रहता।
सीढ़ी पहुंचा सकती है, दो काम करने पड़ेंगे। सीढ़ी पहुंचाती है, उस पर चढ़िए और उसको छोड़िए। अगर सीढ़ी पर नहीं चढ़े तो भी नहीं पहुंचेंगे, अगर सीढ़ी पर चढ़े और सीढ़ी पर ही पकड़ कर रुक गए तो भी नहीं पहुंचेंगे।
मेरी आप बात समझ रहे हैं न? सीढ़ी पहुंचाती है, तो पहुंचाने में उससे दो काम करने होंगे आपको, पहले चढ़ना और फिर उसे छोड़ देना। अन्यथा सीढ़ी दो तरह से रोक लेगी। न चढ़िए तो रोक लेगी और चढ़ कर रुक जाइए उस पर तो रोक लेगी। छत पर पहुंचने के लिए सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है और छत पर पहुंचने के लिए सीढ़ी को छोड़ देना जरूरी है। जो सीढ़ी पर है वह छत पर नहीं है।
तो ध्यान को मैंने कृत्रिम कहा इस वजह से कि कहीं उसे सत्य समझ कर मत पकड़ लेना। कोई माध्यम सत्य नहीं होता। उसे कृत्रिम कहा ताकि यह स्मरण रहे कि उसे शुरुआत में पकड़ लेना है और उसे फिर छोड़ देना है। उसकी सार्थकता तब है जब आप पकड़ें और छोड़ दें।
अब अनेक लोग हैं, जो इन चीजों को इस भांति पकड़ लेते हैं कि वे उनके प्राण हो जाती हैं। वे उनको पकड़ कर जिंदगी भर बिता देते हैं। उन्होंने खराब कर लिया। वे सीढ़ियां पकड़े बैठे हैं, छत पर पहुंचे नहीं। यानी मेरा कहना यह है, किसी चीज को भी जिसको आप कृत्रिम रूप से आयोजित कर रहे हैं, वह आपका स्वभाव नहीं हो सकता। न ध्यान आपका स्वभाव है। ध्यान भी एक माध्यम मात्र है, आपके ऊपर जो विभाव है उसको अलग करने का। उसे पकड़ लेंगे तो बड़ी गलती हो जाएगी।
समझ लीजिए एक आदमी कुआं खोदता है और कुदाली से कुआं खोदता है। तो वह कुदाली से कुआं खोदता है, मिट्टी की पर्तें फेंकता है कुदाली से खोद कर। तो क्या आप सोचते हैं यह कुदाली जो है यही कुआं है? कि जब कुएं को खोद लेगा तो कुदाली को सिर पर रख कर घूमेगा?
कुदाली को फेंक देगा। वह तो केवल मिट्टी अलग करने का उपाय था, कुआं खोदने का नहीं, अगर बहुत ठीक से समझिए। कुदाली की वजह से पानी नहीं आया है, कुदाली की वजह से केवल मिट्टी अलग हुई है, पानी तो था। कुदाली की वजह से मिट्टी अलग हुई है, कुदाली की वजह से पानी नहीं आया है, पानी तो था। मिट्टी अलग हो गई, उसके साथ कुदाली भी फेंक देनी पड़ेगी। अगर अब आप कुदाली को पकड़ कर बैठ जाइए, तो फिर आपको पानी नहीं मिलेगा। पहले आप मिट्टी पकड़े बैठे रहे, अब कुदाली पकड़े बैठे हुए हैं।
बुद्ध ने कहा, कुछ ऐसे नासमझ हैं, नदी पर बैठ कर नाव में नदी पार करते हैं, फिर नाव को लेकर बाजार में घूमते हैं। वे कहते हैं कि इसने हमको नदी पार करवा दी। तो उन्होंने कहा, अनेक धार्मिक लोग ऐसे हैं जो धर्म को नाव न समझ कर उसको सिर का बोझ समझे हुए हैं। जिस दिन धर्म आपका छूट जाए, उस दिन समझना आप नदी पार हुए और नाव को भी वहीं छोड़ आए। नाव को कहां लिए फिरिएगा? जिसको हम साधना कहते हैं--साधना सीढ़ी की तरह है, नाव की तरह है, कुदाली की तरह है--वह व्यर्थ हो जाएगी। इसलिए मैं कह रहा हूं वह कृत्रिम है। क्योंकि वह अगर मैं वास्तविक आपसे कहूं, तो फिर उसको छोड़ा आपसे नहीं जा सकेगा। इसे स्मरण रखिए कि जो भी आप साध रहे हैं सब कृत्रिम है। और उसकी उपयोगिता इतनी है कि आपके ऊपर जो कृत्रिम छा गया है उसे वह काट देगा। इससे ज्यादा उसकी उपयोगिता नहीं है। जिस दिन कृत्रिम छंट जाएगा उस दिन वह उतना ही फिजूल है जितना जिसको उसने काटा वह फिजूल है। उसी वक्त उसे भी छोड़ देना है। अगर वह वास्तविक मालूम हुआ और लगा कि वह पकड़े रहना है तो वह बाधा हो जाएगी। रास्ते पर चलते हैं मंजिल पर पहुंचने को; मंजिल पर पहुंच कर रास्ता फिजूल हो जाना चाहिए। अगर रास्ता उस वक्त फिजूल न हो तो आप मंजिल पर नहीं पहुंच पाएंगे। इसलिए मैंने कहा सब रास्ते कृत्रिम हैं। सब रास्ते कृत्रिम हैं। और आंतरिक जीवन के तो सारे रास्ते कृत्रिम हैं। कृत्रिम हैं

कृत्रिम को काटने के लिए, ताकि कृत्रिम जब विलीन हो जाए तो जो वास्तविक है वह उपलब्ध हो जाए।
और यह तो आप समझ ही लीजिए, अज्ञान में आप जो भी करेंगे वह कृत्रिम होगा। अज्ञान में आप जो भी करेंगे, जो भी करेंगे वह कृत्रिम होगा। बस उस कृत्रिमता में दो तरह की कृत्रिमताएं हो सकती हैं। एक ऐसी जो अज्ञान को और घनी करती चली जाएं और एक ऐसी जो अज्ञान को कम कर दें।
अभी सुबह कोई मुझसे पूछता था कि आप ध्यान को कहते हैं विचार-शून्यता,
तो इसमें तो विचार तो हम करते ही रहते हैं कि विचार शून्य हो रहा है या श्वास देख रहे हैं, तो यह सब विचार है।
तो मैंने उनसे कहा कि अगर यह भवन है, यह कमरा है, और इस कमरे के बाहर जाना हो, तो मैं आपको कहूंगा, कमरे के बाहर जाने के लिए कमरे के बाहर, जहां कमरा समाप्त हो जाता है, वहां पहुंच जाइए। आप कहेंगे, लेकिन अभी तो आप कहते हैं कमरे के बाहर पहुंच जाइए, लेकिन आप कहते तो हैं कमरे में चलिए।
तो कमरे में चलना दो तरह का हो सकता है। एक तो आदमी जो गोल चक्कर इसी कमरे में काटे। वह काटता रहे, काटता रहे। वह भी कमरे में चल रहा है। और एक वह आदमी जो यहां से चले और दरवाजे से बाहर निकल जाए। वह भी कमरे में चल रहा है। एक कमरे में चलना कमरे में ही बनाए रखेगा और दूसरा कमरे में चलना कमरे के बाहर ले जाएगा। कमरे के भीतर दो तरह से चला जा सकता हैः चक्कर में और सीधा।
इस कृत्रिम अज्ञान के जीवन में मनुष्य दो तरह के काम कर सकता है। एक ऐसे जिनसे कृत्रिमताएं चक्कर की तरह बनी रहें और एक ऐसे जिनसे कृत्रिमताएं टूट जाएं। जब कृत्रिमता टूट जाए तो आपको पता चलेगाः ध्यान भी कृत्रिमता थी, साधना भी कृत्रिमता थी, तपश्चर्या भी कृत्रिमता थी। छोड़ा, पकड़ा, सब कृत्रिम था। जब आपको वास्तविक उपलब्ध होगा तो आपको पता चलेगा सब कृत्रिम था। लेकिन कुछ कृत्रिमताएं ऐसी थीं जो सहयोगी थीं बाहर लाने को, कुछ कृत्रिमताएं ऐसी थीं जो विरोधी थीं बाहर लाने में और अंदर ले जाती थीं।
इसलिए उसको मैंने कृत्रिम कहा है। कृत्रिम का अर्थ यह मत समझ लेना कि
वह बेकार है, उसे कुछ करना नहीं है। कृत्रिम का मेरा मतलब यह है कि किसी दिन वह जब बेकार हो जाए तो उसे वास्तविक समझ कर पकड़े मत रह जाना। मगर अगर कृत्रिम से आप यह मतलब लो कि वह बेकार है, जब कृत्रिम है तो अभी से उसको क्या पकड़ना! तो फिर सब बात फिजूल हो जाएगी।
जैसा मैंने परसों कहा, हम बच्चे को सिखाते हैंः ग--गणेश का। यह बिल्कुल झूठी बात है, यह बिल्कुल कृत्रिम है। गणेश का ग से क्या वास्ता? और अगर कोई वास्ता है गणेश का ग से, तो गधा का भी उतना ही है। वास्ता क्या है? लेकिन हम उसे एक कृत्रिम बात सिखाते हैंः ग--गणेश का। एक कृत्रिम बात सिखाते हैं ताकि ग उसे पकड़ जाए। अगर वह उसको पकड़ ले और जब भी पढ़े कहीं, तो पहले कहेः ग--गणेश का और तब ग को पढ़े। तो आप पाएंगे इसका दिमाग खराब है। एक कृत्रिमता थी जो सहयोगी थी, वह अब इसके लिए दिक्कत हो गई है, अब यह उसको पकड़े हुए है। वह कृत्रिमता सिखाने के लिए उपयोगी थी, लेकिन सिखाते से ही छूट जानी चाहिए। इशारे छोड़ देने चाहिए जब चीज मिल जाए। इस अर्थ में उसे मैंने कृत्रिम कहा है।
इस अर्थ में नहीं कि उसे पकड़ना नहीं है, इस अर्थ में कि पकड़ लेने के बाद स्मरण रखना है कि उसे छोड़ देना है। नहीं तो ध्यान पकड़ जाएगा, वही आपकी पकड़ हो जाएगी, वही आपकी जकड़ हो जाएगी, वह धीरे-धीरे आपकी मेंटल हैबिट हो जाएगी और उसमें कोई मतलब नहीं रह जाएगा।
सब छोड़ते जाना है जो पकड़ा है हमने, उस घड़ी तक पहुंचने के लिए जब वह मिल जाए जिसको हमने पकड़ा नहीं है, जो हमें पकड़े हुए है। उसको ही, जो हमें धारण किए हुए है, हमने धर्म कहा है। जिसको हम धारण कर रहे हैं, वह धर्म नहीं हो सकता। चाहे आप ध्यान कर रहे हों, चाहे मंदिर जा रहे हों, चाहे कुछ भजन कर रहे हों, चाहे कीर्तन कर रहे हों। ये तो आपने धारण किए हैं, ये धर्म नहीं हो सकते। जो आपको धारे हुए है वह धर्म है। तो जब आप अपने धारण किए हुए सारे

वस्त्र छोड़ कर खड़े हो जाएंगे, उस दिन आपको उसका पता चलेगा जिसको आपने धारण नहीं किया, जो आपको निरंतर उपलब्ध रहा है, जो आपका है, जो आपका स्वरूप है। ध्यान भी आप धारण कर रहे हैं, शांति भी आप धारण कर रहे हैं, साधना भी आप धारण कर रहे हैं, तपश्चर्या भी आप धारण कर रहे हैं। जो आप धारण कर रहे हैं वह सत्य नहीं है, वह केवल जो आपने धारण किया है उस असत्य का विरोध है। वे दोनों असत्य एक-दूसरे को खंडित कर देंगे और तब शेष जो रह जाएगा वह सार्थक होगा, वह वास्तविक होगा।
उस वास्तविक की तरफ स्मरण आपको बना रहे, इसलिए मैंने ध्यान को कृत्रिम कहा है।

प्रश्नः आपने कहा कि शास्त्रों व धार्मिक ग्रंथों का उपयोग नहीं है;
और है तो ज्ञान होने के पश्चात। उसको स्पष्ट समझाइए। ज्ञान होने के पश्चात तो किसी शास्त्र की जरूरत नहीं है, ऐसी मान्यता है।

मैंने कहा परसों आपको कि ज्ञान के पूर्व शास्त्र अर्थहीन हैं। क्योंकि आप उनमें जो भी पढ़ेंगे वह आपका अपना अर्थ होगा, उनका नहीं जिनकी वाणी उन शास्त्रों में संगृहीत है। आप जो भी पढ़ेंगे, अपने को पढ़ेंगे, उन ग्रंथों को नहीं पढ़ेंगे। वह पढ़ ही नहीं सकते। उसे पढ़ने के लिए वही चैतन्य की स्थिति चाहिए, जो उस व्यक्ति की रही होगी जिससे वह वाणी निकली है।
कभी भी हम, चेतना की समान स्थिति न हो, तो एक-दूसरे को नहीं समझ पाते।
इस जगत में आप इस भ्रम में होंगे कि एक-दूसरे को हम समझते हैं, तो आप गलती में हैं। हममें से कोई एक-दूसरे को नहीं समझता। सबके चैतन्य के तल इतने भिन्न हैं, अंडरस्टैंडिंग संभव ही नहीं हो पाती। हम सबके चैतन्य के स्तर इतने भिन्न हैं, हम एक-दूसरे को समझाने की कोशिश करते हैं, लेकिन आपको ख्याल कभी आया कि कोई किसी से समझता है? कोई किसी से नहीं समझता। समझ ही नहीं सकता कोई किसी से। और समझेगा भी, तो इस भ्रम में न रहे कि उसने दूसरे को समझा, वह अपने तल पर कोई बात समझेगा।
इसलिए मैंने कहा कि अगर आप गीता पढ़ें, कुरान पढ़ें, बाइबिल पढ़ें, समयसार पढ़ें, तो आप इस भ्रम में न हों कि समयसार कुंदकुंद ने लिखा, इसलिए आप जो समझ रहे हैं वह कुंदकुंद ने कहा होगा। कुंदकुंद ने क्या लिखा, वह आप नहीं समझ सकते, जब तक कुंदकुंद की चेतना स्थिति आपके भीतर न हो। आप वही समझेंगे जो आप समझ सकते हैं। वह आपका ही समझना होगा, आपका अपना पढ़ना होगा कुंदकुंद में, कुंदकुंद का समझना नहीं या कृष्ण का समझना नहीं।
तो मैंने कहा कि आप शास्त्र समझ नहीं सकते जब तक ज्ञान न हो और जब ज्ञान आपको होगा तो आप शास्त्र समझ सकेंगे। तब यह बात भी बिल्कुल सच है कि तब शास्त्र के समझने की जरूरत नहीं रहेगी कोई। जब आपको स्वयं ज्ञान उत्पन्न हुआ तो आपको शास्त्र को समझने की जरूरत क्या रह जाएगी? कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। शास्त्र को समझने की जरूरत आपके लिए बिल्कुल नहीं रह जाएगी। जरूरत का कोई प्रश्न नहीं है न, आपको खुद बोध हो रहा है। लेकिन मैंने कहा, तब शास्त्र पढ़े जा सकते हैं। तब शास्त्र किसलिए पढ़े जाएंगे? तब शास्त्र केवल एक वजह से पढ़े जा सकते हैं। जो आपको उपलब्ध हुआ है वह अनेक लोगों को उपलब्ध हुआ है, आप अकेले नहीं हैं उस सीमा में, उस जगत में, उस प्रदेश में। आप अकेले नहीं हैं, आपकी अनुभूति अपनी अकेली नहीं है। अनेक लोग उस मार्ग पर गए हैं, अनेक लोगों को वह अनुभव हुआ है। उनकी जो वाणी और उनके शब्द जो उपलब्ध हैं, वे उसका इंगित देंगे। उस प्रदेश में आपका पहुंचना अकेला नहीं हुआ है, उस पर अनेक लोग पहुंचे हैं। और वे लोग जो पहुंचे हैं, उनकी गवाही में और उनकी साक्षी में आपके वचन अब होंगे। परंपरा धर्म की ऐसे बनती है! ऐसे नहीं बनती कि आपने शास्त्र पढ़ा और बन गई। परंपरा धर्म की ऐसे बनती है कि आप गवाही देते हैं उनकी। आपका अपना ज्ञान--महावीर की, बुद्ध की और कनफ्यूशियस की गवाही हो जाता है कि ठीक है! मैंने जाना, और मैं जो जान रहा हूं, उन्होंने भी जाना। उनकी आप गवाही देते हैं। और वह गवाही मूल्यवान है। वह मूल्यवान इसलिए है कि उस गवाही के

परिणाम में लाखों लोगों को एक सत्य का आभास, एक सत्य का इशारा, एक सत्य की तरफ अंगुली होनी शुरू हो जाती है।
इस तरह के गवाह हमारी सदी में कम हो गए हैं। इसलिए महावीर आपको झूठे मालूम पड़ने लगे हैं, इसलिए बुद्ध झूठे मालूम पड़ने लगे हैं। आप श्रद्धा किए चले जाते हैं, लेकिन आपको शक होने लगा है--कि पता नहीं हैं भी या नहीं!
एक ईसाई साधु ने गांधीजी के पास कुछ दिनों रहने के बाद लिखा कि पहली दफा गांधी के करीब रह कर मैंने अनुभव किया क्राइस्ट हुए होंगे। उसने लिखाः गांधी के पास रह कर मैंने पहली दफा अनुभव किया क्राइस्ट हुए होंगे, अन्यथा मुझे शक था। अन्यथा मुझे शक था। हमने सुना कि क्राइस्ट को जब सूली दी, तो उन्होंने सूली पर, जब हाथ ठोंक दिए गए उनके कीलों से तब उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की कि हे प्रभु, इन सारे लोगों को माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। हमको शक होता है कि किसी आदमी को कोई सूली देगा और वह यह बात कहेगा।
लेकिन अगर हम गांधी को जानते हैं तो गवाही मिल जाएगी कि यह बात ठीक है,
इस तरह का आदमी हुआ है। और इस तरह का आदमी हुआ है, तो वे लोग जो कि अभी उस स्थिति में नहीं हैं, उनको यह संभावना फलवती होती है कि हमारे भीतर भी उस तरह की घटना घट सकती है। एक सत्य की संभावना, एक बीज की संभावना फलवती होती है, और कुछ नहीं होता।
तो जो ज्ञान को उपलब्ध होता है वह शास्त्रों को केवल इस अर्थ में देख सकता है कि वह गवाही दे सके अपने पीछे की परंपरा की, कि जो हम कहते रहे हैं परंपरा से वह असत्य नहीं है, जो हम जानते रहे हैं परंपरा से वह असत्य नहीं है। वह गवाही दे सके, वह साक्षी हो सके अनंत पीछे की परंपरा का। वह वापस उस परंपरा को पुनरुज्जीवन दे सके। वह पुनरुज्जीवित परंपरा उसमें हो जाएगी। जब वह ज्ञान को उपलब्ध होगा, अगर वह महावीर की वाणी से परिचित हुआ, तो उस ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति के माध्यम से वहां महावीर की वाणी फिर से जीवित हो जाएगी। और वह जीवन अर्थपूर्ण होगा। और वह जीवन शास्त्र और आगम को जानने का अर्थ होगा।
तो मैंने कहा, आगम को तो नहीं जाना जा सकता, शास्त्र को तो नहीं जाना
जा सकता अज्ञान में। ज्ञान में जाना जा सकता है। लेकिन ज्ञान में उसके अपने लिए तो कोई शास्त्र जानने का उपयोग न होगा, लेकिन दूसरों के लिए, जो निकट हैं, चारों तरफ घिरे हैं, उनके लिए वह गवाही और साक्षी हो जाएगा। उपयोगिता शास्त्र की साक्षी की तरह है। उपयोगिता शास्त्र की अध्ययन की तरह नहीं है।
मेरी बात आप समझेंगे तो समझ में आएगा कि हम जितने साक्षी कम होते चले जाते हैं, उतना हमारी परंपरा खंडित, धूमिल और धुंधली होती चली जाती है। आपको पक्का विश्वास सच में आता है कि महावीर हुए हैं? आपको सच में विश्वास आता है कि महावीर हुए हैं? आप अपने भीतर बहुत तलाश करेंगे तो आपको शक मिलेगा। शक मिलेगा यह कि ऐसा आदमी कैसे हो सकता है? कि लोग उसको मारते हों, पीटते हों, कि लोग उसके कानों में कीलें ठोंकते हों और उसको कुछ भी न होता हो! आप जरा अपने पर विचार करें तो आपको पता लगेगा या तो महावीर असत्य हैं या आप असत्य हैं। यानी आपके कानों में कोई कीलें ठोंकता है और मारता है और आपको कुछ भी नहीं होता? आपको लगेगा--यह कैसे होगा?
तो अब दो ही रास्ते हैं महावीर को असत्य करने के। एक रास्ता तो यह कि
कह दें कि वे भगवान थे। यह भी असत्य करने का रास्ता है उनको। कि वे सामान्य आदमी नहीं थे, इसलिए नहीं होता होगा। या कह दें कि उनकी काया बहुत विशिष्ट तरह की थी, तीर्थंकरों की काया बहुत दूसरे ढंग की होती है, उस पर चोट ही नहीं लगती। वह लोह-काया थी या कुछ और थी काया। यूं ये तरकीबें हैं असत्य करने की। आप उनको सामान्य आदमी नहीं मान पाते। और सामान्य नहीं मान पाते... एक तो रास्ता यह है कि कह दें कि भगवान हैं, कह दें कि तीर्थंकर हैं, कह दें कि अवतार हैं, कह दें कि उनकी विशेष काया है, ये एक तरकीबें हैं असत्य करने की। दूसरी तरकीबें ये हैं कि कह दें कि वे ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं हैं, ये सब कल्पनाएं हैं, ये सब कहानियां हैं। ये दो तरह की बातें हैं। एक तरह से धार्मिक आदमी असत्य करता है, दूसरी तरह से अधार्मिक आदमी उनको

असत्य करता है। ये दोनों असत्य कर रहे हैं। लेकिन आपको बिल्कुल अगर ऐसा लगता हो कि बिल्कुल हमारे जैसे हड्डी-मांस के आदमी थे, तो आपको शक होगा। यह शक आपका तभी मिट सकता है जब कि कुछ लोग जो आपकी सदी में जीवित हैं, जिंदा हैं, हड्डी-मांस के हैं और गवाही दे दें, साक्षी दे दें अपने जीवन से। तो आपको यह शक मिट सकता है। यानी धर्म कभी एक दफा पैदा होकर समाप्त हो गया, ऐसा नहीं है, उसे बार-बार पुनरुज्जीवित होना पड़ता है अलग-अलग लोगों में। तब वह स्पष्ट होता है, तब वह ज्ञात होता है, तब वह जीवित होता है।
तो ज्ञान के बाद शास्त्र का उपयोग केवल एक है कि वह आदमी यह कह सके कि
जो मैं कह रहा हूं, जो मैं जान रहा हूं, जो शब्द मैं दे रहा हूं, वे शब्द पहले भी दिए गए हैं, वे शब्द पहले भी कहे गए हैं। और अगर आप पढ़ेंगे वाणी, तो महावीर यह नहीं कहते कि मैं जान रहा हूं; महावीर कहते हैं, जो पहले भी जाना गया है वह मैं जान रहा हूं। कृष्ण कहते हैं, जो पहले भी कहा गया है वह मैं कह रहा हूं। बुद्ध कहते हैं, अनंत बुद्धों ने जो कहा है वह मैं कह रहा हूं। वे सारे लोग यह कहते हैं कि जो पहले कहा गया है... । अगर उपनिषद पढ़ते हैं तो आप उसमें बार-बार पाएंगे कि वे कहते हैं, जो पहले जाना गया, जो सनातन से जाना गया वह हम कह रहे हैं।
वह उसके कहने में अर्थ है। वे पूरी परंपरा को अपने माध्यम से पुनरुज्जीवित कर रहे हैं। और अपने माध्यम से आपको वे उन अनंत जाग्रत पुरुषों से संयुक्त कर रहे हैं जो पीछे हुए और जो अब आपके लिए धूमिल हो गए हैं।
यह तो उपयोग है, वैसे उसके अपने लिए कोई उपयोग नहीं है। वह उपयोग आपके लिए है। शास्त्र मुर्दा है, उसके माध्यम से वह जीवित हो जाएगा। और जो शास्त्र आपको नहीं कह पाया, नहीं समझा पाया, वह उस जीवित व्यक्ति के माध्यम से आपको प्रतीत होगा।
यह आप समझते हैं न? महावीर की वाणी समझना एक बात है और महावीर के सान्निध्य में होना बिल्कुल दूसरी बात है। जो वाणी नहीं कह पाती वह सान्निध्य कह पाता है, क्योंकि सान्निध्य कुछ और दिखा देता है जो वाणी कभी नहीं दिखा सकती।
बुद्ध जब पहली दफा ज्ञान को उपलब्ध हुए तो वे काशी आए। वे काशी के बाहर एक दरख्त के नीचे ठहरे हुए थे। तब उन्हें कोई भी नहीं जानता था, कोई पहचानता नहीं था। वे एक अदना, अनजान, अपरिचित भिखमंगे थे, भिक्षु थे। काशी का नरेश सांझ को बहुत परेशान, चिंतित था, वह अपने रथ पर हवाखोरी को निकला था। वह जब गांव के बाहर गया, सूरज की रश्मियां ढलती थीं, बुद्ध एक दरख्त से टिके हुए बैठे थे, उनके चेहरे पर सूरज का प्रकाश पड़ता था। उसने अपने सारथी को कहा, रोको-रोको! यह आदमी तो कुछ अदभुत है। इतना प्रकाशोज्ज्वल, इतना शांत! इतने संगीत से, इतने आनंद से भरी आंख तो मैंने कभी देखी नहीं! उसने कहा, रोको, थोड़ा इसके पास हो लें।
जैसे आप किसी फूल से भरे हुए गंध के बगीचे के करीब से निकलें और आपका
मन हो कि थोड़ा इसमें ठहर जाएं। और जैसे आप धूप से तपे हुए निकलें और किसी बड़े बरगद की छाया के नीचे आपका मन हो जाए कि थोड़ी देर इसके पास ठहर जाएं। वैसा उस राजा को हुआ कि इस आदमी के पास थोड़ा रुक लें, वह एक चिंता से विदग्ध था।
वह बुद्ध के पास गया और उसने कहा कि मैं इतनी चिंता से भरा हूं और मेरे पास सब कुछ है, और तुम्हारे पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, तुम इतनी शांति से, इतने आनंद से बैठे हो! क्या मैं पूछूं यह कैसे संभव हुआ? मेरे पास सब कुछ है और मैं तीन दिन से चिंता करता हूं कि आत्मघात कर लूं। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता और तुम इतने निश्चिंत बैठे हो कि अनंत जन्मों तक भी अगर तुम्हें जीना पड़े, तुम ऐसे ही बैठे जीते रहोगे। और मुझे तो भार हो गया है जीना और खत्म करना चाहता हूं अपने को।
बुद्ध ने कहा, एक दिन मेरे पास भी सब कुछ था, लेकिन मेरे भीतर कुछ नहीं था। आज मेरे भीतर कुछ है, बाहर मेरे पास कुछ भी नहीं है। जो मैंने भीतर पा लिया है उससे मैंने जो खोया, वह बिल्कुल नहीं खोया, मैंने सभी पा लिया है।

एक दिन मैं तुम्हारी हालत में था, आज मैं इस हालत में हूं। अभी तुम इस हालत में हो, कल चाहो तो इस हालत में हो सकते हो।
उसने एक क्षण बुद्ध को देखा। वे जो कह रहे थे उसकी गवाही थी, वे जो कह रहे थे उसके वे स्वयं साक्षी थे। उसने सारथी को पास बुलाया, अपना मुकुट उसको वापस दिया, अपने कपड़े उतार कर दे दिए, उससे कहा, घर सूचना करना कि मैं कुछ और बड़ी संपत्ति की खोज में निकल गया हूं।
बुद्ध ने कहा था क्या कुछ? वह तो अपने रास्ते जाता था। बुद्ध ने बुलाया था क्या कुछ? वह तो अपने रास्ते जाता था। बुद्ध ने कोई आवाज दी थी कि सुनो, कि मैं कुछ समझाऊं? उसने बुद्ध को देखा और वह कुछ समझा।
शास्त्र जो नहीं कह पाते वह सान्निध्य कह देता है। इसलिए जीवित सत्य
जब किसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है, उसके आसपास जो लोग उसके जीवन की प्रेरणा से खड़े होते हैं, उनमें तो वास्तविक धर्म होता है। उसके मरने के बाद उसकी वाणी के कारण जो खड़े होते हैं, वे मुर्दा धर्म होते हैं। फिर धर्म मर जाता है, फिर उसमें प्राण नहीं रह जाते। फिर वह शब्द-आधारित होता है, फिर वह सत्य-आधारित नहीं होता। सत्य का अनुभव उसके जीवन के सान्निध्य में संभव हो पाता है।
तो मैं शास्त्र का कोई उपयोग साधारण के लिए तो नहीं मानता, बल्कि घातक मानता हूं, उसको नुकसान पहुंच सकता है, लाभ तो नहीं हो सकता। शास्त्र तो बड़ी वसीयत है, इस अर्थ में वसीयत है कि जब आप जानेंगे तब आप पहचानेंगे कि उस सीमा में, उस प्रदेश में आप अकेले नहीं हैं। और तब आप पहचानेंगे कि आप किसी निर्जन वन में नहीं प्रविष्ट कर गए हैं। आपके पहले बहुत जीवित और जागते हुए लोगों की परंपरा है और उनके चरणचिह्न आपको पहचान में आ जाएंगे। शास्त्र उनके चरणचिह्नों को पहचानने के उपाय से ज्यादा नहीं है। पर यह आप शास्त्र पढ़ कर नहीं समझ सकते, यह आप स्वयं को पढ़ कर समझ सकते हैं, स्वयं में उतर कर समझ सकते हैं।
किसी को लग सकता है कि मेरी शास्त्रों के प्रति बड़ी श्रद्धा नहीं है। किसी को लग सकता है कि मैं आपको शास्त्रों के विरोध में ले जाने की बात कर रहा हूं।
मैं आपको शास्त्रों के विरोध में इसलिए ले जाना चाहता हूं कि आप किसी दिन उस जगह पहुंच जाएं जहां से शास्त्र पैदा होते हैं, जहां शास्त्र बनते हैं। उस चेतना में पहुंच जाएं जहां शास्त्रों का जन्म होता है। और तब आप शास्त्रों को समझ पाएंगे, उसके पहले नहीं समझ पाएंगे। मेरी श्रद्धा बहुत प्रगाढ़ है। वह आप जैसी श्रद्धा नहीं है, मेरी श्रद्धा बहुत प्रगाढ़ है। और उस श्रद्धा के कारण ही आपसे कहता हूं कि शास्त्रों पर बिल्कुल श्रद्धा न करें, स्वयं पर श्रद्धा करें। उसके माध्यम से किसी दिन आप उस जगह पहुंचेंगे जहां शास्त्रों का जन्म हो जाता है। आप शास्त्रों के पढ़ने वाले ही न बने रहें, उनके जन्मदाता बनें।... यह संभव है।

प्रश्नः आत्मा का दर्शन कौन करता है? स्व का दर्शन स्व कैसे करेगा?

यह मूल्यवान है। यह बात ख्याल में आनी बड़ी जरूरी है कि जब हम कहते हैं, आत्मा का दर्शन होता है, तो दर्शन कौन करेगा?
दर्शन में तो दो की जरूरत है। दर्शन में दो की जरूरत है--जो देखे उसकी
और जो दिखाई पड़े उसकी। तो जब हम कहते हैं आत्मा का दर्शन, तो वहां कौन देखेगा और किसको देखेगा? वहां तो एक ही होगा न। जो देख रहा है, वही होगा। तो दिखाई कौन पड़ेगा? तो फिर दर्शन कैसे होगा?
यह बात बड़ी अर्थ की है। सच में ही दर्शन शब्द झूठा है। असल में हमारे
सब शब्द झूठे हैं, क्योंकि वे दो के लिए बने हैं। ज्ञान कहें तो भी झूठा है, क्योंकि ज्ञान में भी दो चाहिए--जिसका ज्ञान हो और जिसको ज्ञान हो। दर्शन कहें तो भी दो चाहिए--जिसका दर्शन हो और जिसको दर्शन हो। अनुभव कहें तो भी दो चाहिए--जिसको अनुभव हो और जिसका अनुभव हो। हमारे सारे शब्द दो के लिए बने हैं, क्योंकि हमारा पूरा संसार दो से बना हुआ है। और वहां अकेला रह जाएगा। तो इस दो के लिए बनी हुई जो भी भाषा है वह वहां बिल्कुल ही

अपर्याप्त है। बिल्कुल अपर्याप्त है। इसलिए अगर बिल्कुल ठीक उसके संबंध में कुछ कहना हो, तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। उस आत्म-अनुभव के लिए अगर बिल्कुल ठीक से कुछ कहना हो, तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि हमारे सब शब्द अधूरे पड़ जाएंगे और झूठे पड़ जाएंगे। कोई भी शब्द उसे पूरी तरह प्रकट नहीं करेगा। इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा कि उस संबंध में हम कुछ भी नहीं कह सकते हैं। फिर, कह तो नहीं सकते, उस तरफ इशारा कैसे करें? तो इन्हीं शब्दों से काम चलाने की कोशिश करते हैं और इन्हीं शब्दों में उस बात को रखने की कोशिश करते हैं जो कि नहीं कही जा सकती।
तो उसको हम दर्शन कहते हैं, इस शर्त के साथ कि वहां कोई दृश्य नहीं है।
इस शर्त के साथ हम उसको दर्शन कहते हैं, वहां कोई दृश्य नहीं है, वहां केवल द्रष्टा मात्र रह गया है। और वह द्रष्टा मात्र किसी को देख नहीं रहा, क्योंकि देखेगा वहां कौन? वह द्रष्टा मात्र किसी को भी नहीं देख रहा है। तो उसे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। वहां वह अकेला जो शेष रह गया है। तो वह जो उसकी दर्शन की क्षमता थी, वह जो देखने की क्षमता थी, वह जो जानने की क्षमता थी, वह जो बोध की क्षमता थी, वह जो अनुभव की क्षमता थी, वह क्षमता तो मौजूद है, वह कहीं गई नहीं। वह क्षमता अब किसी को भी नहीं जान रही है। इस घड़ी में उसके भीतर क्या होगा?
समझ लें यहां एक दीया जले। दीया जले तो दीये का प्रकाश पड़ेगा दीवालों
पर, दीवालें दिखाई पड़ेंगी। दरख्तों पर, तो दरख्त दिखाई पड़ेंगे। लेकिन क्या आप सोचते हैं--दरख्त और दीवालें न रह जाएं तो दीया बुझ जाएगा? एक दीया यहां जले, उसका प्रकाश पड़े दीवालों पर, तो दीवालें दिखाई पड़ेंगी। दरख्तों पर पड़े, तो दरख्त दिखाई पड़ेंगे। लेकिन आप कल्पना करें कि दरख्त और दीवालें नहीं रह गईं, तो क्या दीया बुझ जाएगा? क्या दीया इसलिए जलता था कि दरख्त हैं और दीवालें हैं। दरख्तों के, दीवालों के होने से दीये के जलने का क्या वास्ता? दरख्त और दीवालें थीं तो दीये के प्रकाश में दिखाई पड़ती थीं, अगर वे न होंगी तो क्या होगा? दीया अकेला जलेगा। वह किसी को प्रकाशित नहीं करेगा, बस केवल प्रकाशित रह जाएगा। कोई उसमें दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन अंधेरा थोड़े ही हो जाएगा। यह आप फर्क समझ रहे हैं न? कोई दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन अंधेरा थोड़े ही हो जाएगा, दीया जलेगा। अब इस दीये के जलने में जब कोई प्रकाशित नहीं हो रहा, तो क्या होगा? दीया अकेला प्रकाशित होता रहेगा। यानी जब कोई प्रकाशित नहीं हो रहा तब भी दीया तो प्रकाशित होता ही रहेगा। उस दीये का जो प्रकाशन है, वैसे ही, आत्मा जब किसी को नहीं जानती, तब वह केवल अपने को ही जानती रह जाती है। यह जानना शब्द बहुत ठीक नहीं है। कोई शब्द ठीक नहीं है। लेकिन बस वह अकेली अपने को ही प्रकाशित करती रह जाती है। इसलिए हम उसे स्व-पर-प्रकाशक कहते हैं। उससे दूसरे पर प्रकाश पड़ता है, दूसरी चीजें देखी जाती हैं; जब कोई चीज मौजूद नहीं रह जाती तो वह स्वयं को जानती है। स्वयं को जानने का मतलब आप समझ लेना। जानना उस अर्थ में नहीं जैसे हम दूसरी चीजों को जानते हैं। जानना इस अर्थ में कि जब कुछ भी जानने को नहीं रह जाता, तो भी ज्ञान तो जलता रह ही जाता है। वह ज्ञान का दीया तो बना ही रह जाता है।
उस अनुभव को, उस प्रतीति को, उस साक्षात को जो भी शब्द आप देना चाहें
दे सकते हैं। सब शब्द झूठे हैं, एक सुविधा यह है। इसलिए कोई भी शब्द दे दें, कोई दिक्कत नहीं है। उसे कोई साक्षात कहता है, कोई उसे अनुभव कहता है, कोई उसे दर्शन कहता है, कोई प्रतीति कहता है, कोई प्रत्यक्ष कहता है। कोई भी शब्द दे दें, उन सब शब्दों में एक समानता है कम से कम कि वे सब झूठे हैं, वे कामचलाऊ हैं, वे इशारा करते हैं। और इसलिए उनमें कोई झंझट नहीं, कोई शब्द आप दे सकते हैं। एक ही सुविधा है कि वे सब झूठे हैं, यह उनमें समानता है। सारे धर्मों ने जो इशारे किए हैं वे सब इशारे इस अर्थ में झूठे हैं, क्योंकि वे शब्दों में किए गए हैं। और कोई शब्द उसे ठीक से प्रकट करने में समर्थ नहीं है। लेकिन आप समझ सकते हैं, इशारा समझ सकते हैं। शब्द को पकड़ लें तो नहीं समझ पाएंगे, अगर शब्द के इशारे को समझ लें तो शब्द पीछे छूट जाएगा और इशारा समझ जाएंगे।

इसलिए सारा धर्म जो है वह सिंबालिक है, प्रतीकात्मक है। और उसकी बात
सब पैरेबेल्स में, कथाओं में और कहानियों में कही गई है। उसको सीधे-सीधे कहने का कोई भी उपाय नहीं है।
अब जैसे मैंने यही कहा, यह एक प्रतीक हुआः एक दीया जलता है, चीजें दिखाई पड़ती हैं। फिर चीजें मौजूद नहीं हैं तो दीये का क्या होगा? दीया जलेगा। तब सिर्फ दीया ही दिखाई पड़ेगा वहां। और कुछ नहीं होगा। उसी भांति आत्मा दूसरों को जानती है। जब वह किसी को भी नहीं जानेगी, तब उसके जानने का क्या होगा? वह जानने का दीया जलता रहेगा। वह जानने के दीये का जो अनुभव होगा उसके लिए कोई शब्द रास्ता नहीं है कहने का। लेकिन कुछ होगा जो बहुत अभूतपूर्व है। क्योंकि जो दूसरे को जान सकता था, यह असंभव है कि वह अपने को न जान सकता हो। जो दूसरे को जान सकता था, यह असंभव है कि वह अपने को न जान सकता हो। जो दूसरे को देखता था, यह असंभव है कि वह स्वयं को न देख सकता हो। क्योंकि जो स्वयं को न जान सकता हो वह दूसरे को जान ही कैसे सकता है? इसलिए उस क्षण घटना घटेगी एक ऐसे ज्ञान की जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय एक होगा, दो नहीं होंगे। एक ऐसे दर्शन की जहां देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला एक होगा और दो नहीं होंगे। उस घड़ी में, उस घड़ी में कोई शब्द नहीं है-- साक्षात है। उस घड़ी में कोई शब्द नहीं है--अनुभूति है।
इसलिए, अभी मुझसे एक और प्रश्न पूछा--आत्मा क्या है?
तो मैं समझता हूं इसमें उसका उत्तर भी होगा। उसे कहने का कोई उपाय नहीं है। जो भी कहा जा सके वह आत्मा नहीं होगा। वह केवल इशारा होगा। उसे जाना जा सकता है, कहा नहीं जा सकता है। और आप जान लेंगे, तो जिन्होंने कहा है उनके इशारे आपकी समझ में आ जाएंगे। और आप नहीं जानेंगे, तो उनके शब्द आपकी पकड़ में होंगे, उनसे कुछ जानना नहीं होगा।

एक प्रश्न और हैः क्या यह सच है कि ब्रह्म को जानना ब्रह्म हो जाना है?

मैं समझता हूं आपको समझ में आया होगा। उसे बिना हुए नहीं जाना जा सकता। वही एक तत्व है जिसे बिना हुए नहीं जाना जा सकता। ज्ञान और हो जाना वहां एक ही बात है। वहां होने में और ज्ञान में फासला नहीं हो सकता है।

एक प्रश्न हैः आत्मज्ञान पाना मुश्किल नहीं है तो वह ज्ञान बहुत कम लोगों ने क्यों पाया? सामान्य व्यक्ति उसे क्यों नहीं पा सकता है?

आत्मा को पाना तो सरल है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे सभी लोग पा लेंगे। आत्मा को पाना सरल है, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो भी पाना चाहते हैं वे अवश्य पा लेंगे। जब तक हम पाना नहीं चाहते तब तक हमारे ऊपर उस ज्ञान को कोई थोपेगा नहीं। हम सामान्यतया कुछ और पाना चाहते हैं। हम सारी चीजें पाना चाहते हैं और इसलिए उनको पाने में लगे रहते हैं और आत्मा को नहीं पा सकते हैं। लेकिन जो उस दिशा में चलेगा वह अवश्य पा लेता है। सरल का मतलब इतना है कि जो उस दिशा में चलेगा, जो उन्मुख होगा, कठिन नहीं है, असंभव नहीं है। और जिन थोड़े से लोगों ने पाया, वे इस बात की गवाही हैं कि कोई दूसरा आदमी पा सकता है। इस जमीन पर अगर एक भी आदमी ने कभी आत्मा पाई है तो कोई भी दूसरा आदमी पा सकता है। क्योंकि दो आदमियों की शक्ति में, सामर्थ्य में, कितना ही भेद हो, बहुत भेद नहीं है। और उस सत्य को पाने के लिए कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि वह समान रूप से सबको उपलब्ध है।
सरलता का मतलब यह है, वह पाई जा सकती है, वह संभावना है, वह सरल संभावना है। नहीं पाते अधिक लोग, यह बिल्कुल दूसरी बात है। रात को चांद निकलता है, मैं नहीं समझता कितने लोग देखते हैं? रात को रोज चांद निकलता है, कितने लोग देखते हैं, यह मैं नहीं समझता। लेकिन चांद को देखना कठिन नहीं है। अब अगर आप यह कहें कि चांद को देखना जरूर कठिन होगा, क्योंकि पांच लाख लोग रहते हैं एक गांव में तो पांच भी तो नहीं देखते, तो मैं आपको क्या कहूंगा? मैं कहूंगा, चांद को देखना तो सरल है, अब यह बिल्कुल दूसरी बात है कि आप कुछ और देख रहे हैं और नहीं देखना चाहते, न देखें।

कल हम झील पर गए, वहां झील पर बैठे थे। अब जरूरी नहीं है कि झील पर हम बैठे थे तो हमने झील देखी हो। हममें बहुत थे जिन्होंने झील नहीं देखी। जो झील पर थे, लेकिन झील को नहीं देखा। जो बिल्कुल झील पर खड़े थे, लेकिन झील को नहीं देखा। मैंने देखा वे वहां भी बात कर रहे हैं, वे वहां भी चिंतन में लगे हैं, वे वहां भी कुछ चर्चा में लगे हुए हैं, वे वहां हैं ही नहीं, वे बंबई में हैं या कहीं और हैं।
तो अब झील को देखना कठिन तो बिल्कुल नहीं था, उस झील के बिल्कुल किनारे खड़े थे, लेकिन वे वहां मौजूद ही नहीं थे, वे कहीं और थे। उन्होंने झील को नहीं देखा।
एक मेरे मित्र थे, उनको लेकर एक जगह दिखाने गया। नाव में यात्रा की।
वे स्विटजरलैंड की बातें करते रहे। वे स्विटजरलैंड रहे कुछ दिन, वहां की झीलों की बात करते रहे, मैं सुनता रहा। फिर कश्मीर की झीलों की बात करते रहे, वह भी मैं सुनता रहा। उस झील पर जिस पर हम थे, उन्होंने उसको बिल्कुल नहीं देखा। फिर लौटने लगे, रास्ते में मुझसे बोले, बड़ी सुंदर झील थी। मैंने कहा, अभी तक मैं आपसे कुछ नहीं बोला, लेकिन अब इस झूठ को आप न बोलें तो अच्छा। वह झील सुंदर थी या नहीं थी, इससे आपको क्या मतलब? आपने उसे देखा भी नहीं। आप वहां थे ही नहीं! आप स्विटजरलैंड में रहे होंगे उस वक्त, कश्मीर में रहे होंगे, यह हो सकता है। उस झील पर नहीं थे जहां मैं आपके साथ था, आप मेरे पास नहीं थे। जिस नाव पर हम बैठे थे उस पर आप बिल्कुल नहीं थे। वहां आप अनुपस्थित थे। और तब मैं अब यह भी जानता हूं कि जब आप स्विटजरलैंड की झीलों में रहे होंगे तो वहां भी आप उपस्थित नहीं रहे होंगे। और मैं यह भी जानता हूं कि जब आप कश्मीर की झीलों में रहे होंगे, वहां भी उपस्थित नहीं रहे होंगे। आप ही तो थे मेरे साथ अभी। तो आप कृपा करके, इस झील में आपका साथ देख कर मैं जान गया हूं कि उन झीलों के बाबत भी आपकी जो राय है वह झूठी होगी। आपने उनको देखा नहीं।
देखना तो बड़ी सरल बात थी, लेकिन देख कम ही लोग पाएंगे। और उसका कारण यह नहीं है कि बात कठिन है इसलिए कम लोग देख पाएंगे; उन्होंने देखना ही नहीं चाहा, वे कहीं और ही देखते रहे।
सच में आप अगर देखना चाहते हैं तो कठिनाई बिल्कुल नहीं है। अगर पूरी तरह देखना चाहते हैं तो इसी क्षण देखना हो जाएगा। क्योंकि रोकने को कौन है वहां सिवाय आपके? वहां कोई है ही नहीं। यानी कोई चीजें ऐसी होती हैं जिनको पाने में कोई फासला तय करना होता है। अब अगर मुझे बंबई जाना है तो इसी क्षण नहीं जा सकता, बीच में टाइम गिरेगा। लेकिन मुझे अपने को जानना है तो इसमें तो टाइम के गिरने की कोई वजह नहीं है, क्योंकि मैं वहां मौजूद हूं। अगर मैं परिपूर्ण प्रगाढ़ता में जानना चाहता हूं तो इसी क्षण जान सकता हूं।
लेकिन हम जानना कब चाहते हैं! आप इस भ्रम में पड़ जाते होंगे अक्सर कि
हम आत्मा को जानना चाहते हैं। आप जानना आत्मा को बिल्कुल नहीं चाहते। मैं एक जगह था। एक साधु वहां लोगों को समझाते थे कि तुम्हारे पास यह
जो संपत्ति है, यह सब एक दिन मौत आएगी, तुमसे छिन जाएगी। इसमें कोई सार नहीं है, यह तो मरने के पहले सब छिन जाएगी, नश्वर है। तो तुम आत्मा को जरूर जान लो, वह तुम्हारे साथ रहेगी। तब उनके भक्त जो सुने होंगे, अगर वे आत्मा को जानना चाहें तो आप सोचते हैं वे आत्मा को जानना चाहते हैं? बिल्कुल भी नहीं। वे एक ऐसी संपत्ति चाहते हैं जो मरने के बाद भी साथ रहे। वे उसी संपत्ति को जिसे वे जिंदगी भर इकट्ठा करते रहे हैं, उसी तरह की कोई स्थायी संपत्ति चाहते हैं जो मरने के बाद भी साथ चली जाए। वे आत्मा को नहीं जानना चाहते हैं। आप साधुओं को समझाते हुए सुनेंगेः आत्मा अमर है। आपके मन में होता है आत्मा को जानें। इसलिए नहीं कि आप आत्मा को जानना चाहते हैं; केवल इसलिए कि आप मौत से डरते हैं। आप मृत्यु से डरे हुए हैं और चाहते हैं कि कोई ऐसी तरकीब हो कि मरें न। शरीर का बहुत उपाय करेंगे, लेकिन आखिर में जानते हैं कि वह मर जाएगा, रोज उसको मरते देखते हैं, फिर भी उपाय जारी रखेंगे। लेकिन एक यह भी आखिर-आखिर में लगेगा कि यह आत्मा भी जान ही लो, कम से कम इससे मरना बच जाएगा।

आप आत्मा को नहीं जानना चाहते हैं, आप मृत्यु से डरते हैं केवल। और उस
डर से आपमें आत्मा की चाह पैदा होती है, वह वास्तविक नहीं है, झूठी है। वास्तविक चाह मौत से बचने की है। और आत्मा को वह जानेगा जो मरने को राजी हो। अब यह दिक्कत है। आपकी जो आत्मा को जानने की चाह है, मौत के भय से उठी है। और आत्मा को वह जानेगा जो मरने को राजी हो। और आपमें इसलिए चाह उठी है कि यह संपत्ति यहीं चूक जाएगी।
मैं उनके साधु के बाद ही बोलता था, तो मैंने कहा, अगर समझ लीजिए यह संपत्ति आपके साथ जा सके, तो फिर आपको आत्मा की कोई जरूरत है? तो आप कहेंगे, फिर क्या जरूरत है! और अगर मैं आपको कहूं कि आपका शरीर अमर हो सके, आप में से कोई आत्मा को चाहता है? आप कहेंगे, फिर फिजूल, कौन बकवास करे। यानी आप असली में चाहते क्या हैं? आप संपत्ति... यह संपत्ति आपको काफी नहीं लगती। जो कम लोभी हैं वे बेचारे इसी संपत्ति में तृप्त हो जाते हैं। जो ज्यादा लोभी हैं वे ऐसी संपत्ति चाहते हैं कि साथ चली जाए। जो बेचारे कम मौत से डरे हैं वे इसी शरीर पर तृप्त हो जाते हैं। जो मौत से ज्यादा डरे हैं वे आत्मा को भी पाना चाहते हैं। आत्मा से आपका कोई मतलब नहीं है।
तो जितनी आकांक्षा दिखती है लोगों में आत्मा को जानने की, यह आत्मा को जानने की नहीं है। इसे समझ लें ठीक से। यह किन्हीं और चीजों से एस्केप है, पलायन है। आप सत्य के जिज्ञासु नहीं हैं, आप केवल सुरक्षा के खोजी हैं। एक सिक्योरिटी खोज रहे हैं। आत्मा हमें मिल जाएगी तो अच्छा होगा। वही आदमी जो बैंक बैलेंस में सिक्योरिटी खोजता था, वही आदमी पुण्य में खोज रहा है। कोई भेद नहीं है। जो सोचता था बहुत धन वहां जमा होगा तो ठीक रहेगा। वह इससे भी डरा हुआ है कि कुछ पुण्य भी जमा हो, वहां कुछ दिक्कत न हो। वह वही आदमी जो बैंक में पैसा जमा करता था, वही आदमी पुण्य के खाते में भी पुण्य जमा करना चाहता है। यह वही आदमी है, इसमें कोई फर्क नहीं है, यह बिल्कुल वही आदमी है। और यह वही वृत्ति है, इसमें कोई भेद नहीं है। आत्मा को जानने से इसका कोई मतलब नहीं है।
आत्मा को जानना आपके इन कारणों से नहीं होता; आत्मा को जानने की प्यास किसी और ही दूसरी वजह से पैदा होती है। वह आपकी सुरक्षा और बचाव नहीं है। वह आपका इस बात का बोध कि जो कुछ भी मेरे चारों तरफ है, जिस दिन आपको यह बोध होता है कि मेरे चारों तरफ जो कुछ है और जो कुछ मैं कर रहा हूं वह बिल्कुल ही अर्थहीन है। उसमें आपको कहीं कोई सार्थकता नहीं दिखाई पड़ती। चौबीस घंटे का, जन्म से लेकर मृत्यु तक का जीवन जब आपको बिल्कुल व्यर्थ दिखाई पड़ता है, जब आपको उसमें कोई सार्थकता नहीं दिखाई पड़ती। तो उस व्यर्थता के बीच, जब यह सब दुख दिखाई पड़ता है और इस दुख के बीच, और जब यह सब संताप दिखाई पड़ता है, इस संताप के बीच आपके भीतर ऐसा होता है कि या तो मैं इस जीवन को समाप्त कर दूं जो कि बिल्कुल व्यर्थ है और या फिर उसको जान लूं जिसमें कोई सार्थकता हो। जो आदमी जीवन में घबड़ा कर उस सीमा पर पहुंच गया हो जहां आत्मघात कर सकता हो, वह आदमी केवल आत्मसाधना में लग सकता है। यानी उस बिंदु पर जहां स्युसाइड होता है, उसी बिंदु पर साधना भी शुरू होती है। उसी बिंदु पर, जहां आदमी इतनी ज्यादा अर्थहीनता अनुभव करता है कि सब व्यर्थ है और उसे ऐसा लगता है कि इस जीवन में कोई भी अर्थ नहीं, उस क्षण वह आत्मसाधना में संलग्न हो सकता है। उस वक्त उसमें एक प्यास पैदा होती है कि वह जान ले कि अगर भीतर कुछ और है जिसमें कोई अर्थ है तो ठीक है, अन्यथा समाप्त कर दे। उसके पहले नहीं।
आप तो इसी जीवन को प्रोलांग करना चाहते हैं, तो आत्मा को खोजते हैं।
वह इस जीवन को बिल्कुल व्यर्थ जान लेता है, तो आत्मा को जान पाता है। आप इसी जीवन को प्रोलांग करना चाहते हैं।
अभी मैं एक गांव से निकला। एक जगह रुका था तो एक महिला ने मुझे लाकर एक किताब भेंट की। उसके ऊपर लिखा थाः अगर आपके पास मकान नहीं है तो मकान की व्यवस्था है। अगर आपके पास बगीचे नहीं हैं तो बगीचे की व्यवस्था है।
तो मैं हैरान हुआ कि वह क्या है? ऊपर उसके शीर्षक था, मैंने अंदर देखा,
तो उसमें लिखा हैः प्रभु के राज्य में... वह किसी ईसाई का प्रचार था... उसमें लिखा थाः प्रभु के राज्य में सुंदर बगीचे हैं, सुंदर मकान हैं, बड़ा स्वस्थ

जीवन है, वहां कोई बीमारी नहीं होती, वहां कोई परेशानी नहीं होती। अगर आप ऐसा जीवन चाहते हैं तो प्रभु ईसा को स्वीकार करिए।
अब यह जिन लोगों के पास मकान नहीं हैं; या हैं, बहुत अच्छे नहीं हैं; या बहुत अच्छे हैं, तो किसी के पास कितना ही अच्छा हो उसको और अच्छा चाहिए; उसे वहां एक जिंदगी मरने के बाद भी कायम रखनी है। इसी जिंदगी को आगे कायम रखना है। इस आकांक्षा से जो धर्म के पीछे जाता है वह धार्मिक कभी नहीं हो सकता।
जिसे यह जिंदगी अर्थहीन हो गई, जिसे यह जिंदगी दुख हो गई, इस जिंदगी में जिसे कोई अर्थ नहीं खोजे मिलता, यहां से लेकर वहां तक यह बिल्कुल व्यर्थ कथा मालूम होती है, उसको एक बोध पकड़ेगा--कि या तो मैं जान लूं कि कुछ सार्थकता भीतर हो तो उसको जान लूं और अन्यथा तोड़ दूं इस सूत्र का... दोस्तोवस्की के एक उपन्यास में उसका एक पात्र परमात्मा से कहता है कि
हे परमात्मा, मैं नहीं जानता कि तू कहीं है। लेकिन अगर तू कहीं है, तो मैंने सुना है तू सर्वशक्तिमान है, तो इतनी कृपा कर कि मुझे जीवन से वापस ले ले। अगर तू है और सर्वशक्तिमान है, तो मैं एक ही बात में तेरी सर्वसत्ता का प्रत्यक्ष पाना चाहता हूं, मुझे जीवन से वापस ले ले।
यह जीवन बिल्कुल मूढ़तापूर्ण है, इसमें कहीं भी कोई सार और अर्थ नहीं है। जिस दिन आपको ऐसा साक्षात होगा, इसी जीवन को आगे चलाने का नहीं, मृत्यु के बाद बच जाने का नहीं, बल्कि इसका कि यह जीवन इतना व्यर्थ है कि मृत्यु कल हो तो आज ही क्यों नहीं हो जाती! इसमें अर्थ कहां है? जिस दिन मृत्यु आपको इसी क्षण हो और कोई बाधा न मालूम हो और लगे कि सब व्यर्थ है, उस क्षण आपके भीतर एक बिंदु पर आप खड़े होंगे, जहां आप पहली दफा उस प्यास को अनुभव करेंगे जो सार्थकता की खोज की है, जो मीनिंग की खोज की है। मीनिंग ही आत्मा है, वह अर्थ ही आत्मा है। और तब आप भीतर प्रविष्ट होंगे।
जब तक आप बाहर जीवन को समझते हैं, इसमें आशा है किसी तरह के सुख के मिलने की, तब तक आत्मा की आपमें जानने की प्यास पैदा नहीं होती। जब तक आपको लगता है कि बाहर की दौड़ में कहीं सुख मिल सकता है--यहां या कि स्वर्ग में या कि मोक्ष में--जब तक आपको लगता है कि कहीं बाहर सुख मिल सकता है, तब तक आप आत्मा को नहीं खोजेंगे। जिस दिन आपको लगेगा बाहर सुख है ही नहीं, यह इतना स्पष्ट होगा कि इसमें कोई शक न रह जाएगा कि बाहर सुख है ही नहीं--न इस जमीन पर, न स्वर्ग में, न मोक्ष में--बाहर नहीं, बाहर की धारणा आपकी खंडित हो जाएगी, उस दिन आप इतने प्यास से भरेंगे और आप पाएंगे कि वह मिल गया, वह भीतर है।
आत्मा को जानना तो सरल है, आत्मा को चाहना थोड़ा कठिन है। अंत में आपसे इतना कहूं, आत्मा को जानना तो बहुत सरल है, आत्मा को चाहना कठिन है। आत्मा का जानना तो एक क्षण में हो जाता है, आत्मा की चाह जन्म-जन्मांतर के बाद आती है। तो जिनको मिल जाता है इसलिए नहीं कि उन्होंने बड़ी मेहनत की जानने के लिए। न, वह पाने के लिए लंबी यात्रा किए--वह आकांक्षा, वह अभीप्सा, वह प्यास। प्यासे हम नहीं हैं, तो फिर कोई मायने नहीं है। हम चलेंगे, बातें करेंगे, वह नहीं मिलेगा। प्यासे अगर हम हैं तो इसी क्षण मिल जाएगा।
पाना सरल है, जानना सरल है, आकांक्षा आपमें है या नहीं, यह आप निर्णय
कर लें। यह निर्णय कोई दूसरा नहीं कर सकता। महावीर यह कह सकते हैं--पाना सरल है, स्वभाव है। बुद्ध यह कह सकते हैं--पाना सरल है, स्वभाव है। क्राइस्ट कह सकते हैं कि प्रभु का राज्य बिल्कुल हाथ के करीब है, बढ़ाओ और पा लो। लेकिन वे इतना ही कह सकते हैं। वे, आप चाहें, ऐसा कुछ भी नहीं कर सकते। यानी मेरा मतलब यह है कि आपको यह बताया जा सकता है कि यह पानी है, कृपा करके चाहें तो पी लें, बड़ा सरल है। पानी तक आपको पहुंचाया जा सकता है, लेकिन प्यास कोई दूसरा आपमें पैदा नहीं कर सकता। आपको पानी में डुबकियां दिलाई जा सकती हैं, लेकिन प्यास आपमें कोई पैदा नहीं कर सकता। प्यास आप पैदा करेंगे, पानी निकट है। प्यास न हो तो आप पानी के किनारे खड़े रहें, वह बहुत दूर है, अनंत दूरी पर है। प्यास जितनी है, पानी उतना निकट है; और प्यास जितनी कम है, पानी उतना दूर है। प्यास अगर परिपूर्ण है तो तृप्ति उसी क्षण हो जाएगी। इसलिए फासला हो सकता है। लेकिन कठिन नहीं है, इसे स्मरण रखें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

समाधि का अर्थ ही यह होता हैः जिससे चित्त की समस्त अशांति का समाधान
हो गया। जिसे वे लगाते होंगे वह समाधि नहीं है, वह केवल जड़मूर्च्छा है। जो चीज लगाई जा सकती है वह समाधि नहीं है, वह केवल जड़मूर्च्छा है। वह अपने को बेहोश करने की तरकीब है। ट्रिक सीख गए होंगे, और तो कुछ नहीं। तो वह ट्रिक अगर सीख ली जाए तो कोई भी आदमी उतनी देर तक बेहोश रह सकता है, उतनी देर उसे कुछ पता नहीं होगा। अगर आप उसको मिट्टी में दबा दें तो भी कुछ पता नहीं होगा। उस वक्त श्वास भी बंद हो जाएगी और सब चेतन कार्य बंद हो जाएंगे। उसको लोग समाधि समझ लेते हैं। वे उसको समझ लेते हैं वह तो ठीक है, लेकिन दूसरे भी समझ लेते हैं कि वह समाधि है। समाधि के नाम पर एक मिथ्या, जड़अवस्था प्रचलित हुई है। जिसका समाधि से, धर्म से कोई संबंध नहीं है। जो बिल्कुल मदारीगिरी है। समाधि कोई ऐसी चीज नहीं जिसको आप लगाते हैं और जिसमें से निकल आते हैं। समाधि उत्पन्न हो जाए तो वह आपका स्वभाव होती है। इसलिए न आप उसको लगा सकते हैं, न उसके बाहर निकल सकते हैं, न उसके भीतर जा सकते हैं।
समाधि जो है वह लगाने और निकलने की चीज नहीं है। जैसे स्वास्थ्य है।
अब आप स्वस्थ हैं तो कोई बताइएगा कि हम एक घंटे भर के लिए स्वस्थ हुए जाते हैं और फिर हम अस्वस्थ हो जाएंगे। हम स्वास्थ्य लगाए लेते हैं और फिर हम न लगाएंगे। जैसा स्वास्थ्य है न, स्वास्थ्य तो देह का है, वह आंतरिक चित्त का स्वास्थ्य है, वहां एक दफा स्वास्थ्य प्राप्त हो जाए, तो वह सतत आपके साथ होता है, उसके बाहर आप नहीं हो सकते। तो समाधि में भीतर तो जा सकते हैं, समाधि के बाहर कभी नहीं आ सकते। आज तक कोई आदमी तो समाधि के बाहर नहीं आया। लेकिन जिसको हम समाधि जानते हैं उसमें भीतर-बाहर दोनों हो जाता है आना-जाना। वह आना-जाना कुछ भी नहीं है, वह मूर्च्छा है। आप मूर्च्छित कर लेते हैं, फिर होश में आ जाते हैं। उस आदमी में आप कुछ भी न पाएंगे, जो बहत्तर घंटे नहीं, कितने ही घंटे लगाता हो। उसके जीवन में कुछ भी नहीं होगा। समाधि से हम धीरे-धीरे चमत्कार में पतित हो गए हैं और उसको मदारीगिरी बना लिया है। समाधि का वह लक्षण नहीं है।
एक ईसाई फकीर हुआ, साधु था, वह अपने एक शिष्य के साथ एक यात्रा पर था। उसने... रास्ते में पानी पड़ा, अंधेरी रात, वे रास्ता भटक गए... उसने अपने शिष्य से पूछा, शिष्य का नाम लियो था, उसने कहा, लियो, तुम परम धर्म क्या समझते हो? क्या बीमारों को छूकर ठीक कर देना, या कि अंधों की आंख पर हाथ रख कर आंखें ठीक कर देना, या कि मुर्दों को छूकर जिला देना, क्या तुम इसे सिद्धि समझते हो? उस लियो ने कहा, सिद्धि तो मालूम होती है। उसके गुरु ने कहा, लेकिन मैं इसे सिद्धि नहीं समझता।
हम तो इसे ही सिद्धि समझते हैं। हम तो ईसा का इसीलिए मूल्य समझते हैं
कि उन्होंने किसी की आंख छू दी और वह उसकी आंख ठीक हो गई, और किसी मुर्दे को छू दिया और वह जिंदा हो गया। अगर ये सिद्धियां नहीं हैं, तो फिर ईसा में क्या मूल्यवान रह जाएगा?
उसने कहा, समय आया तो मैं बताऊंगा कि सिद्धि क्या है।
वे रात दो बजे एक गांव में पहुंचे, उन्होंने एक सराय का दरवाजा खटखटाया। वे दोनों फकीर, नंगे आदमी, फटे कपड़े, कीचड़ में भिड़ गए, पानी से भीगे हुए, दो बजे अंधेरी रात दरवाजा खटखटाया। खिड़की से झांक कर पहरेदार ने देखा और उसने कहा, भिखमंगो, भाग जाओ! यहां अब इस रात, इतनी देर, स्थान नहीं मिलेगा। लियो गुस्से में आ गया और उसने कहा, तुमने कहा भिखमंगे! हम भिखमंगे नहीं हैं, हम साधु हैं! उसका गुरु चुपचाप खड़ा रहा। उसने दरवाजा बंद कर दिया पहरेदार ने। उन्होंने फिर दस्तक दी। अब की बार वह और गुस्से में आया। उन्होंने कहा कि क्षमा करें, रात ठहर जाने दें। अब हम इतनी रात किसको जगाएं? लेकिन उसने कहा, भाग जाओ, अन्यथा मैं डंडा लेकर आता हूं! अब रात दुबारा परेशान मत करना।

पर मजबूर थे, फिर उन्होंने तीसरी बार दस्तक दी, पानी जोर से गिर रहा था। अब की बार वह डंडा लेकर आया और उसने इन दोनों पर चोट की। उसने लियो पर भी चोट की, उसके गुरु पर भी चोट की। लियो गुस्से में आ गया, उसने डंडा उठा लिया। उसके गुरु पर चोट की, उसके सिर से खून बहता था और उसने कहा, लियो देखो, मैं समाधि में हूं, मैं सिद्धि में हूं। उसने कहा, देखो, अगर तुम्हारे मन में इस आदमी के अपमान करने पर अपमान न हुआ हो, अगर तुम्हारे मन में इसके मारने पर चोट न लगी हो, अगर इसके दुतकारने पर तुम्हारे मन में कोई तरंग न उठी हो, तो सिद्धि है। तुम अंधों की आंखें जिला दो, मुर्दों को जिला दो, बीमारों को ठीक कर दो, उससे कोई वास्ता नहीं। उससे धर्म का कोई वास्ता नहीं है।
उससे साइंस का वास्ता हो सकता है। जिस समाधि की आप बात कह रहे हैं, उससे साइंस का वास्ता हो सकता है। आज नहीं कल साइकोलाजी उसके बाबत सब जान लेगी, समझ लेगी। लेकिन उसका अध्यात्म से कोई वास्ता नहीं है। वह ट्रिक है दिमाग की, उसे कल साइकोलाजी समझ लेगी, जान लेगी कि ये-ये करने से ऐसा हो जाता है। लेकिन उससे कोई वास्ता नहीं है। धर्म का और समाधि का वास्ता तो वहां है जब आपके भीतर इतना चित्त समाधान को उपलब्ध हुआ है कि बाहर की कोई तरंगें उसे विक्षुब्ध नहीं कर पातीं।
सबसे बड़ा चमत्कार वह आदमी है कि जिसे तुम जब बाहर से चोट करो तो जिसके भीतर कोई चोट न पहुंचे। और सबसे चमत्कार वह आदमी है जिसको बाहर से तुम मार भी डालो तो जिसके भीतर मृत्यु का भाव भी पैदा न हो। वह समाधि के परिणाम में वह घटना घटती है।
यानी समाधि एक अवस्था है। एक क्रिया नहीं है जिसके भीतर गए और लौट आए।
एक अवस्था है चित्त के समाधान की। और उस पर अगर ध्यान रहा तो ठीक, अन्यथा ये जो इस तरह की बातें सारे मुल्क में चलती हैं, इस मदारीगिरी ने भारत के धर्मों को, भारत के योग को सारी दुनिया में अपमानित किया है। सारी दुनिया में अपमानित किया है। और पश्चिम से जो लोग आते हैं, वे इसी तरह की बातें देख कर लौट जाते हैं और समझते हैं यह अध्यात्म है। और वे महावीर और बुद्ध और इन सबके बाबत भी यही ख्याल बनाते हैं, ये भी इसी तरह के मदारी रहे होंगे।
अगर भारत को अपने धर्मों की वापस सुरक्षा करनी है और उन्हें पुनर्जन्म देना है, तो इस तरह की तथाकथित झूठी बातें--जिनका समाधि से, योग से, धर्म से कोई संबंध नहीं है--हमें बंद करनी चाहिए। ये सब मदारीगिरियां हैं। इससे कोई वास्ता नहीं है।
कुछ और आपके रहे प्रश्न, उनको कल हम विचार करेंगे।

समाधि कमल
पांचवां प्रवचन

मैत्री भाव, आनंद भाव, समता भाव

इसके पहले कि हम रात्रि के ध्यान के प्रयोग पर बैठें, थोड़ी सी बातें आपको मैं कहूं। सुबह सम्यक आचार के संबंध में थोड़ा सा मैंने आपको कहा, वह एक भूमिका है। वह भूमिका बने, तो ध्यान में अनायास गहराई उपलब्ध होगी। उस भूमिका के बनने पर एक पृष्ठभूमि बनेगी और उसके माध्यम से चित्त की शांति और शून्यता संभव होगी। लेकिन और भी कुछ भूमिकाएं हैं, उनकी भी, इसके पहले कि हम यहां से विदा हों, मैं आपसे चर्चा कर लेना चाहूंगा।
तीन बातों की मैंने चर्चा की--सम्यक आहार की, सम्यक व्यायाम की, सम्यक निद्रा की। वे तीनों ही शरीर से संबंधित हैं। शरीर एक भूमिका है साधक की, लेकिन अकेली भूमिका नहीं है। उसके और भीतर प्रवेश करें, तो उसका एक भाव जगत भी है। और भीतर प्रवेश करें, उसका एक विचार जगत भी है। शरीर के तल पर तीन बातें कहीं, ऐसी ही तीन बातें भाव के तल पर और ऐसी ही तीन बातें विचार के तल पर और आपको मुझे कहनी हैं। अभी रात्रि में मैं, भाव के तल पर कौन सी तीन बातें हैं जो भूमिका बनेंगी, उनकी थोड़ी चर्चा कर लूं और फिर ध्यान के लिए हम बैठेंगे।
मनुष्य इसके पहले कि निर्भाव हो, इसके पहले कि उसके सारे भाव शून्य और समाप्त हो जाएं, कुछ भाव हैं जो उसकी चित्त की अशांति और उद्विग्नता को बढ़ाते हैं। कुछ भाव हैं जो उसकी चित्त की शांति को, समता को लाने में सहयोगी होते हैं और भूमिका बन सकते हैं ध्यान के लिए। वैसे तीन भावों की मैं आपसे चर्चा करूं। उनका भी थोड़ा प्रयोग जीवन में करेंगे, उपयोगी होगा। सबसे पहले तो हमारे बाहर जो जगत है उसके प्रति एक भाव। उसके बाद हमारे कर्मों का जो जगत है उसके प्रति एक भाव। और सबसे अंत में हमारी संवेदनाओं का जो जगत है उसके प्रति एक भाव। हमारे बाहर तीन जगत हमें घेरे हुए हैं। एक तो वस्तुओं और व्यक्तियों का जगत है, जो हमसे चारों तरफ फैला हुआ है। उसके बाद हम जो कर्म करते हैं उनकी एक पर्त है, उनका एक जगत है, वह हमें घेरे हुए है। उसके बाद जो सुख-दुख की संवेदनाएं हमें छूती हैं, स्पर्श करती हैं, उनका एक जगत है, वह हमें अंत में घेरे हुए है। ऐसी तीन पर्तें हमें घेरे हुए हैं। इन तीनों पर्तों के लिए तीन भावनाएं ध्यान के लिए सहयोगी हैं। समस्त जगत के प्रति मैत्री भाव सहयोगी है। वह जो महावीर ने कहाः मित्ति मे सव्वभूएषु, वैरं मज्झ न केणई। वह जो कहा--मेरा किसी से वैर नहीं, मेरी इस सारे जगत से मैत्री है। यह भाव अगर हम साधें, अगर यह भाव हमारे चित्त में परिव्याप्त हो जाए, तो शून्य में और समाधि में जाने में सहयोगी होगा। ऐसा मत सोचना कि यह भाव जगत के लिए सहयोगी है। जगत के लिए तो गौण अर्थ में सहयोगी है, स्वयं साधक के लिए सहयोगी है। आप जितने वैर से भरे हैं जगत के प्रति, उतने ही आप अशांत होंगे। आपके चित्त में जितना वैमनस्य और जितना दूसरों के प्रति दुर्भाव है, उतने ही ज्यादा आप अशांत होंगे।
थोड़ी कल्पना करें, अभी केवल कल्पना ही करें कि सारे जगत में आपके जो
भी हैं वे सब मित्र हैं। सिर्फ कल्पना ही करें, समझ लें कि सारे जगत में आपके मित्र ही व्याप्त हैं। सारे पशु-पक्षी और पौधे, सारे मनुष्य, सारे प्राणी आपके प्रति मैत्री रखते हैं। कल्पना ही करें इस बात की केवल कि सारा जगत आपके प्रति मैत्री से भरा है और आप उस सारे जगत के प्रति मैत्री से भरे हैं। तो क्या आपके चित्त में शांति आनी प्रारंभ नहीं हो जाएगी? क्या अशांति का कारण कहीं वैर-भाव नहीं है? कहीं दुर्भाव नहीं है?
ध्यान की भूमिका में भाव के तल पर सारे जगत के प्रति मैत्री की धारणा बहुत बहुमूल्य है।
कैसे करेंगे मैत्री की धारणा? बहुत सरल है। मैत्री की धारणा से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं। वास्तविक मैत्री की स्थिति तो ध्यान के बाद उपलब्ध होगी। वास्तविक मैत्री और प्रेम की स्थिति तो ध्यान के बाद उपलब्ध होगी, वह तो ध्यान का परिणाम होगी। लेकिन ध्यान के पूर्व मैत्री का भाव आपके लिए शांति में, प्रगाढ़ शांति में ले जाने में सहयोगी हो जाएगा।

जब ध्यान के लिए बैठें, रास्ते पर चलें, उठें, भीड़ में जाएं, एकांत में जाएं, पर्वत पर हों, झील पर हों, दरख्तों के नीचे हों, तब अपने आसपास एक मैत्री का घेरा बनाएं। और अनुभव करें कि आपके आसपास मैत्री परिव्याप्त हो रही है, आप सबके प्रति, जो आपके आसपास हैं, प्रेम से भरे हुए हैं। इसका एक भाव-घेरा आरोपित कर लें। दरख्त को देखें तो अनुभव करें कि आप उसके प्रति प्रेम और मैत्री से भरे हैं। और पक्षियों को देखें तो उनके प्रति अनुभव करें कि आप उनके प्रति मैत्री से भरे हैं और आपके हृदय से उनकी तरफ मैत्री प्रवाहित हो रही है, प्रेम और मित्रता प्रवाहित हो रही है। लोगों के पास भी जब उठें तो ऐसा अनुभव करें। आप थोड़े ही दिन में अनुभव करेंगेः आपके चारों तरफ एक मैत्री का घेरा फैलता चला जा रहा है। और जिस मात्रा में आपके चारों तरफ मैत्री का सागर लहरें लेने लगेगा, उसी मात्रा में आपके भीतर अशांति का जो सागर लहरें ले रहा है वह शांत होता चला जाएगा।
अगर आप यह मैत्री का भाव रात्रि को सोते समय करके सो जाएं--सारे जगत के प्रति मैत्री का निवेदन करके, सारे जगत के प्रति यह भाव करके कि मैं उसके प्रति प्रेम से, मैत्री से भरा हूं और यह अनुभव करके कि मेरे भीतर से सारे जगत के प्रति मैत्री प्रवाहित हो रही है--आप सुबह एक अभिनव शांति में जागेंगे। सुबह उठ कर भी इस भाव को दोहरा लें, अपने मन में इस भाव को आरोपित कर लें कि सबके प्रति मेरी मैत्री है। इस भाव को चौबीस घंटे सतत जब भी स्मरण आए अपने से बाहर प्रवाहित कर दें। यह एक अदभुत काम करेगा। यह उस दूसरे भाव को--हिंसा के और विरोध के और वैमनस्य के, जो आपमें सतत जागता है-- क्षीण करेगा, उसे विलीन कर देगा। और उसके कारण जो अशांति और क्रोध चित्त को व्यथित करते हैं और मथ डालते हैं, वे विलीन हो जाएंगे।
और भी एक आश्चर्य की बात है, जो प्रयोग करेंगे तो आपको समझ में आएगी।
एक बड़ी अदभुत बात है कि हमारी भावनाएं संवेदित हो जाती हैं और हमारी भावनाएं दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करती हैं और स्पर्श कर लेती हैं। अगर आप किसी के प्रति बहुत प्रेम और मैत्री से भरे हैं, अगर आपके भाव उसके प्रति वैमनस्य और विरोध के नहीं हैं, तो आप अनिवार्यतः पाएंगे, उसके हृदय में भी आपके प्रति मैत्री के भाव संवेदित हो रहे हैं, वे जाग रहे हैं।
जो व्यक्ति सारे जगत के प्रति मैत्री की भावनाएं फैलाता है और फेंकता है, वह अनिवार्यतः सारे जगत का मैत्री भाव उसके प्रति प्रवाहित होने लगता है। हम जो फेंकते हैं उसी को वापस झेल लेते हैं। हम घृणा फेंकते हैं, घृणा हम पर आरोपित हो जाती है। हम मैत्री फेंकेंगे, मैत्री हम पर लौट आएगी। भाव के जगत में अनिवार्यतः वही वापस लौट आता है जो हमने फेंका।
कल हम एक जगह गए थे, वह यहां की माथेरान की देखने की जगह--इको प्वाइंट है। वहां जो हमारे साथ थे उन्होंने आवाज फेंकी, तो उन घाटियों से वह आवाज लौट कर चली आई। उन घाटियों ने कुछ भी नहीं जोड़ा, उन्होंने केवल उसको इको कर दिया, उसको प्रतिध्वनित कर दिया। हमने जो आवाज फेंकी वह उन घाटियों ने वापस हम पर लौटा दी।
यह सारा जगत इको प्वाइंट है। इसमें हम जो फेंकते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। इसमें जो हम प्रतिध्वनित करते हैं वही वापस लौट कर हम पर फिर हमें उपलब्ध हो जाता है। जिसे मैत्री चाहिए वह मैत्री को फेंके, और जिसको प्रेम चाहिए वह प्रेम को लुटा दे, और जिसे फूल चाहिए वह रास्तों पर दूसरों के फूल फैला दे। और यह केवल भाव न हो हमारा, यह हमारी जीवनचर्या में प्रविष्ट हो जाए और हमारी छोटी-छोटी बातों में परिलक्षित होगा।
एक गुरु था, उसके तीन शिष्य उत्तीर्ण हुए थे। वे पच्चीस वर्ष के ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद अब जीवन में वापस लौट रहे थे। उस गुरु ने कहा, तुम्हारी एक परीक्षा और रह गई, वह मैं जाते समय ले लूंगा। वे विद्यार्थी राह देखते रहे, आखिर वह विदा का दिन भी आ गया और उनकी कोई परीक्षा नहीं हुई। सांझ को गुरु ने उन्हें विदा भी कर दिया। सूरज अस्त होने लगा और गुरु ने कहा, अब तो सूर्य अस्त होता है, तुम जाओ।
वे बहुत हैरान थे कि शायद गुरु भूल गए हैं वह अंतिम परीक्षा के लिए। उन्होंने अपनी-अपनी चटाइयां बांधीं, अपने झोले लिए और वे चल दिए। सांझ चांद निकल आया, वे कोई दो-चार मील आश्रम से दूर चले आए हैं, जंगल में हैं, अब

वे अपने गांव की तरफ हैं। और एक झाड़ी के पास बहुत से कांटे पड़े हुए हैं। पहला विद्यार्थी उसे छलांग करके निकल गया; दूसरा विद्यार्थी उसे बगल से काट कर निकल गया; तीसरे विद्यार्थी ने वे सारे कांटे उठा कर झाड़ी में डाले और जाने लगा।
उन्होंने हैरान होकर देखा, गुरु उनका झाड़ी में छिपा है! और उसने उनसे कहा, दो जो आगे निकल गए हैं वे कृपा करके वापस लौट आएं। एक जिसने कांटे बीन कर अलग कर दिए हैं वह उत्तीर्ण हो गया। यह अंतिम परीक्षा थी।
रास्ते पर कांटा पड़ा है और अगर आप उसे बिना हटाए निकल जाते हैं, आप अहिंसक नहीं हैं और आपके मन में मैत्री भाव नहीं है। एक नुकीला पत्थर पड़ा है रास्ते पर और आप उसे बिना फिक्र किए निकल जाते हैं, आप किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाहते, लेकिन आपको किसी को चोट से बचाने का मन नहीं है। ऐसा मनुष्य शांत नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्य के भीतर अभी शांति की भूमिका बनने में कठिनाई है। उस पत्थर को हटाना, वह छोटा सा गेस्चर--वह रास्ते पर गिरे हुए पत्थर को हटा देने का--एक कांटे को उठा देने का, इस जगत के प्रति आपकी मैत्री भावना को प्रतिवेदित करता है।
छोटी-छोटी बातें हैं जीवन में। उन छोटी-छोटी बातों पर थोड़ा विचार करें और देखें कि आप कुछ ऐसा तो नहीं कर रहे हैं जिसकी वजह से आप खुद अपनी अशांति के बीज बोते हैं?
एक महिला थी ब्लावट्स्की, उसे लोग देखते बहुत हैरान थे। वह जब भी सफर में चलती तो एक बड़ा झोला साथ में लिए रहती और कुछ खिड़की में से बाहर फेंकती जाती। किसी ने पूछा कि हमेशा जब आपको सफर में देखते हैं, झोले में आप क्या रखती हैं और खिड़कियों से बाहर क्या फेंकती हैं?
उसने कहा, मुझे फूलों से प्रेम है और जिन रास्तों से मैं निकलती हूं
उन पर फूलों के थोड़े से बीज फेंक देती हूं। अभी वर्षा आएगी, अभी बादल घिरने लगे हैं और पानी गिरेगा, और दोनों तरफ के रास्ते फूलों से भर जाएंगे। कोई उन्हें देख कर मुस्कुराएगा, कोई उन्हें देख कर खुश होगा, किसी की आंख का आंसू सूख जाएगा, मेरी खुशी का ठिकाना नहीं। मुझे तो पता नहीं चलेगा, लेकिन मैं कल्पना करती हूं कि मेरे फूल किसी को अच्छे लगेंगे, किसी को प्रीतिकर लगेंगे। और इसलिए बीजों को मैं सड़कों के किनारों पर फेंक देती हूं, कभी पानी गिरेगा, वे फूल बन जाएंगे।
मैं आपसे कहूंगा, मैत्री भाव सच में ही... एक कहावत है अंग्रेजी मेंः
इट कॉस्ट्स नथिंग टु बी काइंड, दयालु होने के लिए कुछ खर्च नहीं करना होता। यह सच है, मैत्री भाव को फेंकने के लिए कुछ भी खर्च नहीं करना होता। घृणा को फेंकने के लिए बहुत कुछ खर्च करना होता है। जब आप किसी के प्रति घृणा से भरते हैं, आप बहुत मंहगा काम कर रहे हैं--आप अपने को तोड़ रहे हैं, आप अपने को भीतर दुख में डाल रहे हैं। और जब आप किसी के प्रति प्रेम और मैत्री को फेंकते हैं, तो आप एक इतना सस्ता काम कर रहे हैं जिसमें आपका तो कुछ भी नहीं खो रहा, बल्कि कुछ मिल रहा है। आपके भीतर एक समता और शांति उत्पन्न होगी।
तो पहली बात, ध्यान के साधक को अगर सच में समाधि तक जाना है, तो उसे एक मैत्री भाव का घेरा, एक प्रेम का घेरा, जो कि बिल्कुल मुफ्त है, जिसे आप सहज प्रकट कर सकते हैं... । क्या खर्च होता है रास्ते पर से एक पत्थर को हटा देने में? और क्या खर्च होता है किसी के रास्ते पर दो फूल रख देने में? और क्या खर्च होता है इस सहज प्रेम में जो हम अपने चारों तरफ परिव्याप्त कर सकते हैं? उसका परिणाम यह होगा, आपके भीतर बाहर से मैत्री प्रतिध्वनित होगी। और जितनी मैत्री बाहर से प्रतिध्वनित होगी, उतने अशांति के बाहर से आने वाले कारण विलीन होते चले जाएंगे।
तो पहली बात, भाव के जगत में मैत्री को, मैत्री भावना को थोड़ा सा विकसित करना सहयोगी होगा, भूमिका बनेगी, यह बाहर जो जगत व्याप्त है उसके संबंध में। उसके बाद हमारे कर्मों का जो जगत है, जो हम रोज दिन-रात कर रहे हैं काम, उसके संबंध में भी एक भाव प्रगाढ़ कर लेना उपयोगी है। हम जो कर्म कर रहे हैं उन कर्मों में दो रास्ते हैं उन कामों को करने के। एक रास्ता है कि उन कामों से हमें बाद में जो फल मिलेगा उसमें हमारी खुशी हो और एक

रास्ता है कि उन कर्मों के करने में हम आनंद को अनुभव करें। एक रास्ता है कि एक आदमी चित्र को बनाता हो, चित्र जब बन जाएगा और उसके दाम जो मिलेंगे वे उसे खुशी देंगे और एक रास्ता यह है कि चित्र बनाना उसका आनंद हो। हम अपने जीवन में करीब-करीब ऐसे काम कर रहे हैं जिन कामों में हमें कोई आनंद नहीं है। जिन कामों के फलों में हमें आनंद है, कामों में कोई आनंद नहीं है। मैं आपसे कहूंगा, कुछ ऐसे काम खोजें जो आपके लिए अपने में मूल्यवान हों, जिनका अपने में रस हो और अपना आनंद हो, जिनमें फल का प्रश्न न हो, जिन्हें करना ही एक खुशी और आनंद हो। कुछ ऐसे काम खोजें। और जिन कामों को आप नहीं इस तरह का अनुभव करते हैं उनमें भी क्रमशः इस भाव को प्रतिपादित करें, इस भाव की धारणा करें कि उन कामों की फलासक्ति, फल की तीव्र आकांक्षा क्षीण हो जाए और काम अपने में आनंद बन जाएं।
अगर इसका थोड़ा सा भाव-घेरा हम तैयार करें, भूमिका तैयार करें, तो आपको चित्त की शांति में पहुंचने में बड़ी तीव्र गहराई अपने आप उत्पन्न होगी। आपकी आकांक्षाएं और कर्मों के फल की आकांक्षा आपको बहुत अशांत किए रहती है। आप करते समय करने में बिल्कुल उत्सुक नहीं होते, उसके बाहर उत्सुक होते हैं।
एक साधु को किसी ने पूछा, आपकी साधना क्या है? उसने कहा, मेरी साधना है--जब मैं कपड़े पहनता हूं तो इतने आनंद से पहनता हूं जैसे जगत में इससे बड़ा कोई आनंद नहीं है, और जब मैं स्नान करता हूं तो इतने आनंद से स्नान करता हूं जैसे जगत में इससे बड़ा कोई आनंद नहीं है, और जब रात्रि मैं सोने जाता हूं तो मैं सारे जगत के प्रति इतना अनुग्रह अनुभव करता हूं कि मुझे एक दिन और जीवन का मिला, और मैं इतने आनंद से सोता हूं जैसे सोने से बड़ा कोई आनंद नहीं है।
जीवन की छोटी-छोटी चीजों में जो आनंद को अनुभव नहीं कर सकेगा उसे कोई बड़े आनंद दुनिया में उपलब्ध नहीं होंगे। दुनिया में बड़े आनंद नहीं हैं। दुनिया में छोटे-छोटे आनंदों का इकट्ठा जोड़ बड़े आनंद को उत्पन्न कर देता है। और हमको सब चीजें छोटी मालूम होती हैं--कपड़ा पहनना, रास्ते पर चलना, चांद को देखना, एक फूल का खिलना--सब छोटी बातें हैं।
मैं आपको कहूंगा, ध्यान के साधक को अगर सच में भूमिका खड़ी करनी है तो उसे छोटी-छोटी बातों में आनंद को अनुभव करना शुरू करना चाहिए।
एक फूल खिल जाता है किनारे पर, हम उसे बिना देखे निकल जाते हैं? हम अंधे हैं! और हम उस फूल में जो खुशबू और जो आनंद परिव्याप्त हुआ है उसको एक क्षण प्रशंसा से भी नहीं देख पाते, उसके सौंदर्य को अनुभव भी नहीं कर पाते। एक छोटा सा फूल है--घास का फूल हो सकता है--एक क्षण उसको अनुभव करें, उस छोटे से फूल में आनंद को अनुभव करें। रात चांद से आकाश प्रकाशित होता है, तारे भर जाते हैं, कभी घना मखमली अंधेरा होता है, कभी छोटी-छोटी चिड़ियां गीत गाती हैं... इन छोटी-छोटी बातों को... कभी वर्षा होती है और बूंद टपकती है और उनके बूंदों के टपकने में एक गीत और एक आनंद होता है। यह चारों तरफ जगत छोटे-छोटे आनंदों से भरा है, इसको अनुभव करें। और अपने छोटे-छोटे काम में भी, अपने छोटे-छोटे काम में भी--बुहारी देने में या कपड़े पहनने में--आनंद को अनुभव करें। एक आनंद को उसमें परिव्याप्त करें। आगे का प्रश्न उसमें बहुत विचारणीय न रखें, जो कर रहे हैं उसमें खुशी लें, उसमें आनंद लें।
तो आप हैरान होंगे कि आपके आसपास एक शांति का घेरा, मैत्री के विचार
से जगत में बनेगा, स्वयं कर्म में आनंद लेने की वृत्ति से और भाव से--कर्म ही आनंद है, फल नहीं, इस भावना के आरोपण से--कर्मों में मिलेगा। और आप पाएंगे कि आपके छोटे-छोटे काम बोझ नहीं रह गए, वे आनंद हो गए हैं। छोटे से अंतर की बात है, और काम बोझ हो जाता है; और थोड़े से भाव के अंतर की बात है, वह आनंद हो जाता है।
एक संन्यासी हिमालय पर चढ़ता था। वह तीर्थयात्रा को था। वह अपने बोझ
को सिर पर लिए था। वह बढ़ता था, दोपहर घनी, और धूप तेज, और पसीना, और थकान। और उसके सामने एक पहाड़ी लड़की भी चढ़ती थी, एक छोटी सी लड़की और अपने एक भाई को लिए, भाई मोटा और वजनी। उस साधु ने दयावश, उस साधु ने सहानुभूतिवश उस बच्ची

के करीब से गुजरते हुए उससे कहा कि बेटी, बहुत वजन लगता होगा, धूप बहुत तेज है, चढ़ाई बड़ी है। उस लड़की ने बहुत हैरानी से उस साधु की तरफ देखा और कहा, आप क्या कह रहे हैं? वजन तो आप लिए हैं, यह तो मेरा छोटा भाई है! उस लड़की ने कहा, वजन आप लिए हैं, यह मेरा छोटा भाई है! और उस संन्यासी ने लिखा हैः मैंने बड़े शास्त्र पढ़े हैं, इससे अदभुत वचन मैंने अपने जीवन में नहीं जाना! मुझे पहली दफा पता चला, छोटे भाई में वजन नहीं होता।
तराजू में तो वजन होता है। तराजू तो वजन बताएगा--चाहे छोटा भाई हो और चाहे बिस्तर हो। लेकिन हृदय वजन नहीं बताएगा। प्रेम वजन को काट देता है, शून्य कर देता है। इस जगत में प्रेम अकेली शक्ति है जो बोझ को, वजन को काटती है। अकेली प्रेम शक्ति है जो ग्रेविटेशन के विपरीत है। वह जो जमीन में कशिश है वह हर चीज को खींच लेती है। अकेला प्रेम है जिसको वह नहीं खींच पाती। अकेला प्रेम मुक्त है इस जगत में, और सब चीजें बंधी हैं उससे। जितना प्रेम होगा उतने आप निर्भार हो जाएंगे, उतनी वेटलेसनेस आपमें अनुभव होगी। और जितनी आपमें निर्भारता होगी उतने आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे, उतने आप शांति में, शून्य में प्रवेश कर सकेंगे।
तो दूसरी धारणा मैं आपसे कहूंगा, छोटे-छोटे कामों को भार न बनाएं, उनको आनंद बना लें। इसे जरा देखें--कल स्नान करते वक्त, कल भोजन करते वक्त, कल कपड़े पहनते वक्त, कल किसी की थोड़ी सी सहायता करते वक्त, कभी रास्ते से पत्थर हटाते वक्त। थोड़ा सा देखें--एक पौधे में पानी देते वक्त। कोई ऐसे भी पानी दे सकता है, कोई बड़े प्रेम से भी पानी दे सकता है। बहुत अंतर पड़ जाएगा! बहुत अंतर पड़ जाएगा, जमीन-आसमान का अंतर पड़ जाएगा।
तो अपने कर्म के जगत में, छोटे-छोटे काम हैं, कोई काम बड़ा नहीं है, सब काम छोटे-छोटे हैं, उन कामों को एक आनंद से, एक प्रीति से, एक उल्लास से उनको करें और उनमें एक भाव स्थापित करें। तो आप थोड़े दिन में पाएंगे कि आपका जीवन एक अदभुत आनंद की कथा हुआ जा रहा है। इसमें छोटी-छोटी बातें बड़ी महत्वपूर्ण और आनंदपूर्ण हो जाएंगी।
अब मैं यह देखता हूं, हमारी स्थिति बिल्कुल विपरीत है, हम उलटा ही करते हैं। हम किसी चीज में कोई आनंद अनुभव नहीं करते और हर चीज हम भार बना लेते हैं, हर चीज! हर चीज हमारे लिए भार हो जाती है। जो भी है, हमारे लिए भार है। तो फिर चित्त शांत नहीं हो सकता।
आप ख्याल करेंः आपके पास ऐसी कौन सी चीज है जो आनंद है? आपके पास करीब-करीब हर चीज भार होगी। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, भार और बढ़ता चला जाता है। एक दिन बुढ़ापे में सिर्फ भार ही होता है आपके पास, और कुछ भी नहीं होता। वह भार आपको तोड़ देता है और आपकी शांति की संभावना को नष्ट कर देता है। वह भार इतना वजनी हो जाता है कि आपके भीतर वे बीज पैदा नहीं हो सकते, वे बीज विकसित नहीं हो सकते, उस भार में दबे नष्ट हो जाते हैं, जो कि हो सकते थे, जो कि आपको आत्मज्ञान तक ले जा सकते थे।
तो एक भूमिका अनासक्त कर्म की। फलासक्ति हीनता और आनंद का भाव, ये दोनों एक ही बातें हैं। जिस कर्म में फलासक्ति न होगी उसमें आनंद परिव्याप्त हो जाएगा। और जिस काम में आनंद परिव्याप्त हो जाएगा उसमें फल की आकांक्षा विलीन हो जाएगी। फल की आकांक्षा इसलिए है कि काम में तो दुख है, उसे करेंगे कैसे जिस काम में दुख है? तो फल की आकांक्षा के पीछे उसको करते चले जाते हैं। काम तो दुख देता है, लेकिन फल की आकांक्षा के पीछे उसको किए चले जाते हैं। अगर काम में आनंद होगा, फलासक्ति विलीन हो जाएगी।
तो उस काम में थोड़ा सा आनंद, उस भाव को कर्म के प्रति मैं चाहूंगा कि
हम थोड़ा सा व्यापक करें। देखें, उसे छोटे-छोटे कामों में प्रयोग करके देखें। काम जिंदगी में बड़े कहां हैं? सब छोटे काम हैं। और उन सब छोटे कामों में अगर आनंद व्याप्त हो तो सारी जिंदगी का एक सिलसिला आनंद से भर जाएगा। इसे देखें, इसको अनुभव करें।
तो एक तो मैत्री भाव और एक कर्म में आनंद भाव। तीसरा तल हमारी वेदनाओं
का है, हमारी संवेदनाओं का है। चौबीस घंटे हम किसी न किसी संवेदना से घिरे हैं--या तो सुख से घिरे हैं या दुख से घिरे हैं। जब दुख होता है तो हम दुख से बचना चाहते हैं और सुख की आकांक्षा करते हैं, यह हमारा टेंशन, यह हमारी

तकलीफ होती है। जब सुख आता है तो हमें यह डर पकड़ लेता है कि कहीं फिर दुख न आ जाए, तो हम सुख को पकड़ना चाहते हैं और दुख को बाहर रखना चाहते हैं, फिर भी टेंशन, फिर भी तकलीफ और तनाव बना रहता है।
आदमी बड़ी अजीब हालत में है। दुख होता है तो दुख झेलता है, इसलिए दुख झेलता है कि दुख है और हट जाए। और सुख होता है तो इसलिए दुख झेलता है कि सुख तो है, लेकिन कहीं दुख न आ जाए। दुख बाहर रहे और सुख बना रहे। सुख को पकड़ना चाहता है, दुख को हटाना चाहता है। दुख को हटाने में और सुख को पकड़ने में, दोनों ही स्थिति में उत्तेजना बनी रहती है।
दुख भी एक उत्तेजना है, वह अप्रीतिकर उत्तेजना है। सुख भी एक उत्तेजना है, वह प्रीतिकर उत्तेजना है। और उत्तेजना मात्र मन के लिए अशांति है, इसे स्मरण रखें। चाहे सुख की हो, चाहे दुख की हो, उत्तेजना मात्र अशांति है। अगर शांत होना है तो उत्तेजना को थोड़ा छोड़ देना होगा। तो उत्तेजना क्या है? दुख आता है, उसको हम हटाना चाहते हैं, यह उत्तेजना है। सुख आता है, उसको पकड़ना चाहते हैं, यह उत्तेजना है। दुख जब आए तो उसे हटाने का बहुत विचार न करें। चित्त जब दुख से भरा हो तब उस दुख को स्वीकार कर लें। उससे घबड़ा न जाएं, उससे पीड़ित, उत्तेजित न हो जाएं, थोड़ी समता रखें। और जब सुख आए तब भी उससे उत्तेजित, आंदोलित न हो जाएं, थोड़ी समता रखें। सुख-दुख के प्रति समता का भाव, आपके भीतर जहां संवेदनाएं आपको व्यथित कर जाती हैं, वहां संवेदनाओं की व्यथा से बचाने का उपाय बनेगा। वहां क्रमशः... जरा देखें, प्रयोग करके देखें... सुख आता हो तब थोड़े अनुत्तेजित रह कर देखें। कठिन बिल्कुल नहीं है। किया नहीं, इतनी ही बात है। सुख आए तब जरा अनुत्तेजित रह कर देखें। जरा देखें कि सुख आया है तो क्या उत्तेजना भीतर होती है? क्यों होती है? और आप पाएंगे कोई उत्तेजना नहीं हो रही है, सुख आ गया है, उत्तेजना नहीं है। सुख आए और उत्तेजना न हो, तो जिस दिन दुख आएगा उस दिन भी उत्तेजना नहीं होगी। उन दोनों की, एक की भी उत्तेजना शून्य हो जाए, दूसरे की अपने आप शून्य हो जाएगी।
तपश्चर्या और कुछ नहीं है। तपश्चर्या के दो रूप हैं--जो दुख में हैं
वे दुख की उत्तेजना को छोड़ दें, जो सुख में हैं वे सुख की उत्तेजना को छोड़ दें। सम्राट भी तपस्वी हो सकता है। जनक वैसा था। जनक की साधना यह रही--सुख है, उसकी उत्तेजना नहीं लेना। महावीर दूसरे साधक हैं--दुख है, उसकी उत्तेजना नहीं लेंगे। ऐसे गांवों में खड़े हो जाते जहां लोग उनको सताते, ऐसे श्मशानों में रुक जाते जहां लोग उनको परेशान करते। उनके साथी, उनके मित्रों ने उनको निवेदन किया कि अच्छी जगहें भी हैं, तुम इन्हीं को क्यों खोज लेते हो और यहीं क्यों खड़े हो जाते हो?
महावीर के लिए तपश्चर्या का हिस्सा था। दुख जैसे आमंत्रण देते फिरते थे। और दुख आए तो उस वक्त देखना है कि उत्तेजना है या नहीं? दुख आए तो अनुत्तेजित है आदमी।
तो आपसे मैं नहीं कहता आप दुख को खोजने जाएं, यूं ही दुख काफी आते हैं। आपको कहीं खोजने जाने की जरूरत नहीं है, वे काफी वैसे ही आते हैं। उनको आप परीक्षा समझें और देखें कि चित्त की समता, उस समय अनुत्तेजित चित्त रह पाता है? अगर रह पाए, थोड़ा-थोड़ा भाव करने से रह पाएगा, एक दिन आप पाएंगे कि दुख खड़ा है, सुख खड़ा है, आप बिल्कुल ही अकंप उसे देख रहे हैं, उसने आपको छुआ नहीं, वह आपमें प्रवेश नहीं किया। जितनी यह भावना आपकी गहरी होगी उतनी ही आपके भीतर शांति प्रगाढ़ होगी और समाधि की संभावना सुनिश्चित होती चली जाएगी।
तो तीन भाव मैंने कहे--जगत के प्रति मैत्री भाव! चाहे उसे अहिंसा भाव कहें, चाहे उसे प्रेम भाव कहें, इससे अंतर नहीं पड़ता। कर्मों के प्रति आनंद भाव! चाहे उसे फलासक्ति हीनता कहें, चाहे अनासक्ति भाव कहें, अंतर नहीं पड़ता। और तीसरा स्वयं के भीतर सुख-दुख की संवेदनाओं के प्रति समता भाव! अगर ये तीनों उत्पन्न हों, तो सुबह जैसे मैंने कहा था, सम्यक आहार हो, सम्यक निद्रा हो, सम्यक व्यायाम हो, तो तीनों का इकट्ठा परिणाम सम्यक दृष्टि होगा--आहार, आचार के जगत में। अगर ये तीनों हों, तो भाव के जगत में

सम्यक दृष्टि उत्पन्न होगी। और वह सम्यक दृष्टि भूमिका बनेगी। उस भूमिका में ध्यान की गति होगी।
इसे स्मरण रखें कि ध्यान, समाधि या आत्मा की उपलब्धि का रास्ता बिल्कुल ही वैसा है जैसे बगीचे में माली पौधे बोता है--बीज बोता है, सम्हालता है, खाद देता है, पानी देता है, सूरज की रोशनी की व्यवस्था करता है, सुरक्षा करता है उनकी कि उन्हें जंगली जानवर न चर जाएं, उन पर बाड़ बिठाल देता है, बागुड़ लगा देता है। फिर रोज-रोज उनकी प्रतीक्षा करता है कि वे बढ़ें। लंबी प्रतीक्षा के बाद उनमें फूल आते हैं। जीवन-साधना भी एक बगीचे में फूल लाने से भिन्न नहीं है। इसे भी बीज बोने होंगे, बीज ध्यान के बोने होंगे। खाद और पानी और सूरज की रोशनी भी देनी होगी। यूं समझ लेंः एक सम्यक आचार की, जिसकी तीन बातें मैंने कहीं, उसकी खाद देनी होगी। सम्यक भाव की जो मैंने तीन बातें कहीं, उसका पानी देना होगा। और कल मैं तीन बातें आपसे सम्यक विचार की कहने को हूं, उनकी रोशनी देनी होगी। तो इन त्रि- रत्नों के माध्यम से--सम्यक आचार और सम्यक भाव और सम्यक विचार के माध्यम से वे ध्यान के बीज समाधि के फूल तक पहुंचेंगे। तब, तब आपके भीतर कुछ जागेगा और उदय होगा। किसी प्रकाश, किसी सूर्य के दर्शन संभव होंगे।
तो यह भूमिका अगर हम देंगे तो संभावना है। संभावना सुनिश्चित है! बात
को ठीक से समझ लेना और बगिया लगाने की विधि को समझ लेने की बात है। इतना मुझे अभी कहना था।
अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
रात्रि का ध्यान कल मैंने आपको समझा दिया है। सुबह मैंने कहा था, सुबह
जब आप जागते हैं, आपके भीतर जागरण की शक्ति होती है, इसलिए सुबह जो हमने प्रयोग तय किया है उसे विचार कर तय किया। उसे इस विचार से तय किया है कि वह जागरण की शक्ति जो आपमें होती है उसका हम उपयोग कर लें और हम जागें और जागरण का प्रयोग करें अपने आंतरिक जीवन में। रात्रि आप सोने के करीब आ जाते हैं, सब सोने की स्थिति आपके भीतर तैयार हो जाती है, इसलिए रात्रि का प्रयोग हमने बहुत दूसरे ढंग से व्यवस्थित किया है। उसमें यह व्यवस्था है कि हम, सोने की जो स्थिति हममें आ रही है, उसका उपयोग कर लें।
आप अगर सौ वर्ष जीएंगे तो पचास वर्ष सोने में बीतेंगे और पचास वर्ष जागने में बीतेंगे। मनुष्य न तो केवल जागा हुआ है और न केवल सोया हुआ है। इन दोनों स्थितियों में उसकी आत्मा मौजूद होती है। इन दोनों स्थितियों से उसकी आत्मा को भीतर प्रवेश करने की सुविधा है।
एक प्रयोग है जागरण का, जिसके माध्यम से हम जाग्रत स्थिति से आत्मा में प्रवेश करते हैं। दूसरा यह प्रयोग है, निद्रा का भी उपयोग कर लेने का, इसके माध्यम से भी हम आत्मा में प्रवेश करते हैं। तो पहले में हम रीढ़ को सीधा रखते हैं, वह जागरण का हिस्सा है; श्वास को गहरा करते हैं, वह हमारे भीतर प्राणवायु को ले जाता है और जगाता है; और हम सतत जागरूक रह कर नाभि के केंद्र पर अपनी स्मृति को ले जाते हैं, ताकि वहां जागरण हो और चित्त की मूर्च्छा टूट जाए।
रात्रि के प्रयोग में हम बिल्कुल विपरीत प्रयोग कर रहे हैं। न हम रीढ़
को सीधा करते हैं, न हम गहरी श्वास लेते हैं, न हम किसी स्थान पर अपने को जागरण का प्रयोग करते हैं। हम शरीर को शिथिल छोड़ते हैं, जैसे निद्रा में छोड़ देते हैं। श्वास को शांत छोड़ देते हैं, ताकि हम और भी अंदर प्रवेश कर जाएं। श्वास भी सो जाए, शरीर भी सो जाए, फिर मन भी सो जाए, इसका प्रयोग करते हैं कि मन भी सो जाए, ये तीनों सो जाएं। चूंकि हम स्वयं प्रयोग करते हैं इनके सुलाने का, इसलिए हम तो जागे रहते हैं। मैं तो जागा रहूंगा, क्योंकि मैं एक-एक को सुलाए चला जा रहा हूं। जब ये तीनों सो जाएंगे तो मैं तो जागा रहूंगा, लेकिन ये तीनों सो जाएंगे। सोने के माध्यम से मैं अपने चैतन्य को जानूंगा।
सुबह के ध्यान के प्रयोग में हम जागरण के माध्यम से उस चैतन्य को जानते हैं। इस रात्रि के प्रयोग में हम सोने के माध्यम से उस चैतन्य को जानते हैं। जिसने जागने में आत्मा को जान लिया, उसे जरूरी है कि वह सोने में भी आत्मा को जान ले, अन्यथा वह जानना अधूरा होगा। और इन दोनों द्वारों

से वह प्रविष्ट हो जाए। तो वह उस आत्मा को जानेगा जो कभी जागता है और कभी सो जाता है, जो दोनों स्थितियों में से गुजरता है, दोनों द्वारों में से गुजरता है। उन दोनों द्वारों का हम उपयोग कर रहे हैं। एक का रात्रि के प्रयोग में, एक का सुबह के प्रयोग में। और एक तीसरा प्रयोग जो मैंने आपसे कहा है, उस प्रयोग को रात्रि और दिन से संबंधित न रख कर, उसे आप कभी भी कर सकें, किसी भी क्षण कर सकें, इस लिहाज से व्यवस्थित किया है।

समाधि कमल
छठवां प्रवचन

विचार के प्रति अपरिग्रह, तटस्थता और स्वतंत्र बोध

कैसी भूमिका बने तो समाधि उत्पन्न होना सरल होगा, उस संबंध में थोड़ा
सा आज सुबह आपको कहना चाहता हूं।
भूमिका के तल पर तीन बातें स्मरणीय हैं। एक बात, सबसे प्रथम बात हैः विचार का अपरिग्रह। हम जिन विचारों को अपना समझते हैं वे अपने नहीं हैं। वे हमने दूसरों से ग्रहण किए हैं, वे उधार हैं। जितने भी विचार आपके पास होंगे उनमें से आपका कोई भी नहीं है। वे कहीं से आपके भीतर आए हैं। आप एक धर्मशाला की तरह हैं जिसमें आकर वे ठहर गए हैं। वे आपके मेहमान हैं। वे आपके भीतर निवास कर गए हैं, वे कहीं बाहर से आए हैं, दूसरी जगह से आए हैं। इन विचारों को अपना समझ लेना भूल है। इनमें ममत्व धारण कर लेना भूल है। तो विचार के प्रति अपरिग्रह--कि जो भी विचार मेरे भीतर इकट्ठे हैं वे मेरे नहीं हैं, इसका स्पष्ट बोध मनुष्य की चित्त-शांति के लिए अनिवार्य शर्त है। अगर ऐसा प्रतीत हो कि वे विचार मेरे हैं, तो फिर उनका शून्य होना मुश्किल हो जाएगा, उनका शांत होना मुश्किल हो जाएगा। अगर ऐसा प्रतीत हो कि वे विचार मेरे हैं, तो फिर उनकी मृत्यु तो हमें दुखद मालूम होगी।
स्पष्ट रूप से यह बोध बहुत उपयोगी है कि कोई भी विचार जो आपके पास है आपका नहीं है। और यह कोई कल्पना नहीं है, यह सच है। आप विश्लेषण करेंगे, अपने भीतर झांकेंगे, अपने विचारों को देखेंगे--तो क्या आप कोई एक ऐसा विचार पाएंगे जो आपका है, निजी आपका है, जो मौलिक है, जो ओरिजिनल है?
कोई विचार मौलिक नहीं होता है। सब विचार उधार होते हैं। किसी शास्त्र से, किसी सदपुरुष से, किसी ग्रंथ से, किसी के वचन से आपने उनको अंगीकार किया है।
ज्ञान और विचार में यही अंतर है। ज्ञान वह है जो आपके भीतर जाग्रत होता है, विचार वह है जो आप दूसरे से ग्रहण कर लेते हैं। तो विचार तो आगमन है और ज्ञान जागरण है।
अगर ठीक से समझें तो विचार आश्रव का एक हिस्सा है, वह आता है, वह हम पर आवृत होता है, हम पर छा जाता है, वह हमको घेर लेता है, वह आश्रव है। और ज्ञान तो उसकी निर्जरा पर उत्पन्न होगा। विचार की निर्जरा पर ज्ञान उत्पन्न होगा। वह जो ढंका है इस विचार के आच्छादन से, जब यह विचार नहीं होगा तो उस ढंके हुए का निरावरण होगा, उसका उदघाटन होगा।
ज्ञान सीखा नहीं जाता, उघाड़ा जाता है। और विचार सीखे जाते हैं, उघाड़े नहीं जाते। तो विचार और ज्ञान में भेद समझ लें और स्मरणपूर्वक इस बात को बोध में ले लें कि विचार आपके नहीं हैं। यह बोध आपको हो, यह स्पष्ट सतत आपको बना रहे, तो विचार का परिग्रह बंद हो जाएगा।
इस जगत में वस्तुओं का परिग्रह उतना घातक नहीं है जितना विचार का परिग्रह घातक है। क्योंकि वस्तुएं तो इस जन्म की इस जन्म में छूट जाएंगी, विचार इस जन्म के अगले जन्म में भी आपके भीतर संगृहीत चले जाएंगे। मृत्यु शरीर को तोड़ देती है, वस्तुओं से तोड़ देती है; मन को नहीं तोड़ पाती, मन साथ चला जाता है। उसका संगृहीत सारा कचरा साथ चला जाता है। अगर आपके मन में थोड़ी सी भी सामर्थ्य प्रवेश की आ जाए तो आप अपने पिछले जन्मों को, विचार को अभी भी जान सकते हैं। वे आपके अचेतन मन के हिस्से हैं। वे अभी भी मौजूद हैं। वे खोए नहीं हैं। वस्तुएं एक जन्म में ही नष्ट हो जाती हैं। परिग्रह एक जन्म से ज्यादा वस्तुओं का नहीं चल सकता है।
इसलिए मैंने कहा--वस्तुओं का परिग्रह उतना घातक नहीं, मृत्यु उसे छीन लेगी। लेकिन विचार के परिग्रह को मृत्यु नहीं छीन पाती है, वह साथ चला जाता है। विचार का, भाव का परिग्रह साथ चला जाता है। वही आपका कर्म है। अगर वह भी छिन जाए तो फिर मृत्यु नहीं होती, फिर मोक्ष हो जाता है। इतना ही फर्क है, मृत्यु में वस्तुओं का परिग्रह छिन जाता है और मोक्ष में विचार का परिग्रह छिन जाता है। इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है मृत्यु और मोक्ष में। वह विचार ही आपको वापस जन्मों में लाता है।

इसलिए मैंने कहा कि विचार का परिग्रह सबसे ज्यादा घातक है। और इस विचार के परिग्रह को तोड़ने का प्राथमिक बोध यह है कि हम समझें कि वे हमारे नहीं हैं। जैसे ही यह बोध आपको स्पष्ट होगा... और यह सरल है। यह आपको भ्रम हो सकता है कि यह मकान मैंने बनाया। और यह एक अर्थ में सच भी है कि आपने बनाया होगा। तो इस मकान के साथ यह भाव छोड़ना कि यह मेरा है, जरा कठिन है। लेकिन विचार तो आपने कोई भी नहीं बनाया है। विचार तो शुद्ध उधार है, उसमें तो गुंजाइश भी नहीं है आपके बनाने की। तो वहां अपरिग्रही हो जाना बड़ा सरल है।
तो पहली तो विचार के जगत में जो भूमिका है वह विचार-अपरिग्रह की। यह बोध कि सब विचार उधार हैं। देखें इसको। यह मैं कहता नहीं कि आप मान लें, आप देखें अपने विचारों को। आप पाएंगे वे आपने कहीं से इकट्ठे कर लिए हैं। वह आपने संग्रह कर लिया है। और सब तरह के संग्रह मनुष्य के अहंकार को मजबूत करते हैं। सब तरह के संग्रह। धन का संग्रह अहंकार को मजबूत कर देता है; यश का संग्रह अहंकार को मजबूत कर देता है; विचार का संग्रह भी अहंकार को मजबूत कर देता है। धनी में और पंडित में अहंकार की दृष्टि से बहुत फर्क नहीं होता। धनिक को धन का दंभ होता है, पंडित को विचार का दंभ होता है। धनिक का दंभ मौत छीन लेगी, पंडित का दंभ मौत नहीं छीन पाएगी। पंडित धनिक से ज्यादा खतरनाक परिग्रह की स्थिति में है।
यह आप बात समझ रहे हैं न? धन तो बहुत बाहर है, विचार एकदम बाहर नहीं है; बाहर होकर भी भीतर है। हमसे तो बाहर है, हमारे चैतन्य से तो बाहर है; लेकिन देह के भीतर है, इसलिए भीतर लगता है, अपना, ज्यादा अपना लगता है। जो विचार के ममत्व को छोड़ सकेगा, वस्तुओं से उसका ममत्व अपने आप छूटना शुरू हो जाता है।
तो पहली क्रांति विचार के तल पर ममत्व के छोड़ देने की है।
इसलिए मैंने कहाः विचार-अपरिग्रह! और वह होगा इस बोध से कि कोई विचार मेरा नहीं। लोग बात करते हैं--मेरा विचार! बहुत हैरानी की बात है! कभी आपने सोचा आपका कोई विचार है? और मेरे विचार के लिए हम लड़ते हैं और विवाद करते हैं। जब कि हमारा कोई भी विचार नहीं है। किसी का कुरान से लिया होगा, किसी का महावीर से लिया हुआ होगा, किसी का बुद्ध से लिया हुआ होगा, किसी ने कहीं और से लिया होगा।
तो आप यह पूछ सकते हैं मुझसे कि महावीर ने भी फिर विचार किसी और से लिए होंगे? अपने से पहले के तेईस तीर्थंकरों से लिए होंगे?

अभी एक प्रश्न मुझसे पूछा है--कि सब महापुरुष दूसरों के विचारों से प्रेरणा पाते हैं।

यह बिल्कुल झूठ है। महापुरुष पाते होंगे, जिनको हम सामान्यतः ग्रेट मैन कहते हैं, लेकिन सत्पुरुष नहीं पाते। महापुरुष पाते होंगे--स्टैलिन पाता होगा, लेनिन पाता होगा, मार्क्स पाता होगा, नेहरू पाते होंगे; लेकिन महावीर और बुद्ध और क्राइस्ट नहीं पाते। महापुरुष और सत्पुरुष में अंतर है। महावीर और बुद्ध महापुरुष नहीं हैं, सत्पुरुष हैं।
महापुरुष वह है जिसके पास बहुत सी शक्तियां हैं और बहुत संग्रह है अनेक रूपों का, जो सामान्य आदमियों से बहुत ऊंचा है। सत्पुरुष सामान्य आदमियों से ऊंचा नहीं है। सत्पुरुष सामान्य आदमियों और असामान्य आदमियों, दोनों से पृथक है, अलग ही है, वह इन कोटि में नहीं है। यानी आप ऐसा नहीं सोच सकते कि महावीर हमसे बहुत बड़े आदमी हैं। आपसे कोई तौल ही नहीं है महावीर की। महावीर इस अर्थ में आदमी ही नहीं हैं जिस अर्थ में आप आदमी हो। और अगर महावीर आदमी हैं तो आप आदमी नहीं रह जाओगे। आप अलग कोटियां हैं। सत्पुरुष सामान्य लोगों से विशेष पुरुष नहीं है। सत्पुरुष अतिक्रमण कर गया उस सीमा का जहां सामान्य और विशेष पुरुष होते हैं। वह अलग है, उसकी कोटि भिन्न है।
वह कोई सोचता हो महावीर ने अपने पिछले तेईस तीर्थंकरों से प्रेरणा ग्रहण की, तो बिल्कुल गलत सोचता है। महावीर ने तो सारे प्रभाव छोड़ दिए जो

भी बाहर से आए थे, सारे इम्प्रेशंस। उनको ही हम संस्कार कहते हैं। प्रभाव और प्रेरणा संस्कार है, जो दूसरे ने आप पर डाला है। वह बाहर से आया हुआ है, वह आश्रव है। महावीर ने सारे बाहर से आए प्रभाव छोड़ दिए, जब वे निष्प्रभाव हो गए, बाहर का उनके भीतर कुछ भी शेष न रहा, तब उसका जागरण हुआ जो ज्ञान है। ज्ञान मौलिक होता है, विचार सब उधार होते हैं। इसलिए प्रत्येक तीर्थंकर स्वयं पाता है, किसी से उधार नहीं लेता। और प्रत्येक सत्पुरुष स्वयं पाता है, किसी से उधार नहीं लेता। जो उधार लेता है वह महापुरुष हो सकता है, सत्पुरुष नहीं।
वह निष्प्रभाव हो जाने पर, समस्त बाह्य प्रभावों की निर्जरा हो जाने
पर जो शेष रह जाता है और विचारों के आवरणों के हट जाने पर, उन बदलियों के हट जाने पर जो सूरज अंततः शेष रह जाता है, जो बाहर से नहीं आया है, जो निरंतर भीतर था, लेकिन बाहर से जो आ गया था उसके कारण आवृत था, उसका अनुभव ज्ञान है। वह ज्ञान मौलिक है, वह हमेशा मौलिक है। यानी आपको होगा तब मौलिक होगा, किसी दूसरे को होगा तब मौलिक होगा। वह ज्ञान कभी भी उधार नहीं है। यानी वह प्रत्येक को मौलिक होगा। और विचार कभी मौलिक नहीं, वे प्रत्येक को उधार होते हैं। विचार परंपरागत होते हैं, ज्ञान व्यक्तिगत होता है। विचारों से संप्रदाय बनते हैं, ज्ञान से धर्म बनता है।
इसी प्रसंग में मैं जो शास्त्रों के संबंध में आपसे कहा हूं, उसे भी विचार कर लेना। शास्त्र से आया हुआ प्रभाव भी बाहर से आया हुआ प्रभाव है। वह भी आच्छादक है, वह भी आपको छा लेगा। वह भी छा लेगा, इस अर्थ में घातक कहा है। यानी मैं जो, मेरे शब्दों को ख्याल करना, उन्हें गलत मत समझ लेना। वह भी आपको आवृत कर लेगा, इस अर्थ में घातक कहा है। वह भी आपको आच्छादित कर लेगा। वह भी बाहर से आया है; इतना तो स्मरण रखिए कि वह भी बाहर से आ रहा है। कितना ही सदप्रभाव मालूम पड़े, बाहर से आया हुआ प्रभाव आत्मसाधना में घातक है।
मेरे ऊपर आप लोहे का एक कोट मुझे पहना दें, और एक आदमी मुझे सोने का एक कोट पहना दे, और एक आदमी हीरे-जवाहरातों से लदा हुआ कोट मुझे पहना दे, ये तीनों मुझे बांध लेते हैं। बुरे प्रभाव भी मुझे बांध लेते हैं। इसी अर्थ में महावीर कहते हैं, बुरे कर्म भी बांध लेते हैं, शुभ कर्म भी बांध लेते हैं। वही बात, ठीक से समझेंः बुरे विचार भी बांध लेते हैं, शुभ विचार भी बांध लेते हैं। बुरा विचार हो तो आदमी निम्न हो जाता है, शुभ विचार हो तो महापुरुष हो जाता है, और दोनों ही विचार विलीन हो जाएं तो सत्पुरुष हो जाता है। बुरा विचार हो तो बुरा आदमी हो जाएगा; अच्छे विचार हों, अच्छा आदमी हो जाएगा। बुरे आदमी पर बुरा आच्छादन है--समझिए लोहे की दीवाल है उसके प्रिजन की, उसके कारागृह की लोहे की दीवाल है। और भले आदमी का अच्छा आच्छादन है, उसके कारागृह की स्वर्ण की दीवाल है। सत्पुरुष वे हैं जिनकी कोई दीवाल नहीं है--न स्वर्ण की, न लोहे की।
मेरी बात को समझने की कोशिश जरूरी है। और वह इस अर्थ में जरूरी है, इसलिए मैंने घातक कहा। लोहे की दीवाल घातक है, यह तो हमको दिखता है। सोने की दीवाल घातक है, इसे देखने में जरा दिक्कत होती है। सोने से मोह हमारा बहुत है। और इसीलिए मैं कहता हूं कि लोहे की दीवाल से सोने की दीवाल ज्यादा घातक भी हो सकती है। क्योंकि लोहे की दीवाल तोड़ने में हमको दिक्कत न होगी, सोने की दीवाल तोड़ने में बहुत दिक्कत हो सकती है। सोने का भी मोह साथ होगा।
बुरे प्रभाव हमको बुरे दिखाई पड़ते हैं, इसलिए तोड़ने की उत्सुकता भी मालूम होती है। अच्छे प्रभाव अच्छे दिखाई पड़ते हैं, तोड़ने में थोड़ी दिक्कत मालूम पड़ती है। और अगर यह दिक्कत मालूम पड़ती है तो यह और घातक हो गया।
यानी मेरा कुल कहना यह है कि बाहर से जो भी प्रभाव आया है वह आच्छादक है, वह आपके स्वयं सत्य को, स्वयं ज्ञान को रोकेगा, रुकावट डालेगा, उसे प्रकट नहीं होने देगा।
और आप कहेंगे, फिर महावीर और बुद्ध सिखाते क्या रहे होंगे? अगर बाहर
के प्रभाव सब घातक हैं तो महावीर और बुद्ध सिखाते क्या रहे होंगे?

महावीर और बुद्ध यही सिखाते रहे हैं कि बाहर के प्रभाव घातक हैं, उनकी निर्जरा कर देनी है। और हम ऐसे नासमझ हैं कि हम उन्हीं के शास्त्र बना कर, उन्हीं को प्रभाव बना कर अपने ऊपर लादे फिर रहे हैं। बुद्ध ने कहा लोगों से कि मेरी पूजा मत करना, क्योंकि बाहर कोई पूजने जैसा नहीं है। बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं इस जमीन पर, और किसी की मूर्तियां नहीं हैं। और अरबी और उर्दू में जो शब्द हैः बुत, मूर्ति के लिए, वह बुद्ध का अपभ्रंश है। यानी इतनी मूर्तियां हो गईं बुद्ध की कि जब पहली दफा अरब के लोग परिचित हुए, तो लोगों से उन्होंने पूछा, यह क्या है? तो उन्होंने कहा, बुद्ध। तो उनकी भाषा में बुत शब्द जो है वह बुद्ध से आया हुआ है। और बुद्ध ने कहा थाः बाहर कोई भी नहीं है, कोई मूर्ति मत बना कर पूजने लगना। और आज उसी आदमी का वह नाम मूर्ति का पर्यायवाची है।
हम करते क्या हैं? जिन लोगों ने हमें बाहर के प्रभाव से मुक्त करने की कोशिश की है, हमने उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा में उनको ही पकड़ लिया है और उनके ही प्रभाव को ग्रहण कर लिया है।
अगर कोई महावीर को ठीक से समझेगा, तो सबसे तो मुक्त हो ही जाएगा, महावीर से भी मुक्त हो जाएगा। नहीं तो फिर ठीक से समझा नहीं। मेरी बात समझिए। उनकी अनुकंपा समझिए, वे सदगुरु हैं इस जगत में, जो आपको सबसे तो मुक्त कर ही दें, लेकिन अपने से न बांध लें। नहीं तो बंधन शुरू हो गया। अगर महावीर यह कहें कि तुम सब छोड़ दो और मेरी शरण आ जाओ, तो सब नहीं छूटा। महावीर की शरण बाहर है न! कि महावीर की शरण भीतर है? क्या वे चरण भीतर हैं आपके? जो भी चीज पकड़ी जा सकती है, बाहर होगी।
महावीर सदगुरु इस अर्थों में हैं कि वे सारे बाहर से तो आपको मुक्त करते हैं और यह भी स्मरण दिला देते हैं कि उनको मत पकड़ लेना, अन्यथा फिर वही का वही शुरू। मेरा कहना है कि सदगुरु वह है जो सबसे तो आपको छुड़ा दे और अपने से भी न बांधे, अपने से भी न बांधे। असदगुरु वह है जो सबसे तो छुड़ाए और अपने चरणों को पकड़ने के लिए कहे कि ये पकड़ लो। वह असदगुरु है।
यह जो मैं कह रहा हूं इसलिए कह रहा हूं कि आपको जो शुभ प्रभाव मालूम होते हैं, मैं उनको अशुभ नहीं कह रहा, घातक कह रहा हूं। अशुभ प्रभाव अलग हैं, शुभ प्रभाव अलग हैं, लेकिन दोनों घातक हैं। और घातक इस अर्थ में हैं कि वे आच्छादक हैं, वे आपको बाहर से रोकते हैं। उनके प्रति अपरिग्रह चाहिए। विचार के जगत में विचारों के प्रति अपरिग्रह रखिए। कितना ही प्रीतिकर और कितना ही शुभ विचार मालूम पड़े, जानिए कि मेरा नहीं है। इसे स्मरणपूर्वक जानिए कि मेरा नहीं है। तो जब चित्त शांत करने में आप जाने लगेंगे, तो वह जो पराया विचार है उसका छूटना आसान होगा, क्योंकि हम उसे पकड़े हुए नहीं होंगे। अन्यथा हम एक तरफ सोचते हैं कि विचार शांत हो जाएं और दूसरी तरफ शुभ विचारों को पकड़े रखते हैं, तो फिर बहुत मुश्किल है। फिर कैसे संभव होगा? वे शांत कैसे होंगे? जब उनको हम समझते हैं कि वे बड़े महान हैं, और बड़े ऊंचे हैं, और जरूरी हैं, और बड़े कीमती हैं, तो उन कीमती चीजों को छोड़ना संभव कैसे होगा? इसके पहले कि कोई हीरे-जवाहरातों को मुट्ठी से नीचे फेंक दे, यह जान लेना जरूरी है कि वे हीरे-जवाहरात नहीं, कंकड़-पत्थर हैं। नहीं तो फेंक नहीं सकेगा, मुट्ठी खोलेगा और फिर बांध लेगा।
तो आपको मैं इसलिए कह रहा हूं कि विचार को समझें कि उधार है। कितने ही श्रेष्ठ पुरुष से आया हो, आपका नहीं है, इसे स्मरण रखें! और स्मरण रखें कि बाहर से आया है, वह आश्रव है। फिर उस आश्रव को निर्जरा कर देने के पूर्व, निर्जरा तो ध्यान से होगी, लेकिन यह भाव अपरिग्रह का सहयोगी होगा। तो विचार के तल पर पहली चीज हैः विचार के प्रति अपरिग्रह भाव।
दूसरा सूत्र हैः विचार के प्रति अपरिग्रह भाव जो हमारे भीतर है, जो हमारे भीतर आ गया उसके प्रति अपरिग्रह, जो अभी हमारे भीतर आया नहीं लेकिन बाहर है उसके प्रति तटस्थता।
दो विचार आपके सामने खड़े हैं, उनके प्रति तटस्थता। उनमें से किसी का
भी चुनाव नहीं, उनमें से किसी भी विकल्प को पकड़ लेना नहीं।
कोई जैन धर्म को पकड़े हुए है, कोई इस्लाम को पकड़े हुए है, कोई ईसाइयत
को पकड़े हुए है। जो ईसाइयत को पकड़े हुए है, वह जैन ग्रंथ या जैन शब्द या जैन

विचार को सुनते ही, सुन भी नहीं सकता, तटस्थ नहीं है। पकड़े हुए है एक को पहले से, उसके प्रति पक्षपातग्रस्त है, वह उसकी प्रिज्युडिस है। दूसरे विचार को सुन भी नहीं सकता, समझ भी नहीं सकता। हम इतने प्रिज्युडिस्ड हैं, हम इतने पक्षपात से घिरे हैं कि हम दूसरे विचार को सुन भी नहीं पाते हैं। समझ तो दूर की बात है, सुन नहीं पाते हैं। सुनते ही, हमारा जो पक्षपात है, खड़ा हो जाता है बीच में।
अभी सुबह मैं किसी मित्र से बात करता था। उनसे मैं बात कर रहा हूं, लेकिन वे मेरी बात नहीं सुन रहे हैं। मैं बात समाप्त किया, उन्होंने दूसरा प्रश्न शुरू कर दिया, जिसका पहले प्रश्न से कोई संबंध न था। तो मैंने उनको कहा, जब मैं बात करता था तब आप यह सोचते रहे होंगे जो आप बोल रहे हैं।
वे बोले, हां, यह मैं सोच रहा था।
तो अगर आप यह सोच रहे थे तो मुझे सुन कैसे रहे होंगे? सुनना और सोचना साथ नहीं हो सकता।
लेकिन हम सब सुन रहे हैं, साथ सोच रहे हैं। वह जो सोचना है, वह हमारी तटस्थता का अभाव है। अगर आप महावीर के सामने भी मौजूद हों, उनको भी आप नहीं सुन पाएंगे। क्योंकि आप सोचेंगे। महावीर ने उसको श्रावक कहा है, जो सुनते वक्त सोचता नहीं, सिर्फ सुनता है, वह श्रावक है। आप श्रोता हो सकते हैं, श्रावक नहीं हैं। और सत्य को जानने के लिए श्रावक होने की जरूरत है। श्रावक होने का मतलब हैः तटस्थ है व्यक्ति, कोई पक्षपात नहीं है, सुन रहा है। सुनते समय न विरोध है उसके मन में, न स्वीकार है। स्वीकार से भी पक्ष आ जाएगा, विरोध से भी पक्ष आ जाएगा। न स्वीकार है, न विरोध है। सिर्फ सुन रहा है, सिर्फ समझ रहा है।
अगर इतनी क्षमता आप पैदा करें विचार के तल पर, तो आप हैरान होंगे, सारी दुनिया सांप्रदायिकता से मुक्त हो जाए और सारी दुनिया धर्म से भर जाए। अगर विचार के तल पर तटस्थता हो, इस दुनिया में विचार के तल पर विवाद बंद हो जाएं, संवाद शुरू हो जाएं। विवाद और संवाद में यही फर्क है। अगर आप तटस्थ नहीं हैं तो विचार विवाद लाएगा और अगर आप तटस्थ हैं तो विचार संवाद लाएगा। अभी मैं सुबह एक घटना सुनाता था। जुंग एक मनोवैज्ञानिक हैं। वे कुछ पागलों का अध्ययन करते थे। दो पागलों को उन्होंने अपने घर में ठहराया हुआ था। वे दोनों पढ़े-लिखे विद्वान थे, दोनों किन्हीं कालेजों में अध्यापक थे। वे उनका अध्ययन करते थे। एक दिन सुबह उन्होंने देखा, वे दोनों अपने कमरे में बैठे हैं और बड़ी चर्चा में मशगूल, बड़ी चर्चा में संलग्न हैं। जुंग पीछे खिड़की से सुनता रहा कि वे क्या बातें कर रहे हैं? बहुत हैरान हुआ, वे बातें ऐसी कर रहे थे जिनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं था! एक कुछ कह रहा था, दूसरा बिल्कुल दूसरे छोर की कुछ कह रहा था। उनमें कोई किसी तरह का संबंध, किसी तरह का संबंध नहीं था। लेकिन एक बात और उसने हैरानी की देखी... यह तो ठीक ही था, पागल थे, यह तो ठीक ही था कि इस तरह बात करें, लेकिन एक और अजीब बात देखी जिससे वह हैरान हुआ--जब एक बोलता था तो दूसरा चुप रहता था। जब एक बोलता, दूसरा बिल्कुल चुप होकर सुनता। जब वह बंद हो जाता तो दूसरा बात शुरू करता, लेकिन बात का कोई संबंध उसकी बात से होता ही नहीं! तो जुंग ने कहा, पागल हैं, अनर्गल बात कर रहे हैं, यह तो ठीक है, लेकिन
यह चुप रहना बड़ी होशियारी की बात है! वह अंदर गया और उसने पूछा कि हम एक बात पूछना चाहते हैं। आप बिल्कुल अनर्गल बातें कर रहे हैं, लेकिन जब एक बोलता है, दूसरा चुप क्यों रहता है?
वे बोले, हमें कॉनवर्सेशन का नियम मालूम है कि जब एक बोले, दूसरा चुप रहे; जब वह बंद हो जाए तब शुरू करे--यह हमको बिल्कुल मालूम है।
आप सोचते हैं आप जो करते हैं वह भी इस कॉनवर्सेशन से भिन्न है? जब एक बोलता है तब आप केवल कॉनवर्सेशन के नियम की वजह से--कि जब एक बोले, दूसरे का बोलना ठीक नहीं--आप चुप बैठे रहते हैं। लेकिन आप चुप नहीं बैठे रहते, आप उस वक्त तैयारी में हैं जो आप बोलेंगे, वह जब समाप्त करेगा तो आप बोलना शुरू करेंगे। जब वह बोल रहा है तब आप तैयारी कर रहे हैं बोलने की, सुन नहीं रहे हैं। एकदम पागल नहीं हैं, इसलिए जब वह बोलना समाप्त करेगा तो आप अनर्गल नहीं बोलेंगे, उसके बोलने के अंतिम हिस्से में से कोई बात पकड़ कर और उसके

निमित्त को लेकर जो आपने तैयार किया है उसको बोलना शुरू कर देंगे। तब आप में और पागल में फर्क है। कोई एक बात उसमें से पकड़ लेंगे खूंटी की तरह, आधार हो जाएगी वह, ताकि संबंध मालूम पड़े, बाकी हमारी बातचीत में कोई संबंध नहीं है। संबंध हो नहीं सकता।
यह कॉनवर्सेशन है, कम्युनिकेशन नहीं है। यह विवाद है, संवाद नहीं है। संवाद तब होता है जब विचार के प्रति, अपने संगृहीत विचार के प्रति अपरिग्रह होता है और जब सामने उपस्थित विचार के प्रति तटस्थता, न्यूट्रलिटी होती। कोई पक्षपात नहीं है आपको, आप पूर्व से निर्णीत नहीं हैं कि यह जो कह रहा है गलत है या यह जो कह रहा है सही ही है।
एक आस्तिक के सामने कहो--ईश्वर नहीं है। बस, वह इसको सुन थोड़े ही सकेगा। ईश्वर नहीं है, यह सुनते से ही वह उद्विग्न हो जाएगा, अशांत हो जाएगा और तैयारी करेगा कि क्या करूं कि सिद्ध कर दूं कि ईश्वर है! एक नास्तिक से कहो--ईश्वर है। वह सुन नहीं सकेगा। यह शब्द उसके कान में पड़ा कि वह तैयारी में लग गया कि मैं सिद्ध कैसे कर दूं कि ईश्वर नहीं है! वे दोनों सुन नहीं रहे हैं। वे दोनों बहरे हैं। और जो विचार के तल पर बहरा है वह दुनिया में बड़ा अविचार पैदा करवा देता है।
हम सारी दुनिया में जो अविचार से भरे हुए हैं, वह विचार के तल पर बहरे होने की वजह से। बिल्कुल बहरे हैं, किसी को नहीं सुन रहे। कुछ नहीं समझेंगे, क्योंकि हम एक पक्ष को पकड़े हुए बैठे हैं। आप देखेंगे तो अनुभव करेंगे, अपने में देखेंगे तो अनुभव करेंगे। आपने शायद ही जिंदगी में किसी को सुना हो। यह भ्रम रहा होगा कि हम बहुत सुने हैं, इसको सुने हैं, उसको सुने हैं। शायद ही आपने किसी को सुना हो। सुनने के लिए एक तटस्थता का भाव जरूरी है कि जब आप सुन रहे हैं तब आप बिल्कुल तटस्थ हैं। जैसे कोई मतलब नहीं, आपका कोई पक्ष नहीं, कोई प्रिज्युडिस नहीं।
तो पहली बात, अपरिग्रह। अपरिग्रह आप घना करेंगे तो दूसरी बात अपने आप पैदा होनी शुरू होगी--तटस्थता। तटस्थता को अगर स्वीकार करेंगे और उसे घना करेंगे तो क्या परिणाम होगा? एक अंतर्दृष्टि आपमें उत्पन्न होनी शुरू होगी, जिसमें आपको दिखाई पड़ेगा कि क्या सही है और क्या गलत है। तीसरी बात है--एक हुआ अपरिग्रह, दूसरा तत्व हुआ तटस्थता और तीसरा तत्व है-- स्वतंत्रता।
स्वतंत्रता का मतलब यह है कि जब तक मेरा ज्ञान उत्पन्न नहीं हो जाता,
तब तक मैं किसी विचार-घेरे में परतंत्र नहीं बनूंगा। वह विचार-घेरा किसी का भी क्यों न हो! वह मेरा हो या किसी और का हो, जब तक मैं अपने ज्ञान को उत्पन्न नहीं हो जाता, मुझे किसी विचार-घेरे को पकड़ लेना घातक है। किसी पैटर्न में बंध जाना अपने हाथ से एक दीवाल खड़ी कर लेनी है। तो मैं किसी विचार-घेरे में नहीं बंधूंगा। सब विचारों को जानूंगा, समझूंगा, तटस्थता से सुनूंगा, उनके आ जाने पर भी मेरे चित्त में अपरिग्रह का भाव रखूंगा, लेकिन किसी विचार-घेरे का परतंत्र नहीं बनूंगा।
इस जगत में इससे बड़ी गुलामी कोई भी नहीं है जिसको हम दिमागी गुलामी कह सकते हैं, मेंटल इम्प्रिजनमेंट है। और हम सब किसी न किसी कारागृह के शिकार हैं और किसी न किसी कारागृह के कैदी हैं। और दुनिया में बहुत से कारागृह हैं और उनमें अनेक अपने-अपने हिसाब से कोई कहीं बंट जाता है--कोई जन्म से, कोई परंपरा से, कोई शिक्षण से--और हम एक-एक जेल में बंद हो जाते हैं। यह जमीन बहुत सी जेलों में बंटी है, दिमागी जेलों में, जिनमें हम सब बंद हैं और जिनके बीच कोई संबंध नहीं रह गया। यह घातक है परतंत्रता। परतंत्रता का मतलब हैः पर के विचारों को ऐसा अंगीकार कर लेना जैसे वे स्व के हैं। एक स्वतंत्रता बनी रहे आपके चित्त में और यह स्मरण रहे कि मेरा ज्ञान ही केवल मेरा आकाश बनेगा। और कोई भी विचार, श्रेष्ठतम विचार भी मेरा पैटर्न न बन जाए, मेरे दिमाग का ढांचा न बन जाए।
अभी हमारी जो शिक्षा है, हमारी जो दीक्षा है, वह मनुष्य को स्वतंत्रता नहीं सिखाती। वह स्वतंत्रता नहीं सिखाती, वह कनफॉर्मेशन सिखाती है। वह सिखाती हैः कनफॉर्म करो परंपरा को, मां-बाप को, इनको, उनको, ये जो कहते हैं इनके साथ बिल्कुल इनका अनुगमन करो। वह अनुगमन सिखाती है, स्वतंत्रता नहीं

सिखाती। और यह कारण है कि मनुष्य के भीतर बचपन से हम बच्चे के दिमाग को एक ढांचे में ढालना शुरू कर देते हैं कि कहीं वह स्वतंत्र न हो जाए, कहीं वह उस घेरे से मुक्त न हो जाए जिस घेरे के हम कैदी रहे हैं, कहीं वह उन दीवालों को न तोड़ दे जिनमें हम थे। सारा समाज यह कोशिश करता है कि कोई स्वतंत्र न हो जाए। यानी पूरी शिक्षा और दीक्षा ऐसी है कि आदमी परतंत्र हो। और जो जितना ज्यादा परतंत्र होगा विचार के तल पर वह उतना ही समाज के लिए कम खतरनाक होगा। समाज के लिए बिल्कुल खतरनाक नहीं होगा।
मशीनें खतरनाक नहीं होतीं। मशीनों में एक बड़ी सुविधा है--न वे विचार करती हैं, न वे स्वतंत्र होती हैं, जैसा कहिए वैसा करती हैं। और आदमी जितना मशीन की तरह हो जाए, समाज उसको बड़ा आदर देगा। समाज की इच्छा हैः हर आदमी मशीन हो जाए। सारे राष्ट्रों की, सारी स्टेट्स की, सारी हुकूमतों की इच्छा हैः आदमी मशीन की तरह हो जाए। हम जैसा कहें वैसा कर दे। पंखे से कहें, चलो, वह चलता है; फिर बंद कर देते हैं, बंद हो जाता है। बटन दबाने पर पंखा यह नहीं कहता कि अभी हमारे चलने के इरादे हैं, अब हम चलेंगे। मशीन बड़ी सुविधाजनक है। समाज, समस्त समाजों की, समस्त संगठनों की, समस्त आर्गनाइजेशंस की, समस्त हुकूमतों की यह इच्छा है कि आदमी बिल्कुल मशीन हो, उसमें स्वतंत्रता न हो, वह सोच न सके। सोचना घातक है, खतरनाक है। हो सकता है सोच कर वह कुछ ऐसी बात कहे जो कि बंधे पैटर्न में, बंधी व्यवस्था में उपद्रव खड़ा कर दे।
दुनिया का कोई भी विचारक, जिसने अपनी अनुभूति से ज्ञान को उत्पन्न किया हो, खतरनाक हो जाता है। आप सोचते हैं महावीर खतरनाक नहीं थे? आप सोचते हैं बुद्ध खतरनाक नहीं थे? आप सोचते हैं क्राइस्ट खतरनाक नहीं थे? आप सोचते हैं सुकरात खतरनाक नहीं थे?
अगर ये खतरनाक नहीं होते तो ये सत्य को जान नहीं सकते थे। वह स्वतंत्रता इनको खतरे में ले गई और समाज के विरोध में ले गई।
महावीर को मारा जा रहा है, पीटा जा रहा है, कान में कीलें ठोंकी जा रही हैं। आपके कान में कोई कील ठोंकेगा? आप तो रोज मंदिर जाते हैं, रोज भगवान के दर्शन करते हैं, कौन कान में कील ठोंकेगा? आप तो कोई ऐसी बात ही नहीं करते जिसमें कोई कान में कील ठोंके। आप तो बिल्कुल कनफॉर्म करते हैं। आप तो आदमी कम हैं, मशीन ज्यादा हैं। जो सिखा दिया, वैसा करते हैं।
अगर महावीर भी वैसा ही करते तो कोई कान में कील ठोंकता? अरे लोग जुलूस निकालते, लोग पालकी पर बिठाते, महावीर की जय-जयकार करते, कोई स्मृति-ग्रंथ भेंट करते, प्रधानमंत्री से कोई स्मृति-ग्रंथ भेंट करवाते। कोई महावीर के कान में कील ठोंकता? कोई सुकरात को जहर देता? या कोई ईसा को सूली पर लटकाता?
यह स्वतंत्रता का परिणाम था। क्योंकि उन्हें सत्य का अनुभव हुआ और सत्य हमेशा उस टूटी-फूटी जर्जर समाज-व्यवस्था के विपरीत में पड़ जाता है जिसको हम ढो रहे हैं, जिसको हम खींच रहे हैं। उस मरी हुई जर्जर व्यवस्था के विपरीत में सत्य पड़ जाता है। सत्य के विपरीत में सत्य नहीं पड़ता। अगर मैं सत्य कहूंगा, वह महावीर के विपरीत नहीं है, आपके विपरीत पड़ सकता है। सत्य कभी भी किसी सत्य के विपरीत में नहीं है। लेकिन जो समाज के ढांचे हैं उनके विपरीत में पड़ जाता है।
तो जिसको सत्य को अनुभव करना हो, उसे समाज से मुक्त हो जाना जरूरी है। समाज से मुक्त होने का एक थोथा अर्थ लोगों ने ले लिया कि घर छोड़ कर जंगल चले जाओ। उससे आप क्या समाज से मुक्त होओगे? जो घर छोड़ कर जंगल में चला गया है वह समाज से अभी भी बंधा हुआ है। वह वही शास्त्र याद कर रहा है जंगल में बैठ कर जो समाज ने उसको सिखाए थे। और वही पूजा और क्रियाकांड कर रहा है जो समाज ने उसे सिखाए थे। वह समाज से भाग गया है, लेकिन समाज की जो दिमागी गुलामी है वह उसके साथ जंगल में बनी रहेगी, वह वही कर रहा है।
समाज से मुक्त होने का मतलब हैः समाज ने जो पैटर्न आपको दिया है, आप उसको अंगीकार न कर लें। यह आत्मा का अपमान है। यह अपनी आत्मा का अपमान है कि मैं दूसरे के ढांचे को अंगीकार कर लूं और उस ढांचे में बंद हो जाऊं। मुझे स्वतंत्रता कायम रखनी चाहिए कम से कम विचार के तल पर तो। वहां तो कोई

बाधा नहीं है। यह ठीक है कि आप कपड़े पहनते हैं, मैं कपड़े पहनता हूं और अगर कपड़े न पहनूं और नंगा घूमूं तो अशोभन होगा और आपको दिक्कत होगी, क्योंकि मेरा नंगा घूमना बाहर के तल पर एक असुविधा लाएगा। लेकिन कम से कम आंतरिक तल पर, वहां तो मैं आपको कोई असुविधा नहीं दे रहा। वहां तो कम से कम मैं किसी ढांचे को अंगीकार न करूं, वहां तो मैं स्वतंत्र जीवन-ज्योति को कायम करने की कोशिश करूं। स्वतंत्रता ही और स्वतंत्र साधना ही अंततः व्यक्ति को सत्य के करीब ले जाती है। परतंत्रता सत्य के करीब नहीं ले जा सकती है। तो तीसरा मैं विचार के तल पर आपको कहता हूंः स्वतंत्र भावना।
अपरिग्रह, तटस्थता और स्वतंत्र बोध, अगर ये तीन बातें विचार के तल पर हों, फिर आप शास्त्र पढ़िए, मुझे कोई दिक्कत नहीं, मुझे कोई इनकार नहीं है। मुझसे लोग पूछते हैं बार-बार कि हम शास्त्र न पढ़ें? मुझसे आज कोई पूछा
कि आप तो पढ़ लेते हैं, हमको क्यों कहते हैं कि मत पढ़ें?
मैंने उनको कहा, वे ठीक कह रहे हैं। एक तैराक नदी में तैरता हो और आपसे कहे कि कूद मत पड़ना, तो आप कहते हैं कि तुम कूदे चले जा रहे हो और मुझसे कहते हैं कूद मत पड़ना! तो वह इतना ही कहेगा, अगर तैरना सीख गए हैं तो कूद आएं और नहीं सीखे हैं तो थोड़ा रुक जाएं।
यानी सवाल यह नहीं है कि आप तैरें या न तैरें। सवाल यह है कि तैरना आता है? ये तीन तत्व हैं विचार के तल पर, अगर आते हों तो शास्त्रों में तैर जाइए। कोई शास्त्र आपको नुकसान नहीं पहुंचा सकेंगे, वे शास्त्र सब आपके लिए सहयोगी हो जाएंगे। और अगर ये तीन तत्व नहीं आते, तो कृपा करके रुकिए। फिर अभी योग्यता नहीं कि शास्त्र में प्रवेश कर जाएं। अगर आप विचार-अपरिग्रह को रख सकते हैं, तो किसी का विचार आपको नुकसान नहीं पहुंचा सकता। अगर आप तटस्थ रह सकते हैं, तो कोई संप्रदाय, कोई परंपरा आपकी प्रिज्युडिस, पक्षपात नहीं बन सकती। और अगर आप स्वतंत्र रह सकते हैं, तो कोई विचार का ढांचा आपको गुलामी, दिमागी गुलामी नहीं दे सकता।
अगर ये तीन बातें आपके भीतर हों तो शास्त्र आपको नुकसान नहीं पहुंचा सकता। सत्य तो शास्त्र से नहीं मिलेगा, लेकिन अगर ये तीन बातें आपके भीतर हों तो शास्त्र घातक नहीं होगा। वह घातकता मैंने कही न आच्छादन है, तो अगर ये तीन बातें आपके भीतर हैं तो शास्त्र आच्छादक नहीं हो सकता। तो शास्त्र के अध्ययन के पूर्व एक साधना से गुजरना जरूरी है तब शास्त्र अर्थ का हो सकता है, उसके पहले बेमानी है।
तो अगर यह बात आपको समझ में पड़े और मैं आपको कहूं कि महावीर या बुद्ध
के पास जो लोग जाते थे, आपको पता है वे शास्त्र पढ़ने को कहते थे? कोई एकाध उल्लेख है कि महावीर के पास लोग गए हों और उन्होंने कहा हो कि जाओ शास्त्रों का अध्ययन करो? कोई है आपकी स्मृति में कोई उल्लेख कि जहां महावीर ने शिक्षा दी हो कि शास्त्रों का अध्ययन करो और पहले तत्वज्ञान रट कर आओ तब कुछ होगा? या कि बुद्ध का, या कि क्राइस्ट का, किसी का भी! क्राइस्ट का तो स्पष्ट उल्लेख है कि शास्त्रों से सावधान! क्योंकि शैतान भी शास्त्र उद्धृत कर सकता है।
यानी सवाल यह है, शैतान भी शास्त्र उद्धृत कर सकता है। बल्कि सच तो यह है, अक्सर शैतान ही शास्त्र उद्धृत करता है, अक्सर! क्योंकि जहां आप कमजोर होते हैं वहीं आप शास्त्र का उद्धरण करते हैं। और जहां आप कुछ नहीं समझते वहां तत्काल शास्त्र का उद्धरण शुरू हो जाता है। जितना अज्ञान उतना शास्त्र का उद्धरण। उतना ही रामायण की चौपाइयां दोहराने वाला आदमी मिल जाएगा आपको। उसे खुद कुछ समझ में नहीं आ रहा, वह रटी हुई तोते की तरह बातें दोहरा देगा।
यह जो मैं कह रहा हूं, शास्त्र घातक नहीं होगा, अगर ये तीन तत्व आपके विचार के तल पर हैं। और अगर ये तीन तत्व आपके विचार के तल पर हैं, तो आप शून्य ध्यान में प्रवेश करने की योग्यता को उपलब्ध हो जाएंगे।
यूं मैंने तीन वर्गों में नौ बातें कहीं। एक शरीर के तल परः सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा--शरीर के तल पर। भाव के तल परः समस्त जगत के प्रति मैत्री भाव, कर्मों के प्रति अनासक्ति भाव और संवेदनाओं के प्रति समता का भाव। और विचार के तल परः तटस्थता, अपरिग्रह और स्वतंत्रता।

अगर ये नौ बातें आपके स्मरण में हैं, तो इन नौ से वह भूमिका बनेगी, वह अदभुत भूमिका बनेगी कि जिस तीन ध्यान की मैं बात कर रहा हूं, अगर इस भूमिका के साथ संयुक्त होकर आपने उनका प्रयोग किया, तो कोई भी वजह नहीं है, कोई भी कारण नहीं है कि सत्य आपको उपलब्ध न हो जाए।
पूछा है किसी ने कि मीरा और कबीर कहते हैं कि बड़ा कठिन है, बड़ा मुश्किल
है और भगवान मिलता नहीं है, रोते हैं, तड़पते हैं। तो तुमने पूछा कि हम लोग तो मीरा और कबीर जैसे भी नहीं हैं। वे रोते हैं, तड़पते हैं, खोजते हैं और फिर कहते हैं, भगवान मिलता नहीं और बड़ा मुश्किल है। तो हमको कैसे मिलेगा? स्वाभाविक है! स्वाभाविक है कि हम पूछें कि कबीर और मीरा जैसे लोग रो-
रो कर कहते हैं कि भगवान मिलता नहीं और बड़ा कठिन है, बड़ा दुर्गम है और बड़ी खड्ग की धार पर चलना है। तो हम सीधे-सादे लोग, हमको कैसे मिल जाएगा?
यह प्रश्न उपयोगी हो सकता है, अगर यह केवल एक एस्केप न हो। अगर यह केवल
एक बचाव न हो मीरा और कबीर का नाम लेकर अपने को बचा लेने का--कि जब मीरा और कबीर को नहीं मिलता तो हमको क्या मिलेगा? इसलिए मिलने की कोशिश क्यों करें?
तो पहली तो बात मैं आपसे कहूं कि मीरा और कबीर आपसे बहुत भिन्न नहीं हैं। इस भ्रम में कभी मत पड़ना कि वे भिन्न हैं। कुछ भी भिन्न नहीं हैं। क्या भिन्नता है? और यह भ्रम आप क्यों स्वीकार करते हैं कि कबीर और मीरा से आप बहुत नीचे हैं और कहीं ऊंचे हैं?
जगत में दो ही तरह के लोग हैंः एक जो जानते हैं और एक जो नहीं जानते। तीसरी तरह के कोई लोग नहीं हैं। और जो नहीं जानते उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं, नहीं जानने के मामले में। दुनिया में दो ही तरह के लोग हैंः जो जानते हैं और जो नहीं जानते। जो नहीं जानते वे नहीं जानने के तल पर सब समान हैं। हां, यह हो सकता है कि आप मीरा जैसा गीत न गा सकते हों। तो गीत न गाने से भगवान के मिलने का कौन सा वास्ता है? यह हो सकता है कि आप कबीर की तरह बुद्धिमान न हों। लेकिन बुद्धिमत्ता से भगवान के मिलने का कौन सा वास्ता है? भगवान से मिलने की जो क्षमता है वह प्रत्येक व्यक्ति में समान है। उसमें कोई मीरा और कबीर और आपमें कोई भेद नहीं है।
भेद कहां शुरू होता है?
जो मैंने कल आपसे कहा--वह प्यास का भेद है। क्षमता में भेद नहीं है, वह भेद प्यास का है। वह प्यास आपमें गहरी हो जाए, आप मीरा हो जाओगे, आप कबीर हो जाओगे।
और अगर किसी को कठिन लगता हो कि सत्य को पाना बहुत कठिन है, तो कई बातें विचारणीय हो जाती हैं।
इस मकान पर ताला लगा हो, मैं आऊं और हथौड़े से ताले को तोडूं, और ताला न टूटे तो मैं फिर चिल्ला कर लोगों से कहूं कि बड़ा मुश्किल है इस घर में प्रवेश, यह ताला तो खुलता नहीं। तो प्रवेश मुश्किल है या कि मैं ताला खोलना नहीं जान रहा हूं? और हो सकता है हथौड़े से ठोंकने की वजह से, बाद में चाबी भी मिल जाए तो वह काम न करे। और तब मैं कहूं कि चाबी भी मिल गई तब भी बहुत मुश्किल है।
हममें से अधिक लोग सत्य के दरवाजे पर ताले के साथ गलत व्यवहार करते हैं। और तब सारी गड़बड़ शुरू हो जाती है। तब सारी गड़बड़ शुरू हो जाती है। कोई सत्य को मान रहा है कि वह पति है, कोई सत्य को मान रहा है कि वह पिता है, कोई सत्य को मान रहा है कि वह मां है, कोई सत्य को मान रहा है कि वह बाप है। जो संबंध हमारे परिवार के हैं वे हम सत्य और परमात्मा पर लागू कर रहे हैं और उनकी तलाश में चले जा रहे हैं। वही रिलेशनशिप, वही संबंध जो हमारे लोगों से हैं, हम परमात्मा पर भी आरोपित कर रहे हैं और उनकी तलाश कर रहे हैं। परमात्मा को पाना हो तो असंग होना पड़ता है, सारा संग का भाव छोड़ देना होता है। अब ताले पर आप हथौड़ा ठोंक रहे हैं। पति की तलाश है मीरा को। वह परमात्मा जो है पति-रूप है। वह उनकी तलाश में है। यह मीरा की कल्पना है। भगवान पति-रूप नहीं हो सकते। भगवान से कोई संबंध हमारा नहीं हो सकता, क्योंकि भगवान से अगर हमारा संबंध हो जाए तो वे संसार के हिस्से हो जाएं। भगवान को हम उस समय उपलब्ध होते हैं जब हमारे मन में सारे संबंधों का भाव

विलीन हो जाता है। जब हम असंग हो जाते हैं तो हम भगवान को उपलब्ध होते हैं। असंगता में भगवान उपलब्ध होते हैं, संबंधों की कल्पना में भगवान उपलब्ध नहीं होते।
तो मीरा के भजन तो बहुत बढ़िया हैं, कौन उनको मना करेगा? लेकिन मैं आपको सलाह नहीं दे सकता कि आप अगर पति-रूप भगवान की खोज में निकल जाएं और वह न मिलें तो आप समझें कि उनका मिलना कठिन है। आप अपनी भूल में हैं। आप ताले को व्यर्थ ठोंक रहे हैं। आपके भीतर इच्छाएं काम कर रही हैं भगवान को पाने में भी, आप इच्छा को ही प्रबल बना रहे हैं, जब कि वह इच्छाशून्यता पर उपलब्ध होगा। तो अब आप उलटे चले गए, इसमें कोई क्या करेगा? तो अगर मीरा को लगे कि बड़ा कठिन है, तो इसमें कोई गलती भगवान की नहीं है और न भगवान को पाने के रास्ते की है। गलती होगी तो मीरा की होगी।
यानी मेरा कहना है कि भगवान अकेली चीज है जो इस जगत में सबसे सरल है उपलब्ध करना। क्योंकि हम कहते हैं कि वह हमारा स्वरूप है। इस जगत में किसी भी चीज को पाना कठिन हो सकता है, भगवान को पाना कठिन नहीं हो सकता। और आज तक इस जमीन पर जगत में किसी ने भी जगत की तो कोई चीज आज तक नहीं पाई है। आज तक नहीं पाई है। अगर किन्हीं ने पाया है तो भगवान को ही पाया है।
आप जानते हैं आपने जगत में कौन सी चीज पा ली है? कुछ पा लिया है? आज तक पूरे मनुष्य के इतिहास में कोई मनुष्य जगत में कोई चीज नहीं पा सका है। जगत को पाना असंभव है।
असल में पर को पाना असंभव है, उसे पाया नहीं जा सकता। आप भ्रम में हो सकते हैं पाने के, लेकिन पाया नहीं जा सकता। और आपका भ्रम मौत तोड़ देती है कि नहीं पाया था। जिन प्रियजनों को आपने पाया था, मौत भ्रम तोड़ देती है कि नहीं पाया था। जिस धन को पाया था, मौत भ्रम तोड़ देती है कि नहीं पाया था। जिस राज्य को पा लिया था सिकंदरों ने या नेपोलियनों ने, मौत ने पता बता दिया कि कुछ नहीं पाया। आप ख्याल में थे, आप भ्रम में थे कि पाया, मौत झटक देती है। जिसे मौत छीन लेती है वह पाना क्या है? वह पाना बिल्कुल नहीं हो सकता। वह आप धोखे में थे। मौत परीक्षक है। यानी मौत परीक्षा है कि आपने कुछ पाया कि नहीं पाया? जिसे मौत छीन लेती है वह आपने नहीं पाया। आप भ्रम में थे। जिसे मौत न छीन सके वह आपने पाया।
तो मैं आपको कहूं, संसार को पाना असंभव है। कठिन ही नहीं, असंभव। और भगवान को पाना बिल्कुल संभव है और एकदम सरल है, कठिन बिल्कुल नहीं। और आज तक जब भी किसी ने पाया है तो सिर्फ भगवान को पाया है। और कुछ पाने जैसा है ही नहीं। पाया ही नहीं जा सकता।
पर अब उसकी, उसकी चाबी की बात है कुल। और अगर जो प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं अगर उसको ठीक से समझें, तो आप हैरान होंगे, वह पाया जा सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। उसमें बिल्कुल भी कठिनाई नहीं है।
इस भ्रम को दिमाग से अलग कर दें कि वह कठिन है, कठिन है। यह तरकीब है हमारी। यह हम बचना चाहते हैं। यह हम बचना चाहते हैं, हम पाना नहीं चाहते हैं। हम सोचते हैं बड़ा कठिन है, इसलिए छोड़ देते हैं। और भी एक बात है कि साधु--तथाकथित साधु और पंडित--ये बहुत दोहराते हैं कि वह बहुत कठिन है। इस दोहराने में भी अर्थ है। अर्थ यह है कि अगर साधु और पंडित यह कहें कि वह बिल्कुल सरल है, तो आप साधु और पंडितों को आदर देना बंद कर देंगे। बिल्कुल बंद कर देंगे, कि अगर बात ही सरल है तो फिर क्या है? आप आदर जो दे रहे हैं उनको जिनको परमात्मा उपलब्ध हो जाता है, उनको आप आदर इसलिए दे रहे हैं कि बड़ी दुर्गम चढ़ाई उन्होंने चढ़ी, एवरेस्ट पर चढ़ गए हैं। और हम जमीन पर खड़े हुए हैं।
एक साधु था तिब्बत में, वह नब्बे वर्ष का होकर मरा। जीवन भर उसके पास सैकड़ों लोगों ने आकर कहा कि आप हमें अपना शिष्य बना लें। वह कहता, बना तो लूं, लेकिन आप अभी अपात्र हैं, आप पात्र नहीं हैं। ऐसा सैकड़ों लोग आए और उसने सभी को अपात्र कहा। उसके अपात्र कहने के कारण से और लोग उत्सुक उसमें हो गए थे। वह अदभुत था वैसे, बहुत शांत प्रतीत होता, बहुत आनंद को उपलब्ध प्रतीत होता। तो लोग आते उसको खोजते उसके पहाड़ की चोटी पर और उससे कहते, शिष्य बना लें। वह कहता, बना तो लूं, लेकिन अभी आप अपात्र हैं, कोई पात्र आए

तो बनाऊं। जिंदगी में कोई पात्र नहीं आया, क्योंकि पात्र उसने किसी को माना नहीं।
मरने के तीन दिन पहले, उसके पास एक युवक ठहरा हुआ था आकर, उससे उसने कहा कि देखो, मैं तीन दिन बाद अपना प्राण छोड़ दूंगा। अब तुम नीचे पहाड़ी से उतर जाओ और जिनको भी शिष्य बनना हो सबको बुला लाओ, क्योंकि अब मुझे ज्यादा देर रुकना नहीं है। तो उसने कहा, मैं किनको लाऊंगा? क्योंकि वह जिंदगी से जानता है कि हरेक अपात्र है। तो उसने कहा, मैं किसको लाऊंगा, पात्र खोजना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। उसने कहा, तुम किसी को भी लिवा लाना।
वह नीचे गया और उसने गांव में लोगों से जाकर कहा कि अब वे तैयार हैं शिष्य बनाने को, जिनको भी चलना हो। तो दस-पंद्रह लोग जो खाली थे, फुर्सत में थे, जिनको कोई काम नहीं था, जो जिंदगी से एक तरह से मर ही चुके थे, वे सब के सब वहां गए। कोई बेकार था जो नौकरी से छुट्टी पर था, कोई रिटायर हुआ होगा, कोई कुछ था, वे सब लोग वहां गए। वे बड़े हैरान हुए। लेकिन उन्होंने उससे कई दफे रास्ते में पूछा कि वे हमको शिष्य बनाएंगे? क्योंकि बड़े-बड़े लोग वहां आए, बड़े साधु आए, उसने इनकार कर दिया।
खैर वे गए। उस साधु ने कहा, पहले मैं इंटरव्यू ले लूं एक-एक का।
वह युवक जो लाया था, उसने कहा, मेहनत बेकार हुई। नीचे हम गए, लाए और ये
तो इंटरव्यू के लायक बिल्कुल भी नहीं हैं। क्योंकि वह तो रास्ते में हम ही को लग रहे हैं कि अपात्र हैं। रास्ते भर वे जमाने की बातें करते रहे, उनमें से एक ने भगवान की चर्चा न की, न आत्मा की चर्चा की। घंटों पहाड़ी रास्ते पर चले, जमाने भर की बातें कीं, लड़े-झगड़े। ये क्या पात्र होंगे! लेकिन अब ले ही आया था। उस साधु ने उस युवक को कहा, तुम बैठे रहो और मुझे बताना कौन पात्र है। उसे बिठा लिया। एक-एक को पूछाः आप क्यों भगवान को पाना चाहते हैं? उन्होंने कहा, मेरे पास कोई काम नहीं, सब काम जो था मैं कर चुका। अब बिल्कुल बेकाम हूं, सोचा कि भगवान को पाऊं।
तो उन्होंने उस युवक से पूछा, यह पात्र है?
वह युवक नीचे सिर कर लिया कि यह क्या पागल, जिसको भगवान एक फिजूल आयटम
की तरह, कोई काम नहीं है जिससे...
दूसरे से पूछा। उसने कहा, मैं बेकार था, कुछ दिन से नौकरी भी नहीं, वर्षा का समय है, खाली बैठा था, मन भी नहीं लगता था, सोचा चलो घूम ही आएंगे, और कुछ लाभ होगा।
यूं उनके उत्तर थे। वह एक-एक के बाद पूछता गया, वह युवक तो पसीने से भर गया, वह तो थक गया। उसने सोचा, बेकार मेहनत की, यही अगर इंटरव्यू लेना था तो पहले ही कह देते, हम लाते नहीं। आखिर में उसने उस युवक से कहा कि बोलो, किसको शिष्य बना लूं?
वह बोला, इनमें तो कोई भी योग्य नहीं, मैं आपसे क्या कहूं!
लेकिन उस वृद्ध ने कहा, मैं इन सबको शिष्य बना रहा हूं।
तो उस युवक ने पूछा, मैं हैरान हूं कि आप इन सबको शिष्य बनाएंगे और इतने लोगों को आपने वापस लौटाया!
उस वृद्ध ने कहा, असल में तब मैं देने में समर्थ नहीं था, इसलिए उनको अपात्र कह कर टाल देता था। अब मेरे पास देने को है, अब तो कैसा ही पात्र हो, सब सुपात्र है। उसने कहा, तब मेरे पास देने को नहीं था, इसलिए अपात्र कह कर टाल देता था। और आज तो मेरे पास देने को है, कैसा ही पात्र हो, सुपात्र है। अब तो जो मैं दूंगा उसको पाकर वह सुपात्र हो जाएगा। तब मेरे पास था ही नहीं इसलिए टालता था।
आपको मैं कहूं, यह जो कठिनाई की बात है, यह सत्य नहीं है। या तो वे इसको कहते हैं जिन्होंने जाना नहीं और जो उसे कठिन कह कर बचाव करते हैं। या वे कहते हैं जिन्होंने जानना नहीं चाहा और केवल शास्त्र पढ़ लिए और अपना बचाव करने का एक उपाय कर लिया और कहा कि यह कठिन है।
परमात्मा को पाना कठिन नहीं है। इसका मतलब... मुझसे कोई पूछता था परसों कि आप कहते हैं कठिन नहीं है और अभी और यहीं पाया जा सकता है, तो मुझे अभी मिला क्यों नहीं?

मेरी बात यह भ्रम पैदा करती है कि अगर कठिन नहीं है और अभी और यहीं पाया जा सकता है, तो माथेरान से हम लेकर क्यों न लौटें?
तो आपको मैं कहूं, कठिन तो बिल्कुल नहीं है। वह तो भ्रम छोड़ दें। सत्य
को पाना तो कठिन नहीं है, आप बहुत कठिन हैं इसलिए नहीं पा पाते हैं। इसे समझ लें, सत्य को पाना बिल्कुल कठिन नहीं है, आप बहुत कठिन हैं। आप बहुत जटिल हैं, वह तो बड़ा सरल है। उससे सरल तो कोई बात नहीं। आप बहुत कांप्लेक्स और आप बहुत जटिल और उलझे हुए हैं। यानी कठिनाई आपकी ग्रंथियों में है, सत्य के पाने में बिल्कुल नहीं है। इन ग्रंथियों को खोलने में समय लग जाता है, सत्य को पाने में बिल्कुल समय नहीं लगता। इन ग्रंथियों को जिस दिन आप खोल कर खड़े होते हैं--सारा समय और साधना ग्रंथियां खोलने में लगता है--सत्य तो एकदम मिलता है, वह तो सडन एनलाइटेनमेंट है, वह तो एकदम मिलता है।
जैसे पानी को गरम करते हैं, तो पानी गरम होता जाता है, गरम होता जाता है--सौ डिग्री पर आकर भाप हो जाता है। भाप तो वह एकदम हो जाता है, वह तो बड़ी सरल बात है पानी का भाप हो जाना, वह तो कठिन नहीं है। पानी का गरम होना, वह थोड़ा वक्त लेता है। यानी कठिनाई पानी के भाप होने में नहीं है, कठिनाई पानी के गरम होने में है।
कठिनाई आपके सत्य को उपलब्ध होने में नहीं है, कठिनाई आपकी भूमिका बनने में है। और वह कठिनाई आपकी जटिलता है। और जटिलता हम बनाए हुए हैं, कोई दूसरा नहीं। इस दुनिया में कोई किसी दूसरे की जटिलता नहीं बना रहा है, हम बना रहे हैं।
तो मैंने ये नौ सूत्र कहे, इन्हें जरा थोड़ा स्मरणपूर्वक समझना। अगर
ये ठीक इनमें से कोई समझ में पड़े तो उसका प्रयोग करना। और साथ में उन ध्यान का प्रयोग। तो आप पाएंगे, सत्य नहीं मिलेगा, आप सरल होते चले जाओगे। आप एक दिन जब बिल्कुल जटिल न रह जाओगे, बिल्कुल इनोसेंट और सरल और निर्दोष हो जाओगे, उस वक्त सब मिल जाएगा। यानी सत्य मौजूद है, हम अपनी जटिलता की वजह से उसे नहीं देख पा रहे हैं। सत्य निकट है, हम अपनी जटिलता की वजह से पीठ किए हुए हैं। सवाल सत्य का बिल्कुल नहीं है, सवाल बिल्कुल हमारा है। मनुष्य कठिन है, इसलिए सत्य को पाने में दिक्कत है। इसलिए जितने पीछे लौट जाइए, सत्य जल्दी मिल जाता था। तो उसकी वजह क्या थी?
उसकी वजह थीः मनुष्य ज्यादा सरल था। सत्य तो वैसा ही है, जैसा कल था वैसा ही आज है, वैसा ही परसों होगा। सत्य की तो कोई दिक्कत नहीं है, वह तो वैसा ही है। उस पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन मनुष्य ज्यादा जटिल होता चला जा रहा है। जिसको हम सभ्यता कह रहे हैं वह जटिलता है। जिसको हम सिविलाइजेशन कह रहे हैं, वह सभ्यता बिल्कुल नहीं है, वह केवल जटिलता है, जिसमें हमारे और उलझाव और टेंशन्स घने होते चले जा रहे हैं। वे इतने घने होते चले जा रहे हैं, हम इतने जटिल हो जाएंगे...
विलियम जेम्स ने, जिसने पागलों का और विक्षिप्त लोगों का बहुत अध्ययन किया, उसने लिखा हैः जब मैं पहली दफा पागलखाने गया तो मैं बहुत हैरान हुआ और मैंने कहा कि कितनी अजीब सी बात है, इतने लोग पागल हो गए! फिर मैं बीस वर्ष तक उनका अध्ययन किया और अब मरते वक्त मैं यह कहना चाहता हूं कि जो पागल हो गए हैं वह तो ठीक है, जो पागल नहीं हुए, यह कितना चमत्कार है कि वे पागल क्यों नहीं हुए? यानी इतनी जटिल दुनिया, इतने टेंशन्स का जगत, जो पागल हो गए हैं वह तो ठीक, उनको तो कोई दिक्कत नहीं मालूम होती है, यानी उनका हो जाना तो स्वाभाविक है; जो नहीं पागल हो पा रहे हैं, ये बड़े आश्चर्यजनक लोग हैं!
सभ्यता हमें धीरे-धीरे पागलपन की तरफ ले जा रही है। आप जानते हैं, पागलों की संख्या रोज बढ़ती चली जा रही है! और आप जानते हैं कि हममें से करीब-करीब प्रत्येक पागल होने के कगार पर खड़ा है! जरा सा धक्का और पागल हो जाएगा, जरा सा धक्का। उसका मकान गिर जाए, पागल हो सकता है। उसकी स्त्री मर जाए, पागल हो सकता है। उसकी दुकान डूब जाए, पागल हो सकता है। बिल्कुल कगार पर खड़े हैं, जरा सा धक्का और आप पागल।
अमरीका में प्रतिदिन पंद्रह लाख लोग अपने दिमाग के इलाजों के लिए अस्पताल पहुंच रहे हैं। और यह संख्या बहुत कम है। उनका ख्याल है कि इससे

तिगुनी संख्या पहुंचती नहीं। यह सारी दुनिया में होगा। व्यक्तिगत तल पर पागलपन घना हो रहा है, क्योंकि जटिलता बहुत तीव्र है। और सामूहिक तल पर भी हम रोज पागल हो जाते हैं। कभी दंगा कर लेते हैं, कभी फसाद कर लेते हैं, कभी झगड़ा, कभी युद्ध। दो युद्ध किए, उसमें दस करोड़ लोगों की हत्या की। यह कोई स्वस्थ मस्तिष्क दुनिया में संभव है कि पचास साल के भीतर हम दो युद्ध किए और दस करोड़ लोगों की हत्या कर दी!
हिरोशिमा पर जिस दिन एटम गिराया, दूसरे दिन सुबह पत्रकारों ने ट्रूमैन से पूछा, रात आप ठीक से सोए? ट्रूमैन बोला, आज पहली दफा बहुत आराम से सोया। एक कंटक टल गया।
एक लाख आदमी मर गए और एक आदमी कहता है, मैं रात आराम से सोया। इसको आप होश में कहिएगा? एक लाख आदमियों को मार डालने का आदेश इसका है। रात इसे दस बजे, ग्यारह बजे खबर दे दी गई है कि हिरोशिमा खाक होने लगा। यह मजे से अपना खाना लिया रात को, अपने बच्चों से प्रेम किया और सो गया।
आप सोचते हैं इसने बच्चों से प्रेम किया होगा? यह आदमी बच्चों से प्रेम कर सकता है? वहां एक लाख लोगों में कोई बीस हजार बच्चे रहे होंगे। वहां एक लाख लोगों में कोई पचास हजार स्त्रियां रही होंगी। यह अपनी स्त्री को प्रेम कर सकता है? यह धोखा दे रहा है! और यह रात भर मजे से सो सका। इसको आप होश में कहिएगा? इस आदमी को पागल कहिएगा या होश में कहिएगा? और अगर यह आदमी पागल है तो आप कोई होश में हैं?
एक बिल्कुल पागलों की दुनिया है, जो रोज पागल होती चली जा रही है। और इसका अंतिम परिणाम यह हो सकता है एक दिन कि हम सब मिल कर एक-दूसरे को बिल्कुल खत्म कर लें, जो कि करीब संभव है। अगर दुनिया में धर्म वापस पुनरुज्जीवित नहीं होता तो यह बिल्कुल संभव है कि सारी दुनिया पागल हो जाए और हम अपने आपको समाप्त कर लें। और हम उसके करीब पहुंचते चले जा रहे हैं--व्यक्तिगत रूप से भी और सामूहिक रूप से भी। जटिलता हम में बढ़ी है जो हमें पागल किए दे रही है।
पागल और साधु विपरीत हैं। आपने साधारणतः सोचा होगा कि बुरा आदमी और साधु विपरीत हैं। मैं ऐसा नहीं सोचता। मेरी बात समझ लेना आप। आपने साधारणतः सोचा होगाः बुरा आदमी, अनाचारी, दुराचारी, ये और साधु विपरीत हैं। मैं ऐसा नहीं सोचता। साधु और पागल विपरीत हैं। अनाचारी और दुराचारी के विपरीत सज्जन है, जो अनाचार नहीं करता, दुराचार नहीं करता। अनाचारी के विपरीत, असज्जन के विपरीत सज्जन पुरुष है। पागल के विपरीत साधु पुरुष है। दुराचारी और सज्जन, दोनों ही पागल हो सकते हैं। यानी वे पागलपन की ही किन्हीं कोटियों में होंगे। जो पागल हैं या पागल हो सकते हैं वे पागलपन की ही किन्हीं कोटियों में होंगे। साधु पागल नहीं हो सकता। उसके दिमाग की सारी जटिलता विलीन हो गई है जिससे कि कोई पागल हो सकता है।
महावीर या बुद्ध उस जगह हैं जहां पागलपन असंभव हो गया है, जहां इनसेनिटी नहीं हो सकती। वे अकेले सेन, अकेले वैसे लोग हैं जो विक्षिप्त नहीं हैं। तो मैंने कहा, विमुक्त और विक्षिप्त विपरीत हैं। आप जितने कम विक्षिप्त होते चले जाएंगे उतने आप विमुक्त होते चले जाएंगे। जितना आपका चित्त जटिलता से सरलता में आता चला जाएगा उतने आप साधु होते चले जाएंगे। ये कुछ सूत्र मैंने समझाए, ये ध्यान के लिए भूमिका मात्र हैं। वास्तविक चीज तो उस भूमिका में फिर ध्यान के बीज डालना है।
अब हम सुबह के प्रयोग को बैठें।

समाधि कमल
सातवां प्रवचन

साधना के जगत में प्रवेश

इसके पहले कि आपके प्रश्नों को लूं, थोड़ी सी बात कुछ और मुझे कह देनी
है वह कह दूं और फिर आपके प्रश्नों को लूंगा।
साधना की भूमिका के लिए कुछ अंगों पर मैंने प्रकाश डाला, उसकी आपसे चर्चा की। लेकिन मैंने दो बातें बताईं, एक तो साधना कैसे करनी यह बताया और एक यह बताया कि साधना के लिए भूमिका कैसे बनेगी। भूमिका भी ज्ञात हो जाए, साधना करने की पद्धति भी ज्ञात हो जाए, तो भी साधना शुरू नहीं हो जाती। आपको यह भी ज्ञात हो गया कि क्या करना है और यह भी ज्ञात हो गया कि कैसे करना है, तो भी करना शुरू नहीं हो जाता है। भूमिका समझ में आ गई, पद्धति समझ में आ गई, आपको पता चल गया कि इस भांति जमीन को साफ करना होता है, फिर इस भांति इसमें बीज डालने होते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप बागवानी शुरू कर देंगे। बागवानी शुरू करने के लिए इन दो के अलावा और भी कुछ बात जरूरी है। तो उन थोड़े से तत्वों पर मैं आपको प्रकाश और डाल दूं, जिसके बिना बागवानी का ज्ञान कोरा ज्ञान होगा और कोई फायदा नहीं होगा।
सबसे पहले तो वह तत्व जो आपको साधना में ले जा सके वह संकल्प है। पहला तत्व तो संकल्प है।
साधना कोई ऐसी बात नहीं है कि आपने समझा और हो गई, वह कोई ऐसी बात भी नहीं है कि आपने कभी ऐसे किसी फुर्सत के समय में चाहा और हो गई। वह एक सतत संकल्प है।
जीवन की क्षुद्र-क्षुद्र चीजों को पाने के लिए भी हमें संकल्प करना होता है। उन्हें पाने के लिए लगना होता है। आत्म-साक्षात के लिए, सत्य-उपलब्धि के लिए, हम अक्सर इच्छा करते हैं, लेकिन संकल्प कभी नहीं करते हैं। इच्छा और संकल्प में फर्क है। डिजायर और विल में फर्क है। इच्छा करना कि आत्मा मिल जाए, एक बात है; संकल्प करना कि आत्मा को पाऊंगा, बिल्कुल दूसरी बात है। इच्छा तो कोई भी कर लेता है, संकल्प कोई भी नहीं करता है। तो इच्छा करने वालों को यह भ्रम होता होगा कि हमने आत्मा को पाना चाहा, लेकिन मिलती तो नहीं है। तो उनको मैं कहूं, उन्होंने इच्छा की है, अभी संकल्प नहीं किया है। संकल्प का मतलब है कि आप अपने अंतःजीवन में यह निर्णय ले रहे हैं विवेकपूर्वक कि अब आपका जीवन आप ऐसे निर्णीत करेंगे और सतत इस केंद्र पर निर्णीत करेंगे कि आपको एक दिशा में गतिवान होना है। यह गतिवान होने का संकल्प कि मैं गतिवान होऊंगा, इस संकल्प के, इस अंतःप्रतिज्ञा के करते ही आपके भीतर अनेक शक्तियां जाग्रत होती मालूम होंगी, जो मात्र इच्छा करने से जाग्रत नहीं होती हैं। जब भी कोई इच्छा संकल्प में परिणत हो जाती है तभी आप अपने भीतर कुछ सोई हुई शक्तियों को जागता हुआ अनुभव करते हैं, जो आपके लिए सहयोगी हो जाती हैं। जो मात्र इच्छा रह जाती है वह केवल एक विकार मन का है, वह कभी सक्रिय शक्ति नहीं बन पाती है।
तो आपको वस्तुतः अगर साधना के जगत में प्रवेश करना है तो इच्छा और संकल्प के भेद को समझ कर, मात्र इच्छा नहीं, संकल्प की ओर दृष्टि देनी होगी। यह निर्णय अपने अंतःसाक्ष्य में--किसी और के सामने नहीं--लेना होगा कि सच में मैं क्या चाहता हूं, सच में क्या मेरी चाह है कि आत्मा उपलब्ध हो? क्या वस्तुतः मेरा संकल्प है कि मैं सत्य को जानूं? या कि मात्र मेरी जिज्ञासा है?
परसों मैं बात करता था तो मैंने कहा, जिज्ञासा और जिज्ञासु और मुमुक्षु में यही अंतर है। जिज्ञासा का अर्थ हैः हम जानना चाहते हैं कि क्या है? जैसे ही वह समाप्त होगा, हम दूसरी बात जानना चाहेंगे कि वह क्या है? तीसरी बात जानना चाहेंगे कि वह क्या है?
अब आपके जो प्रश्न हैं उनमें मुमुक्षा कम है, जिज्ञासा ही ज्यादा है। जानना चाहते हैं कि क्या है? किसी ने पूछा है कि जगत का स्रष्टा कौन है? किसी ने पूछा है कि प्रारब्ध क्या है? कोई पूछता है कि पुरुषार्थ क्या है?

कोई पूछता है कि स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण क्यों है? कोई और कुछ पूछा है। एक व्यक्ति ने पूछा है भाई ने कि क्या यह हो सकता है कि हम ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं और फिर भी पाप करते रहें और पाप न लगे? क्या यह हो सकता है कि ज्ञानी व्यभिचार करे, उन्होंने पूछा है, और कोई पाप न लगे?
तो अब ये जो बातें हैं, ये जिज्ञासाएं तो ठीक हैं, मन बहुत सी बातें नहीं जानता, पूछना चाहता है। लेकिन इनमें मुमुक्षा नहीं है। ये आपको मुमुक्षु नहीं बनातीं। मुमुक्षु का मतलब बहुत भिन्न है। उसका अर्थ यह नहीं है कि हम कुछ जानना चाहते हैं। उसका अर्थ है हम कुछ होना चाहते हैं। उसका यह अर्थ नहीं है कि एक खुजलाहट है दिमाग की, हम इसको हल कर लेना चाहते हैं। उसका यह अर्थ है कि हमारे जीवन पर संकट है और हम इस संकट को परिवर्तित करना चाहते हैं। जिज्ञासा का अर्थ है एक क्युरिआसिटी कि हम कुछ पूछते हैं। बच्चे पूछते हैंः आकाश कहां है? चांद कहां से आया? वैसी ही हमारी जिज्ञासाएं हैं! हम बच्चों से बहुत बड़े नहीं हो पाते। उम्र बड़ी हो जाती है, बच्चा हमारे भीतर का मरता नहीं है। पूछना चाहते हैंः जमीन कैसे बनी होगी? किस चीज पर थमी हुई है? बच्चे पूछते हैं, वह हम पूछते हैं। हम पूछते चले जाते हैं।
लेकिन जब तक आपमें मुमुक्षा पैदा न हो तब तक आपका बच्चा समाप्त नहीं होता। जिज्ञासा बालपन है, मुमुक्षा--मुमुक्षुत्व प्रौढ़ता है। वह है जब आप पहली दफा प्रौढ़ बनते हैं। जब आप जानने के लिए उत्सुक नहीं रह जाते बहुत, जब आप होने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। जानना केवल इच्छा है और होना फिर संकल्प को मांगता है।
तो अपने सामने, साधना शुरू करने के पूर्व, इसके पहले कि हम प्रवेश हों साधना के जीवन में, हमें स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ये हमारी जिज्ञासाएं तो नहीं हैं? अगर ये जिज्ञासाएं हैं, तो बजाय साधना में प्रवेश के किन्हीं शास्त्रों में प्रवेश करना अच्छा है। अगर ये जिज्ञासाएं हैं, तो बजाय साधना में या योग से संबंधित होने के किसी पुस्तकालय में बैठ कर अध्ययन करना अच्छा है।
आपको यह भी समझा दूं, पश्चिम की जो फिलासफी है वह जिज्ञासा है और पूरब
का जो दर्शन है वह जिज्ञासा नहीं है। इसलिए पश्चिम की फिलासफी और पूरब की फिलासफी जमीन-आसमान के फासले पर हैं, उनका कोई संबंध नहीं। इसलिए पश्चिम की फिलासफी का जो आनुषंगिक अंग है वह तर्क और लाजिक है और पूरब के दर्शन का जो आनुषंगिक अंग है वह तर्क और लाजिक नहीं है, वह योग और साधना है। पश्चिम की फिलासफी के साथ योग विकसित नहीं हुआ, वहां का कोई दार्शनिक योगी नहीं है। और पूरब का कोई दार्शनिक नहीं है जो योगी न हो।
इसको समझ लेना। यह फिलासफी नहीं है जो हम यहां चर्चा कर रहे हैं। या महावीर ने, या बुद्ध ने, या पतंजलि ने, या कृष्ण ने, या शंकर ने जो चर्चा की है वह फिलासफी नहीं है। अब यह नासमझी की बात है कि हम उसको इंडियन फिलासफी कहते हैं। वह बिल्कुल फिलासफी नहीं है। वह बिल्कुल भी फिलासफी नहीं है। वह तो साधना है। वह जिज्ञासा नहीं है। वह तो इस बात की चेष्टा है कि हम परिवर्तित होना चाहते हैं, हम कुछ और होना चाहते हैं। जो है वह योग्य नहीं है, हम कुछ और होना चाहते हैं। वह एक गहरा संकल्प है। एक पूरी अंतरात्मा का विल, एक पूरी अंतरात्मा का इकट्ठा होकर यह संकल्प करना कि मैं जैसा हूं, व्यर्थ हूं, और मुझे सार्थक होना है। और तब जिज्ञासा आनुषंगिक होगी। मुमुक्षा प्राथमिक होगी, जिज्ञासा आनुषंगिक होगी। यानी वह साधना के लिए तलाश होगी। उसका अपने में कोई मूल्य नहीं होगा।
तो आपकी अगर जिज्ञासा है, तब एक बात है। यह फिर एक बहुत बौद्धिक व्यायाम है, जो आप जीवन भर करते रह सकते हैं। उससे कोई परिणाम नहीं होगा। लेकिन अगर यह आपकी मुमुक्षा है, अगर यह आपकी आकांक्षा है कि जैसा जीवन आप पाते हैं वह व्यर्थ है, मीनिंगलेस है। और हमें कोई मीनिंग खोजना है...
एक फकीर था। वह स्नान करने सुबह-सुबह निकला। किसी ने रास्ते पर पूछा
कि ईश्वर है क्या? वह रास्ते पर नहाने जा रहा है, किसी ने पूछा, ईश्वर है क्या? उसने कहा, जानना चाहते हो कि सुनना चाहते हो? आपसे भी पूछा होता तो आप कह देते कि जानना ही चाहते हैं। उसने भी कहा, जानना ही चाहते हैं। वह

फकीर हंसने लगा, बोला, अगर जानना ही चाहते हो तो मेरे साथ हो लो। स्नान कर लें, तुम भी स्नान कर लो, फिर समझ लेंगे, फिर हम तुम्हें जना देंगे, बता देंगे।
वे दोनों स्नान करने उतरे, जब फकीर और वह दोनों नदी में गए और वह जिसने जिज्ञासा की थी वह नदी में डूबा, वह फकीर ने उसकी गर्दन पानी के भीतर दबा ली। तड़फने लगा, पानी के भीतर गर्दन दबी है और फकीर वजनी और तगड़ा है। और वह दबाए जा रहा है और निकलने की उस जिज्ञासु की हिम्मत नहीं है। उसके प्राण छटपटाने लगे, उसकी श्वास-श्वास रोने लगी होगी, उसका रोआं-रोआं कंप गया होगा! वह बिल्कुल जैसे श्वास टूटने को हो तब उसने उसे छोड़ा, जैसे वह मरने को था तब उसे छोड़ा। वह एकदम घबड़ा कर बाहर निकला। उसकी आंखें लाल हो गई हैं, उसके हाथ-पैर कंप रहे हैं। वह हैरान हुआ कि फकीर से हम ईश्वर को जानने को कहते थे और ये तो मृत्यु का साक्षात करवाए दिए देते थे! उसने उस फकीर को कहा, आप यह क्या करते हैं? आप होश में हैं या पागल हैं!
उस फकीर ने कहा, मैं तो होश में हूं और तुमने जो पूछा उसका उत्तर दे रहा हूं। यह पूछना है कि जब मैं तुम्हारी गर्दन को पानी के भीतर दबाया था तो तुम्हें क्या हुआ?
वह बोला, अब यह कोई पूछने की बात है? मेरे प्राण छटपटा गए बाहर निकलने को! फिर तो मैं यह भी भूल गया कि बाहर निकलना है, फिर तो एक प्यास रह गई अंधी कि किसी भांति एक श्वास हवा मिल जाए!
तो उस फकीर ने कहा, अभी ईश्वर को पाने की आकांक्षा इस स्थिति में आई है क्या? कि ऐसी तड़प हो रही हो इस संसार से कि वह नहीं मिलेगा तो मैं टूट जाऊंगा और मिट जाऊंगा और सब समाप्त हो जाएगा? तब तो फिर जिज्ञासा नहीं है, तब तो फिर प्यास है। और प्यास है तो संकल्प पैदा होगा। तो उससे उसने कहा कि तुम सामान्य इच्छा करते थे कि बाहर निकल आएं पानी के कि संकल्प करते थे? वह बोला, इच्छा? संकल्प था! पूरे प्राण का संकल्प था कि बाहर निकल आऊं। अपनी पूरी शक्ति लगा रहा था कि बाहर निकल आऊं।
संकल्प से, इतने संकल्प से--जो कि पानी के भीतर आपको अगर कोई दबा दे, आपको करना पड़े--उतने संकल्प से जीवन-साधना में प्रवेश होता है।
एक बीज जब फूटता है तो कितने संकल्प से फूटता होगा? जब जमीन की पर्त को तोड़ता है और जब बीज के खोल को तोड़ कर अंकुर बाहर निकलता है तो कितने संकल्प से, कितने विल की जरूरत पड़ती होगी? उससे भी ज्यादा संकल्प की जरूरत तब पड़ती है जब एक व्यक्ति व्यर्थता के खोल को तोड़ कर सार्थक जीवन की तरफ प्रविष्ट होता है। सारी शक्ति इकट्ठी करके वह जब संकल्प लेता है तो प्रवेश पाता है।
तो आपको मैं कहूं, साधना फलवती होगी--अगर इच्छा ही न हो, संकल्प हो। अगर जिज्ञासा न हो, मुमुक्षा हो। तो पहली शर्त है--संकल्प। यह तो प्राथमिक शर्त है, इसके बिना तो कुछ शुरू नहीं होता। इसके बिना तो कुछ शुरू नहीं होता। अपने अंतःसाक्ष्य में, अपने जीवन में, अपनी अंतरात्मा में यह अंतःप्रतिज्ञा जरूरी है कि मैं संकल्पबद्ध हूं।
जिस रात्रि बुद्ध को बुद्धत्व उपलब्ध हुआ... वे सात वर्ष से भटकते थे। सात वर्ष वे न जाने कहां-कहां भटके, कहां-कहां गए, किन-किन से पूछा, किन-किन साधनाओं में गए। सात वर्ष भटके, थक गए, परेशान हो गए। जिस रात उनको बुद्धत्व उपलब्ध हुआ, उस रात बड़े संकल्प से उपलब्ध हुआ। और तब उनको ज्ञात हुआ कि सात वर्ष इच्छा थी, संकल्प पहली दफा आया था। उस संध्या वे स्नान करने को उतरे, देह उनकी इतनी कृश थी, इतने उन्होंने उपवास किए कि जब वे उठने लगे, नदी के तट के बाहर निकलने लगे, तो उनके हाथ-पैर कंप गए और उनके हाथ में इतनी ताकत न मालूम हुई कि वे घास को पकड़ कर चढ़ जाएं। वे एक लटकी हुई जड़ को पकड़ कर रुक रहे। उनको पहली दफा लगाः इतना कमजोर हो गया हूं कि नदी पार नहीं होती तो यह संसार कैसे पार करूंगा? इतना कमजोर हो गया हूं कि नदी के घाट पर नहीं चढ़ पाता तो जीवन के घाट पर चढ़ पाना कैसे संभव होगा?
वे उठे जब उनको शक्ति मालूम हुई, बाहर आए और उन्होंने निर्णय किया कि
आज अंतिम रात है, कल सुबह यह ख्याल छोड़ दूंगा आत्मा और सत्य के पाने का, लेकिन अब आज इस पूरी रात यही ख्याल हो जाए। और वे उस दरख्त के नीचे बैठे जो

बाद में बोधिवृक्ष बन गया और उन्होंने संकल्प किया कि अब मैं इस जगह से उठूंगा नहीं; या तो सत्य पा लूंगा या समाप्त हो जाऊंगा। और वे हैरान हुए! जैसे ही यह संकल्प प्रगाढ़ हुआ और उन्होंने देखा कि न मालूम कितने दिनों के विचार का चक्र जो नहीं टूटता था वह विलीन और विसर्जित होता चला जा रहा है।
सुबह भोर का तारा निकला, डूबने को था, और उन्हें बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। जो सात वर्ष में नहीं हुआ वह उस दिन उपलब्ध हुआ।
संकल्प बना। ढीली-ढाली इच्छा न रही, प्रगाढ़ संकल्प हुआ।
स्वामी रामतीर्थ गणित के विद्यार्थी थे। उनकी अंतिम परीक्षा थी। उनकी आदत थी कि जितने प्रश्न आएं गणित के वे सब हल कर देना। जैसा प्रश्न-पत्र पर लिखा होता हैः आठ में से कोई पांच करिए। वैसा वे आठों हल करके ऊपर लिख देते परीक्षक को सूचना कि आठ में से कोई पांच जांचिए। आठ ही करते हल और ऊपर सूचना दे देते परीक्षक को कि आठ में से कोई पांच जांचिए। वैसी उनकी आदत थी। अंतिम परीक्षा थी, उनका अंतिम पत्र था। रात वे प्रश्न को हल करने बैठे, एक प्रश्न पर उलझ गए, वह हल नहीं होता था। दो बज गए, तीन बज गए, उनका जो साथी था उनके छात्रावास में, उसने कहा, इसे छोड़ो भी, कोई इसी प्रश्न पर कोई सारी बात नहीं टिकी है। और यह प्रश्न आएगा, यह भी क्या जरूरी है? और इसके पीछे रात खराब कर रहे हो, दूसरे प्रश्न रह जाएंगे।
रामतीर्थ ने कहा, मैंने कभी कोई ऐसा प्रश्न हाथ में ही नहीं लिया जिसे
न करूं। अब अपनी जिंदगी है और यह प्रश्न है, बाकी दुनिया में कोई प्रश्न नहीं है। इसे हल करूंगा।
उन्होंने कहा, इसे बाद में हल कर लेना, कल परीक्षा है।
उन्होंने कहा, मैं तो बिना हल किए... या तो हाथ में ही नहीं लेता, अब हाथ में ले लिया तो अब यह जिंदगी है और यह प्रश्न है, इसको हल किए बिना मैं उठने वाला नहीं।
तो उन्होंने कहा, फिर सुबह की परीक्षा गई।
रामतीर्थ ने कहा, जाएगी नहीं। चार बजे तक देखता हूं और अन्यथा फिर संकल्प करूंगा इसको हल करने का।
तो वह बोला, फिर क्या संकल्प? अभी क्या कर रहे हो इतनी देर से?
वे बोले, अभी इच्छा कर रहा हूं। अभी हल करने की इच्छा कर रहा हूं।
मैं फर्क दिखला रहा हूं आपको, इच्छा और संकल्प में फर्क कहां है? उन्होंने कहा, अभी मैं इच्छा कर रहा हूं इसको हल करने की, चार बजे रात
के बाद संकल्प करूंगा। इच्छा तो पूरी रात गंवा दी, संकल्प केवल पांच मिनट का करूंगा।
वह लड़का कुछ समझा नहीं। वह समझा कि ठीक है, करने दो। चार बज गए, वह प्रश्न हल नहीं हुआ। उन्होंने अपनी पेटी से एक छुरा निकाला, उस छुरे को टेबल पर लगा कर रख लिया। वह लड़का बोला, क्या करते हो?
वे बोले, चार बज गए, अब संकल्प करता हूं। पांच मिनट के भीतर या तो प्रश्न हल हो या छुरा छाती के भीतर हो जाएगा।
वह लड़का बोला, आपका दिमाग खराब है! इस प्रश्न से क्या लेना-देना है? उन्होंने कहा, यह सवाल नहीं है प्रश्न से लेने-देने का। यह तो अपने संकल्प को उठाने की बात है। उन्होंने छुरे को सामने रखा, ठीक चार पर उन्होंने प्रश्न हल करना शुरू किया। उस लड़के ने देखा, वे अभी तक बिल्कुल ठीक थे, अब सारा चेहरा तमतमा आया और पसीना झर रहा है। अब वह पांच मिनट का प्रश्न है केवल! फासला बहुत छोटा है। और जो छह घंटे में नहीं हल हुआ है, वह पांच मिनट में हल होगा इसकी संभावना भी क्या है? लेकिन जैसे सारी दुनिया मिट गई। उस लड़के ने देखाः उनके सामने कोई दुनिया नहीं है, वे हैं और प्रश्न है। और केवल तीन मिनट में वह हल हो गया! वह हल हो गया और रामतीर्थ ने कहा, वह हल हुआ। इच्छा से जो नहीं हुआ वह संकल्प से होगा।
उनके मित्र ने कहा, यह तो तरकीब अच्छी है। कभी कोई प्रश्न इस तरह हल न होता हो तो करने का रास्ता अच्छा है।
रामतीर्थ ने कहा, तुमसे न होगा। तुमसे न हो सकेगा।
वह बोला, इसमें क्या दिक्कत है? छुरे को सामने लगा लिया, घड़ी रख ली और सोचा कि अगर पांच मिनट में नहीं हुआ तो छुरा मार लूंगा। मारता कौन है?

इच्छा और संकल्प में भेद है। साधक इच्छा से नहीं चलता। इच्छा से वहां गति नहीं है, वहां संकल्प चाहिए। तो संकल्प प्रगाढ़ हो, इसकी थोड़ी भावना करें, इस सत्य को थोड़ा समझें। अगर आत्म-साक्षात न होता हो तो उसका कारण यह मत समझें कि आत्म-साक्षात कठिन है, उसका कुल कारण इतना है कि अभी इच्छा है, संकल्प नहीं है।
तो पहली बात तो संकल्प है साधक के लिए। जो अनिवार्य है, जिसके बिना शुरुआत नहीं होगी। दूसरी बात सातत्य है। जो शुरू करते हैं उसका सातत्य होना, उसका अविच्छिन्न होना जरूरी है। अन्यथा कोई आदमी कभी एक बीज फेंक दे, कभी दूसरा बीज फेंक दे, अलग-अलग जमीनों पर फेंक दे, अलग-अलग समयों में फेंक दे, उनका कोई फल न होगा। उसका सातत्य, कि हमने जो बोया है उसे हम सम्हालें, उसकी हम सुरक्षा करें। और उसकी तो चौबीस घंटे सुरक्षा करनी होगी। साधना कोई खंडित चीज नहीं है कि कभी पंद्रह मिनट कर ली चौबीस घंटे में और निपट गए। साधना अखंड बात है। जो पंद्रह मिनट की है उसे शेष चौबीस घंटे सुरक्षा करनी होगी। और एक सातत्य अंतःधारा, एक अंडरकरंट सातत्य की जारी रखनी होगी। तब कुछ होगा।
और नहीं तो होगा यह... एक फकीर का स्मरण मुझे आया। उसने अपने साधकों को
ले जाकर एक दफा एक खेत दिखलाया। साधक देख कर हैरान हुए, खेत में आठ बड़े-बड़े गड्ढे थे! तो साधकों ने पूछा, ये गड्ढे किसलिए किए गए? उसने कहा, मैं इसीलिए तुम्हें दिखाने लाया। इस खेत का मालिक बड़ा अदभुत है। उसने यहां कई दफे कुएं खोदने चाहे। पहली दफा खोदना चाहा, वह वह है। लेकिन थोड़ा खोद कर वह रुक गया, दिल बदल गया। फिर दुबारा उसने सोचा कि फिर खोदना है, तब उसने दूसरा खोदना शुरू किया। फिर कुछ दिन में दिल बदल गया, वह रुक गया। उसने आठ कुएं खोदे। पूरा खेत खराब हो गया है। कुआं अभी नहीं खुदा है।
कई दफा तरंग उठती है कि आत्मा को जानें, ईश्वर को जानें। वह तरंग है, संकल्प नहीं। तरंग उठती है कि जानें। कोई जिंदगी का दुख, कोई परेशानी ख्याल दिला देती है कि अब आत्मा को ही जानो। बहुत हो गई यह गृहस्थी और बहुत हो गई यह दुकान, अब आत्मा को ही जान लें। यह तरंग है। यह तरंग ठीक ही है। तरंग तो तरंग है, वह तो मूड है, वह कोई संकल्प नहीं है, वह आएगा और चला जाएगा। तब थोड़ी सी खुदाई करेंगे, फिर भूल जाएंगे। फिर कभी आएगा, फिर खुदाई करेंगे, फिर भूल जाएंगे। सातत्य नहीं होगा तो कुआं नहीं खुदेगा।
एक ही जगह पर और सतत खोदने से जलस्रोत उपलब्ध होते हैं। और ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां कि खोदते ही चले जाएं तो जलस्रोत उपलब्ध न हो जाएं। देर-अबेर हो सकती है। ऐसा कोई भूमि-थल नहीं है जहां खोदते ही चले जाएं तो जलस्रोत उपलब्ध न हो जाएं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो खोदता ही चला जाए तो आत्म-जीवन को उपलब्ध न हो जाए। देर-अबेर हो सकती है, क्योंकि हर आदमी ने बीच में अपने कर्मों की और अपने विचारों की चट्टानें अड़ाई हुई हैं, जो थोड़ा-थोड़ा फासला देंगी। अलग-अलग पर्तें हैं अपने-अपने जीवन की, अपने-अपने चैतन्य की। लेकिन यह असंभव है कि वह खुदाई पूरी न हो जाए। पर उसके लिए एक सातत्य चाहिए, एक सतत धारा चाहिए।
तो थोड़ा शुरू करें, लेकिन सतत करें, उसका परिणाम है। बहुत शुरू करें
और सतत न करें, उसका कोई परिणाम नहीं है। बहुत धीमी चोट हो, लेकिन सतत हो, तो परिणाम होगा। सातत्य का अदभुत अर्थ है। बहुत धीमी चोट भी सतत परिणाम में क्या कर देती है, इसका आपको पता है? पानी गिरता है पहाड़ से, नीचे सख्त चट्टानों पर कोमल पानी गिरता है। चट्टानों को पानी क्या तोड़ पाएगा? पानी जैसी चीज वह क्या चट्टानों को तोड़ेगी? उससे कमजोर और क्या होगा? लेकिन दिन बीतते हैं, वर्ष बीतते हैं--वह अडिग कड़ी चट्टान कि पानी गिरा था और छिटक कर उसके किनारों से बह गया था, चट्टान को पता भी नहीं चला होगा--दिन बीतते हैं, वर्ष बीतते हैं और चट्टान टूटती चली जाती है। और एक दिन पता चलता है कि पानी तो बह रहा है, चट्टान नहीं है। वह रेत हो गई और बह गई।
पानी जो कि इतना कमजोर है, लेकिन सतत है, वह चट्टान को जो कि इतनी मजबूत है, तोड़ देता है। तो आपका प्रयास चाहे छोटा हो, लेकिन सतत हो, तो बड़ी से बड़ी चट्टान जो बीच में बाधा होगी वह टूट जाएगी।

तो पहली बातः संकल्प। संकल्प के बाद सातत्य। और तीसरी और भी महत्वपूर्ण बात--संकल्प भी है, सातत्य भी है, लेकिन तीसरी और भी गहरी बात-- अगर प्रतीक्षा नहीं है, तो संकल्प भी व्यर्थ हो जाएगा, सातत्य भी व्यर्थ हो जाएगा।
एक आदमी बीज बो दे... मुझे बचपन का ख्याल आता है, वह आम की बजाने के लिए उसकी गोई को बो देते और फिर थोड़ी देर में आधा घंटे में जाकर उसको निकाल कर देखते कि अभी उसमें पीका आ गया कि नहीं। वह अभी नहीं निकला है, फिर उसको डालते। फिर देखते पंद्रह मिनट बाद जाकर कि अभी आया कि नहीं। वह कभी नहीं आता।
प्रतीक्षा नहीं थी। बीज को तो बोते थे, प्रतीक्षा नहीं थी। और करीब-करीब हम ऐसे ही बच्चे हैं जो आम की गोइयों को बो रहे हैं जो कि उनको पंद्रह-पंद्रह मिनट में निकाल कर देखेंगे।
अभी परसों मुझे किसी ने कहा। पहले दिन ही वे पंद्रह मिनट जाकर रात को बैठे, फिर मैं वहां से गया, वे मुझे आकर बोले, अभी कोई आध्यात्मिक शक्ति नहीं जगी।
अगर पंद्रह मिनट में आध्यात्मिक शक्ति नहीं जगी तो वे समझेंगे काम ही फिजूल है। इसमें क्या मतलब है! पंद्रह मिनट बेकार गए और आध्यात्मिक शक्ति अभी जगी भी नहीं।
प्रतीक्षा, और अनंत प्रतीक्षा! प्रतीक्षा, और अनंत प्रतीक्षा! जितना विराट उपलब्ध होना हो उतनी अनंत प्रतीक्षा करनी होगी। जितना क्षुद्र उपलब्ध करना हो वह जल्दी मिल जाएगा।
क्षुद्र को पाने में लेकिन हम बहुत प्रतीक्षा कर लेते हैं और विराट
को पाने में प्रतीक्षा के लिए राजी ही नहीं होते। अब मैं इस बीच बहुत लोगों से परिचित हुआ, एक-दो दिन करेंगे, कहेंगे, अभी तो कुछ भी नहीं हुआ। एक महिला आती थीं। वे मेरे पास सात दिन प्रयोग करती थीं। पहले दिन वापस जाती हुई सीढ़ियों पर मुझे मिलीं, बोलीं, अभी तो कुछ हुआ नहीं, अभी तो कोई साक्षात वगैरह नहीं हुआ। मैंने कहा, कल देखिए। कल आईं। दूसरे दिन भी मुझसे आकर बोलीं, आज का दिन भी बेकार गया, अभी कुछ नहीं हुआ। वे नासमझ नहीं हैं, अध्यापिका हैं। संस्कृत की अध्यापिका हैं, बहुत जानती हैं धर्म के बाबत। खूब गीता पर भाषण भी करती हैं, बहुत समझदार हैं। सात दिन बाद मुझसे बोलीं, सात दिन हो गए और आप कहते हैं कल होगा, आप कहते हैं कल होगा। और सात दिन में नहीं हुआ, फिर कब होगा? मैंने कहा, देखें कल। देखती चलें। कल तक तो प्रतीक्षा रखें कम से कम। इसलिए ज्यादा की आपसे नहीं कहता। एक दिन की है, शायद आपको आशा बंधी रहे। ज्यादा कहूंगा, शायद आप करें भी नहीं।
तो जो मैं आपसे कहता हूं कि अभी और यहीं मिल सकता है, कोई इस भ्रम में न पड़े कि वह दस मिनट बैठा तो मिल जाएगा। वह सिर्फ इसलिए कि अल्प प्रतीक्षा के लोग हैं हम। आपको हिम्मत बंधाता हूंः अभी मिल जाएगा, कल मिल जाएगा। लेकिन थोड़ा सोचें कि जिस विराट के, जिस अनंत के, जिस परमात्मा के, जिस आत्मा के आप ख्याल में हैं, अगर सच में इतना सस्ता मिल जाए तो उसको आत्मा और परमात्मा कह सकिएगा? सरल तो है, लेकिन सस्ता नहीं है। थोड़ा तो मूल्य चुकाना पड़ेगा।
हमारी क्या वृत्ति है, इस जगत में हम हर कमोडिटी के लिए पैसा देने को राजी हैं, भगवान के लिए देने को राजी नहीं हैं। हर वस्तु के लिए हम पैसा देने को राजी हैं। भगवान मुफ्त मिले तो भी शायद हम सोचें कि लेना कि नहीं लेना। तो भी हम विचार करेंगे कि अब घर में वैसे ही पांच लोग हैं और इस छठवें को कहां रखेंगे! और एक उपद्रव न पैदा हो जाए।
तो मैं आपको कहूंः संकल्प चाहिए, सातत्य चाहिए, प्रतीक्षा चाहिए और अनंत प्रतीक्षा चाहिए।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे समझ में आपको आएगा, अनंत प्रतीक्षा का अर्थ क्या है! और बड़े रहस्य की बात यह है कि जो अनंत प्रतीक्षा करने को राजी है उसे इसी क्षण उपलब्ध हो सकता है, इसी क्षण! वह एटिट्यूड, वह अनंत प्रतीक्षा का एटिट्यूड, वह रिलैक्स्ड, वह चित्त की विश्रांत स्थिति कि

अनंत-अनंत बाद मिलेगा तो भी राजी हैं, तो भी जीएंगे और खोदेंगे। वह दृष्टि, वह पकड़, वह भाव-स्थिति, वह इसी क्षण ला देगी।
एक कहानी आपसे कहूं, मुझे बहुत प्रीतिकर रही; और जहां भी गया, उसको लोगों से कहा। एक काल्पनिक कथा है। एक बहुत वृद्ध साधु, कोई नब्बे वर्ष बीते जीवन के, बचपन से दीक्षित हुआ, साधना में रत है। माला है, जप है, सब करता है। तपश्चर्या करता है, भूखा-प्यासा मरता है। नारद को उसने देखा एक दिन जाते। नारद से उसने कहा, नब्बे वर्ष हुए! और सुनता हूं कि तुम बैकुंठ जाते और भगवान के दर्शन करते हो। थोड़ा जरा पता लगाना कि कब तक मेरा मोक्ष, कब तक मेरी मुक्ति है? थोड़ा उनके दफ्तर में थोड़ा पूछताछ करना भगवान के कि कब तक मेरी मुक्ति है? कब तक मेरा मोक्ष है? कितनी देर और? और यह कब तक करना पड़ेगा? बहुत हो गया, जिंदगी बीत गई!
नारद ने कहा, देखो पूछूंगा।
उसके बगल में ही एक बरगद का दरख्त है और उसके नीचे एक फकीर नाच रहा है
जो आज सुबह ही साधु हुआ है। वह नाच रहा है और एक तंबूरे को बजा रहा है। नारद ने उससे हंसी में ही पूछा कि मित्र, तुमको भी पूछना हो, तुम्हारा भी पूछ लूं।
वह कुछ बोला नहीं। वह नाचता था, नाचता रहा। उसने नारद की बात जैसे सुनी भी नहीं। वह गीत गाता था, गाता रहा। नारद आगे बढ़ गए। वे कुछ दिन बाद बैकुंठ से वापस हुए। उन्होंने उस वृद्ध को कहा कि मैंने पूछा था, भगवान ने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे।
वह माला हाथ में लिए था, उसने माला नीचे पटक दी। उसने कहा, तीन जन्म और? यह तो अन्याय हो गया! यह तो हद्द हो गई! जीवन गंवा दिया, अभी तीन जन्म और!
नारद बोले, मजबूरी है, मैं क्या करूं! उन्होंने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे।
वे आगे बढ़े, वह फकीर नाचता था उसी दरख्त के नीचे। उन्होंने कहा, मित्र तुमने तो नहीं कहा था, लेकिन मैंने पूछ ही लिया। वह नाचता गया। नारद ने कहा, लेकिन सुन लो, नाराज मत होना। उन्होंने कहा कि जितने उस बरगद में पत्ते हैं जिसके नीचे वह फकीर नाचता है, उतने जन्म और लग जाएंगे। वह फकीर दुगने वेग से नाचने लगा। नारद बोले, क्यों नाचने लगे जोर से? वह बोला, तब तो पा लिया! कितने जमीन पर पत्ते हैं, कितने पत्ते हैं! उसमें सिर्फ इस बरगद के पत्ते! तब तो पा लिया! और कथा कहती है, उसने उसी क्षण पा लिया! उसी क्षण! तत्क्षण उपलब्ध हो गया वह!
वह पा लेने का प्रश्न नहीं है बड़ा, वह तो एटिट्यूड की बात है। वह तो आपके चित्त के विश्रांत और प्रतीक्षारत होने की बात है। प्रतीक्षा ही प्रार्थना है। आपका कुछ मांगना नहीं, प्रतीक्षा। अनंत प्रतीक्षा प्रार्थना है। प्यास संकल्प है, सतत इस प्यास को जगाए रखना सातत्य है और उस प्यास में चुपचाप अनंत प्रतीक्षा को अनुभव करना वह तीसरा तत्व है। जो अनंत धैर्य रखने को राजी हैं, उनकी यात्रा इसी क्षण भी पूरी हो सकती है। जो अधैर्यवान हैं, वे कहीं नहीं पहुंचते हैं।
ये तीन बातें और आपसे कहनी थीं। ये जरूरी थीं कि आपसे कह दूं। इसके पहले कि हम यहां से विदा हों, ये तीन बातें आपसे कहनी जरूरी थीं। ख्याल उनका रखेंगे। वे सरल हैं, कठिन नहीं हैं। और सच ही प्रतीक्षा में ही प्रेम है। जो प्रतीक्षा करने को राजी नहीं है वह झपटने को राजी है। और झपटने में हिंसा है, वायलेंस है। हम सब वायलेंट अटैक करते हैं भगवान पर, कि उसको पा ही लेना है। यानी पा लेने का मतलब हम उसको पजेस करना चाहते हैं। प्रतीक्षा में हम उसे पजेस नहीं करना चाहते, उसके मालिक नहीं होना चाहते, अपने को खोलते हैं और उसकी प्रतीक्षा करते हैं, उसकी राह देखते हैं।
तो प्रतीक्षा बड़ा अदभुत शब्द है। बड़ा अदभुत शब्द है। और सारी साधना
वह प्रतीक्षा है, वेटिंग फॉर गॉड! वह वेटिंग है, वह बिल्कुल प्रतीक्षा है। और अगर वह प्रतीक्षा है तो एक बात और आपको समझ में आ जाएगी कि उस प्रतीक्षा में आपको तनाव नहीं होगा। सब तनाव पाने की जल्दी से होता है। सब टेंशन पाने की जल्दी में होता है। अभी मिल जाए, अभी मिल जाए, उसमें होता है।

अगर प्रतीक्षा गहरी है और घनी है तो पाने का तनाव नहीं होगा। प्रयत्न
का सातत्य होगा, लेकिन पुरस्कार पाने का तनाव नहीं होगा। प्रयत्न का सातत्य, पुरस्कार पाने का तनाव नहीं--यह है प्रतीक्षा; यह है इफर्टलेस इफर्ट; यह है कल्टीवेशन बाइ नो कल्टीवेशन; यह है अनभ्यास और साथ ही अभ्यास। इसे कहें सहज समाधि।
समाधि तो साधनी होती है, तो सहज कैसे होगी? सब समाधि असहज मालूम होगी। कुछ करेंगे, कुछ करेंगे तो समाधि होगी।
कुछ करेंगे तो जरूर समाधि होगी, लेकिन करने के पीछे अगर अनंत प्रतीक्षा हो तो समाधि सहज हो जाएगी। वह तनाव जो फल को पाने का है, नहीं होगा, तो समाधि सहज हो जाएगी।
तो मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं वह कोई इफर्ट और प्रयत्न और कल्टीवेशन और साधने की उतनी बात नहीं कर रहा हूं, एक अप्रयास में, एक शांति में, एक इफर्टलेसनेस में प्रतीक्षा की बात है। और तब घटना घट सकती है।
तो यूं नौ तत्व मैंने आपको भूमिका के लिए बताए, तीन तत्व मैंने आपको साधना के लिए बताए और तीन तत्व मैं आपको उस साधना के फलीभूत होने के लिए, उस साधना पथ पर चलने के लिए सहारे की तरह आपको कह रहा हूं। ये तीन आपके सहारे होंगे, नौ आपकी भूमिकाएं होंगी और तीन आपके प्रयत्न होंगे। अगर ये, इनका एक सामंजस्य और इनके माध्यम से एक वातावरण आपके चित्त में बन सके, तो बिल्कुल निश्चित मानिए, जिसको मैं अनंत दूरी पर कह रहा हूं वह बिल्कुल आपके हाथ के बगल में है। उसे आप हाथ भी बढ़ाएंगे तो पा लेंगे।
इतनी ही बात मुझे अपनी तरफ से कहनी थी, वह मैंने आपसे कह दी।
अब ये कुछ प्रश्न हैं, मुझे तो मूल्यवान नहीं मालूम होते, बड़ी दिक्कत
यह है। इसलिए... लेकिन आपको मूल्यवान मालूम होते हैं।

प्रश्नः मेरा सवाल लौटा दें!

प्रश्न करना तो आसान है, प्रश्न वापस ले लेना अच्छी बात है।

प्रश्नः क्योंकि मुझे भी ऐसा लगने लगा है कि मूल्यवान नहीं है।

हां, यह मूल्यवान, यही बात है, इसीलिए मैं कह रहा हूं। इसीलिए मैं कह रहा हूं, यह अगर लगे तो हम जिज्ञासा से मुमुक्षा की तरफ प्रवेश करते हैं। वही मैं समझा रहा था, वही हमको लगे। जिस दिन आपको लगे कि सारे प्रश्न फिजूल हैं, सच में मूल्य की बात हुई। जब तक आपको प्रश्न बड़े मूल्यवान लगते हैं, तब तक अभी आप समझ नहीं रहे। वे जो प्रश्न मूल्यवान लग रहे हैं वे इसीलिए लग रहे हैं कि बस एक कुतूहल है, उनको जान लेना है।
क्या करिएगा जान कर? यानी सवाल यह है, कभी यह पूछिए अपने से कि अगर मैंने इसको जान भी लिया तो क्या होगा? उस प्रश्न का मूल्य है जिसे जान लेने से आपमें फर्क हो जाएगा।
मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। दो वृद्ध सज्जन मेरे पास आए। वे मुझसे बोले, हमारा तीस साल का झगड़ा है उसे निपटा दीजिए। मैं बोला, क्या झगड़ा है? दोनों भले थे। एक जैन थे, एक ब्राह्मण थे। बोले, हम दोनों पड़ोसी हैं और बचपन के मित्र हैं, और ईश्वर ने जगत को बनाया या नहीं, यह झगड़ा है। तो मैं कहता हूं--वे जो ब्राह्मण थे वे बोले, मैं कहता हूं--ईश्वर ने बनाया और ये कहते हैं कि ईश्वर ने नहीं बनाया, यह अनादि है। इस पर तीस साल हो गए माथापच्ची करते, और सबके पास हम गए, जो भी गांव में आया उससे पूछने गए, और कोई हल नहीं मिलता। तो आपके पास आए हैं।
मैंने कहा, आपको इतने दिन हल नहीं मिला तो मेरे पास कैसे मिल जाएगा? और
हल अगर मिल सकता होता तो जरूर मिल गया होता। मैं आपको आपके प्रश्नों का उत्तर तो नहीं देता, मैं सिर्फ एक-एक प्रश्न आपसे और पूछ लेता हूं। मैं आपसे यह पूछता हूं कि अगर जगत को ईश्वर ने बनाया हो तो फिर आप क्या करिएगा? ब्राह्मण से मैंने पूछा, अगर जगत को ईश्वर ने बनाया हो तो फिर आप क्या करिएगा?

वे बोले, करेंगे क्या, एक अपना सत्य का पता चल जाएगा।
तो मैंने कहा, उसका कोई मूल्य नहीं है। जो सत्य आपके भीतर क्रांति न
कर देता हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। उस सत्य को जान लेने का कोई मूल्य नहीं है। सत्य का तो मूल्य तब है जब वह आपके भीतर क्रांति कर दे। तो आप एक ऐसे सत्य को जानने में तीस साल खराब किए जिसे जान लेंगे तो आपमें कुछ भी नहीं होगा। अगर मैंने कहा आपको, ईश्वर ने जगत को बनाया, इसके जानने से कोई फर्क आपमें होता हो, तो कृपा करके उस फर्क को करने में लग जाइए। उस फर्क को करने में लग जाइए।
और दूसरे को मैंने कहा, आपको क्या मतलब होगा इस बात को जानने से कि ईश्वर ने जगत को नहीं बनाया? आप क्या करिएगा फिर? क्या उससे होगा? और अगर उससे कुछ करने वाले हैं उस सत्य को जान कर, तो मान लीजिए कि ईश्वर ने जगत को नहीं बनाया और उस काम को शुरू कर दीजिए। तीस साल आपने व्यर्थ बकवास में गंवाए हैं।
और सारे पंडित और सारे दार्शनिक जीवन व्यर्थ की बकवास में गंवाते हैं। जो जानता है वह सोचता होगा कि कैसी बकवास में लोग लगे हुए हैं! कैसे व्यर्थ की बकवास में लगे हुए हैं! और पंडित कितने बच्चों जैसे मालूम होते होंगे। और कितनी बाल-बुद्धि मालूम होती होगी। जीवन का एक बहुमूल्य अवसर, जिसमें कुछ हो सकता था, उसमें हम क्या पूछते हैं और क्या सोचते हैं? जिससे हमें कोई मतलब नहीं है।
तो जिस दिन आपको अपना कोई प्रश्न फिजूल लगने लगे, समझिए कि उत्तर मिलने के करीब आ गए। प्रश्न का तो उत्तर नहीं है, लेकिन अगर प्रश्न फिजूल लगने लगे तो आपके भीतर उत्तर का जन्म होना शुरू हो जाएगा।
ये कुछ प्रश्न हैं। अच्छा तो होता कि आज आप कुछ ऐसे प्रश्न पूछ लेते
जो आपकी साधना के लिए उपयोगी होते। कुछ साधना के और तत्वों पर आप चर्चा कर लेते। जो आपके लिए रास्ते पर--जिस पर आपको चलने का ख्याल है अभी, हो सकता है कभी संकल्प भी हो जाए; जिसकी अभी इच्छा है, कभी वह संकल्प बन सकता है; इच्छा अच्छा लक्षण है, कम से कम शुरुआत तो है, कभी वह संकल्प हो सकती है--तो उस संबंध में कुछ पूछते तो वह उपयोगी होता और आपके लिए अर्थ का होता। लेकिन अगर वैसा कोई प्रश्न नहीं है... एक-दो प्रश्न इसमें हैं जो साधना से संबंधित हैं।

एक तो यह है, इसमें पूछा गया है कि आप दर्शन पर जोर देते हैं और विचार
को कोई मूल्य नहीं देते, उसकी कोई आवश्यकता नहीं मानते हैं। तो क्या विचार व्यर्थ है? उसका जीवन में कोई उपयोग नहीं है या विचार की कोई शक्ति नहीं है?

विचार की जरूर बड़ी शक्ति है। व्यर्थ उसे मैं इसलिए कहता हूं कि वह सत्य को जानने में समर्थ नहीं है। विचार को जो मैंने व्यर्थ कहा है वह विचार की व्यर्थता की दृष्टि से नहीं, सत्य को जानने की असामर्थ्य की दृष्टि से कहा है। सत्य को विचार नहीं जानता है। सत्य विचार से उपलब्ध नहीं है, इसीलिए विचार व्यर्थ है। विचार की कोई सार्थकता नहीं, यह मैंने नहीं कहा है। अगर मैं यह कहूं कि विचार की कोई सार्थकता नहीं, तो मैं आपसे क्या कर रहा हूं? यानी आपसे मैं विचार ही तो कर रहा हूं न! आप यहां बैठ कर तीन दिन से क्या कर रहे हैं? हम विचार कर रहे हैं।
विचार की एक ही सार्थकता है कि वह आपको यह दिखा दे कि कहां तक वह समर्थ
है और कहां तक वह असमर्थ है। विचार की एक ही सार्थकता है कि वह यह आपको दिखा दे कि उसकी सामर्थ्य कहां है और असामर्थ्य कहां है। विचार को अगर मनुष्य ठीक से अनुसरण करे तो उसे यह दिखाई पड़ जाएगा कि पदार्थ का जहां तक जगत है वहां तक विचार अनुसंधान करने में समर्थ है। "पर" का जहां जगत है, "अन्य" का, वहां विचार सहयोगी है। जहां "स्व" का सवाल है, वहां विचार नहीं, दर्शन सहयोगी है।
तो विचार जो है उससे साइंस का जन्म होता है। और इसीलिए साइंस कभी आत्मा को नहीं जान सकेगी, क्योंकि वह विचार से जन्मी है। साइंस कभी आत्मा

को नहीं जान सकेगी। वह जो भी जानेगी वह सब अनात्मा होगा। वह कितने ही गहरे जाए, वह अनात्म की पर्त को पार नहीं करेगी। विचार अनात्म के ऊपर नहीं जाता। इसलिए नहीं जाता कि जो विचार करता है स्वयं, वह विचार से कैसे जाना जा सकता है?
यह मेरा हाथ है, इस हाथ से मैं दुनिया की सारी चीजें पकड़ लूं, इसी हाथ
को नहीं पकड़ सकता हूं। एक चिमटे से मैं दुनिया की सारी चीजें पकड़ लूं, उसी चिमटे को नहीं पकड़ सकता हूं। यानी चिमटा समर्थ होगा सबको पकड़ने में, अपने को पकड़ने में असमर्थ होगा।
विचार जो है वह माध्यम है मनुष्य के चैतन्य का, वह सारे जगत को उससे समझ ले और पकड़ ले। एक जगह वह असमर्थ है--स्वयं को पकड़ने में। क्योंकि वह उसके पीछे पड़ जाता है। विचार आपकी शक्ति है, इसलिए आपको नहीं पकड़ सकती है। और सबको पकड़ सकती है। अगर अपने को पकड़ना है तो यह विचार जब शून्य होगा और दूसरे को पकड़ने की प्रक्रिया बंद होगी, तब उसका उदघाटन होगा जो विचार के पीछे था, जिसका यह विचार था। विचार छूटे तो विचार के मूल-स्रोत और उद्गम की पकड़ आपको आ जाएगी।
तो साइंस विचार है, धर्म विचार नहीं है।
जैसा मैंने सुबह आपको कहा कि सब विचार पराए हैं, सब विचार पराए हैं, पर पराए विचारों का भी उपयोग है। साइंस में तो पूरा उपयोग है। कल तक जिस वैज्ञानिक ने सोचा है, उसके आगे दूसरा वैज्ञानिक सोचेगा। इसलिए साइंस एक ट्रेडीशन है, रिलीजन ट्रेडीशन नहीं है। महावीर ने जहां तक सोचा, उसके आगे आप सोचिएगा? आइंस्टीन ने जहां तक सोचा, उसके आगे का वैज्ञानिक सोचेगा। न्यूटन ने जहां तक सोचा, आइंस्टीन उसके आगे सोचेगा। आप सोचते हैं कि महावीर ने जहां तक सोचा, उसके आगे आप सोचिएगा? जहां से महावीर ने प्रारंभ किया, धर्म में वहीं से प्रारंभ करना होगा। और विज्ञान में जहां पीछे का वैज्ञानिक अंत करता है वहां से प्रारंभ होता है। इसलिए विज्ञान में परंपरा होती है, धर्म में परंपरा नहीं होती। धर्म में परंपरा नहीं हो सकती। परंपरा का मतलब हैः पीछे वाले के कंधे पर हम खड़े होंगे। महावीर के कंधे पर आप खड़े नहीं हो सकते।
हम सोचते हैं--मेरी दिक्कत है यह--हम सोचते हैं कि परंपरा का मैं विरोध करता हूं तो मैं बड़ी अश्रद्धा प्रकट कर रहा हूं। परंपरा का मतलब है कि महावीर के आगे शुरू करिए। जहां महावीर छोड़ते हैं वहां से शुरू करिए तो परंपरा होगी। और जहां महावीर शुरू करते हैं वहीं आपको शुरू करना पड़े, उसी जगह से, तो परंपरा कहां है? वह महावीर की व्यक्तिगत साधना हुई, आपकी अपनी व्यक्तिगत साधना होगी।
साइंस व्यक्तिगत साधना नहीं है, सामूहिक साधना है। और धर्म वैयक्तिक साधना है। इसलिए उधार और पर के विचार साइंस में उपयोग के हैं, स्वयं को जानने में बिल्कुल उपयोग के नहीं हैं।
विचार शक्ति है, वही विज्ञान है। लेकिन वह शक्ति मात्र है, स्वयं शक्ति का स्रोत और उद्गम वह नहीं है। जिसकी वह शक्ति है वह पीछे है। विचार न हो तो भी आप होंगे। विचार न हो तो भी आप होंगे, विचार है तो भी आप हैं। विचार के होने न होने पर आपका होना निर्भर नहीं है। हां, आपके होने पर विचार का होना जरूर निर्भर है।
इस फर्क को समझ लीजिए! विचार के होने पर आपका होना निर्भर नहीं है, आपके होने पर विचार का होना निर्भर है। तो आपको विचार से नहीं पाया जा सकता। आपको निर्विचार से पाना होगा।
इसलिए समस्त योग विचार-त्याग है, समस्त योग विचार-विसर्जन है।
ध्यान, समाधि विचार-मुक्ति, विचार-शून्यता है।
इससे एक दिक्कत होती है ख्याल में कि जब मैं बार-बार जोर देता हूं कि विचार-विसर्जन, विचार-मुक्ति, विचार-शून्यता, तो आपको लगता है कि अगर निर्विचार हो गए और बुद्धि खो दी तो बड़ी दिक्कत हो जाएगी। फिर कुछ भी कर रहे हैं, क्योंकि अब कोई विचार है नहीं।

आपको पता नहीं कि जब विचार शून्य होगा तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम विवेक है। विवेक से कभी भूल होती ही नहीं। विचार से भूल-चूक होती है, क्योंकि विचार टटोलना है।
एक अंधा आदमी है, उसके पास एक लकड़ी है, वह लकड़ी से टटोल कर दरवाजा खोज लेता है और निकल जाता है। अगर हम उसकी आंख का इलाज करें, तो वह पूछेगा कि जब आंख ठीक हो जाएगी तो फिर लकड़ी का उपयोग करूंगा कि नहीं? तो हम उसको कहेंगे, लकड़ी बिल्कुल फिजूल है। आंख ठीक हुई तो लकड़ी बिल्कुल फिजूल है। वह कहेगा, यह तो बड़ी मुश्किल है, अगर लकड़ी न हुई तो दरवाजे से निकलेंगे कैसे? ठीक है, उसका जिंदगी भर का अनुभव यह है, लकड़ी से दरवाजे से निकलता है टटोल कर। और हम उससे कहें कि लकड़ी बिल्कुल फिजूल है। तो वह कहेगा, यह तो आप बड़ी गड़बड़ बात कर रहे हैं, हम तो दीवाल से टकरा जाएंगे।
अभी हम विचार की लकड़ी से टटोल-टटोल कर, अंधे लोग हैं, विचार की लकड़ी से टटोल-टटोल कर जिंदगी में रास्ता बनाते हैं। हालांकि रास्ता क्या बनाते हैं! दिन-रात एक-दूसरे के रास्ते पर टकराते रहते हैं। रास्ता क्या बनाते हैं! एक-दूसरे की, एक-दूसरे की जान पर टकरा रहे हैं और एक-दूसरे के ऊपर रोज गिरते रहते हैं, रास्ता-वास्ता कुछ नहीं बनता। क्योंकि रास्ता वह है जो कहीं पहुंचा दे। जो कहीं पहुंचाता ही नहीं वह रास्ता क्या है! जहां शुरू करते हैं जिंदगी, करीब-करीब वहीं, उसी भूमि पर, उसी चौराहे पर मर जाते हैं। कोई रास्ता-वास्ता मिलता है कहीं? रास्ता वह है ही नहीं जो कहीं पहुंचाता नहीं। तो हम चलते जरूर हैं, रास्ते पर नहीं होते। बस किसी तरह इस भीड़-भड़क्का में एक-दूसरे को धक्के देते रहते हैं। उस धक्के में थोड़ी हलन-चलन होती है तो ऐसा लगता है कि चल रहे हैं। जैसे भीड़ में एक-दूसरे को धक्का दे रहे हों और फिर इधर आ गए और फिर उधर हिल गए, तो ऐसा लगता है कि चल रहे हैं, लेकिन कहीं पहुंचते नहीं।
तो विचार किसी तरह जिंदगी गुजार देता है। जैसे अंधा टटोल-टटोल कर रास्ते खोज लेता है। जब विचार शांत हो जाता है तो विवेक का जागरण होता है। प्रज्ञा का जागरण होता है विचार के शून्य हो जाने पर। जिसे अंतर्दृष्टि कहें, प्रज्ञा कहें, इनसाइट कहें, वह जगती है। और उस आंख को, जो शुभ है वह दिखाई पड़ता है, जो अशुभ है वह दिखाई पड़ता है। उसे सोचना नहीं पड़ता कि क्या करने जैसा है और क्या नहीं करने जैसा है। उसे दिखता है कि क्या करने जैसा है। वहां कोई विकल्प, कोई ऑल्टरनेटिव नहीं होता। वहां एक ही जो दिखता है। अंधा यहां खड़ा हो तो उसके सामने ख्याल आता होगा कि पता नहीं दरवाजा इस तरफ है कि दरवाजा उस तरफ है। एक अंधा यहां बीच में खड़ा है तो उसे विचार आता होगा कि पता नहीं दरवाजा इस तरफ है कि दरवाजा उस तरफ है कि सामने है। टटोलेगा। टटोलने के पहले कोई कल्पना से हाइपोथेटिकल चुन लेगा कि बाएं जाऊं, शायद यहां दरवाजा हो। न हो तो सोचे अब दाएं जाऊं, शायद वहां दरवाजा हो। अंधे के सामने कई विकल्प होंगे, उनमें से एक कल्पना के माध्यम से उसे चुन कर और टटोलना पड़ेगा।
विज्ञान हाइपोथीसिस से चलता है। तो एक कल्पना के माध्यम से सोच लेते हैं कि इधर देखें, शायद मिल जाए। मिल जाता है तो सिद्धांत बन जाता है, नहीं मिलता तो दूसरी तरफ टटोलने लगते हैं।
अंतर्दृष्टि का अर्थ है कि उसके आंख है। आंख वाला आदमी यहां खड़े होकर
यह थोड़े ही देखता है कि कहां दरवाजा? शायद इधर हो कि शायद उधर हो! जहां दरवाजा है, दिखता है।
विचार जब शांत हो जाता है और विचार की विकलता... । विकलता है विचार की।
और विचार जो है एक तरह की एंग्.जाइटी और चिंता है। और एक तरह की तरंगों की, तनाव की स्थिति है। जब वह शांत हो जाती है, तो जो विचार के माध्यम से टटोल-टटोल कर चलता था वह अकेला रह जाता है। वह विवेक जो विचार की लकड़ी पकड़े हुए था, अब अकेला रह जाता है। सब तनाव, सब शांति शून्य होती है, तो आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। क्या ठीक है, वह आपको दिखता है। वह आपको दिखता है। और जब सत्य दिखता है, शुभ दिखता है, उसके विपरीत जाना असंभव होता है। वहीं आपको जाना पड़ता है। जब दरवाजा दिखता है तो दीवाल में जाना बिल्कुल असंभव है। आप सोचते हैं कि जा सकते हैं? जब दरवाजा दिखता है तो दीवाल में जाना

असंभव है। और जब आपकी अंतर्दृष्टि को, क्या ठीक है, यह स्पष्ट दिखता है, असंदिग्ध, तो फिर यहां-वहां जाना मुश्किल है।
प्रज्ञा के जागरण पर अपने आप सारा आचरण सम्यक और शुद्ध हो जाता है। जीवन में विचार के खोने से, विचार के शून्य होने से, आप कुछ खोते नहीं, कुछ पाते हैं।
पर साधना से विचार खोना एक बात है और विचार का न होना बिल्कुल दूसरी बात है। एक मूढ़बुद्धि है, मंदबुद्धि है, विचार-इचार नहीं। तो हमको लगता है कि इसमें विचार नहीं है। ऐसी बात नहीं; विचार उसमें है। ऐसा मंदबुद्धि खोजना कठिन है जिसमें विचार न उठते हों। असंगत उठते हैं, ज्यादा असंगत उठते हैं। विचारहीन नहीं होता मंदबुद्धि, खूब विचार होते हैं उसके भी। असंगत होते हैं, अनर्गल होते हैं, उनके बीच कोई संगति नहीं होती। विचार तो बहुत होते हैं। तो आप उसको कहते हैं कि अविचारी है। अविचारी इसलिए कहते हैं कि उसमें विवेक कम है। विचार कम है इसलिए नहीं। उसको अविचारी कहते हैं, क्योंकि उसमें विवेक कम है। और विवेक, मैं आपको बताऊं, इसीलिए कम है कि विचार बहुत ज्यादा है। असंगत विचारों की भीड़ उसके भीतर ज्यादा है इसलिए विवेक कम है। जिस-जिस मात्रा में विचार कम होता चला जाएगा, विवेक ज्यादा होता चला जाएगा। जिस दिन पूर्ण विचार शून्य होगा, उस दिन पूर्ण विवेक जाग्रत होता है। और तब प्रकाश की भांति आपका पथ आलोकित हो जाता है। फिर आप चलते हैं तो टटोलते नहीं हैं, आपको दिखता है। उस अंतर्दृष्टि की उपलब्धि खोना नहीं है, पाना है।
इसलिए विचार खोने में कोई संकोच न करें। वह अंधे की लकड़ी की तरह है, डरें न कि आंख खुल जाएगी तो इस लकड़ी का क्या करेंगे? उसके कई काम हैं, आग जला सकते हैं घर में, या कुछ और कई काम कर सकते हैं।

एक प्रश्न हैः आत्म-धर्म और राष्ट्र-धर्म का एक-दूसरे से क्या संबंध है?

साधना की दृष्टि से तो कोई संबंध नहीं है। परिणाम की दृष्टि से बहुत संबंध है।
इसे समझ लेना उपयोगी होगा। जब कोई व्यक्ति धर्म को साधता है, तब तो किसी दूसरे से कोई संबंध नहीं होता। अगर मुझे धर्म साधना है तो निपट अकेला मैं साधूंगा। आप उसमें न साथी होंगे, न सहयोगी होंगे। न समाज, न राष्ट्र, कोई साथी-सहयोगी नहीं होगा। वह यात्रा बिल्कुल असंग और अकेली होगी। दो आदमी एक साथ ध्यान में नहीं जा सकते, न समाधि में जा सकते हैं। वह निपट अकेला रास्ता है अपने भीतर जाने का। उसमें कोई साथ नहीं है। इसलिए वहां कोई समाज नहीं है। इसलिए सामूहिक साधना जैसी कोई चीज नहीं होती। साधना हमेशा वैयक्तिक है, वह इंडिविजुअल है।
तो धर्म की साधना तो वैयक्तिक है, क्योंकि साधना में जानना है स्वयं
को और स्वयं को जानने में दूसरे का क्या साथ और क्या सहयोग? तो कोई साथी नहीं, कोई सहयोगी नहीं। वह रास्ता अपना है और अकेला ही तय करना है। वह बिल्कुल एकाकी मार्ग है।
परसों हम एक भजन सुनते थेः कि अगर तेरी कोई पुकार न सुने तो तू अकेला
ही चल।
असल में पुकार ही किसको दे रहे हैं? वहां अकेले ही जाना पड़ेगा, पुकार
की कोई गुंजाइश नहीं। अकेला ही चलना पड़ेगा। पुकार देने की फिक्र क्यों कर रहे हैं? पुकार देने का कोई मतलब नहीं है वहां। अकेले ही जाना होगा। वह निपट असंग और एकाकी है।
तो धर्म की साधना तो एकांत और अकेले और स्वयं की है। लेकिन धर्म की साधना का जो फल उपलब्ध होगा आपको वह सामाजिक होगा। आत्मा तो वैयक्तिक है, आचरण वैयक्तिक नहीं है। आत्मा वैयक्तिक है, वह मेरी है, लेकिन आचरण वैयक्तिक नहीं है। आचरण का मतलब? आचरण वहां शुरू होता है जहां मैं दूसरे से संबंधित होता हूं। मेरे जो संबंध हैं लोगों से, मेरा जो व्यवहार है लोगों से, वह मेरा आचरण है। आचरण सामूहिक है, आत्मा वैयक्तिक है।

जब आत्म-ज्ञान होगा, आपका पूरा आचरण बदल जाएगा। अज्ञान था तो एक तरह
का आचरण था, ज्ञान होगा तो दूसरे तरह का आचरण होगा। वह आचरण ही संस्कृति को बनाता है। वह आचरण समाज को, राष्ट्र को बनाता है। तो सीधा तो धर्म का राष्ट्र से कोई संबंध नहीं है। न किसी समाज से कोई संबंध है, न देश-काल से कोई संबंध है। लेकिन परोक्ष, आचरण के माध्यम से, जब आत्मा सधती है तो आचरण राष्ट्रीय संपत्ति होता है, सामाजिक संपत्ति होता है।
तो धर्म की साधना शाश्वत है और वैयक्तिक है और धर्म की साधना से उत्पन्न हुआ फल सामयिक है और सामाजिक है। साधक को तो अकेले में चला जाना होता है, लेकिन सिद्ध को समाज में आ जाना होता है। महावीर साधने गए तो जंगल भाग गए, लेकिन सध गया, फिर जंगल में क्यों नहीं रहे आए? मोहम्मद भाग तो पहाड़ पर गए थे साधना के लिए, फिर जब सध गया तो वहीं क्यों नहीं रहे आए? जब आत्मा उपलब्ध हुई तो वह जो आचरण और प्रकाश और सुगंध चारों तरफ फैलने लगी, वह सामूहिक थी, वह मजबूरी थी कि आनंद बंट जाए। आनंद की उपलब्धि तो वैयक्तिक, उसका बंटवारा सामूहिक है। उसका बंटवारा सामूहिक है।
तो महावीर को अगर विचार करें तो एक तो उनका शाश्वत धर्म है, जो उन्हें अपनी वैयक्तिक आत्मा की साधना में उपलब्ध हुआ है। और एक उनके आचरण का लोक धर्म है, जो उनके चारों तरफ परिव्याप्त हो गया है।
तो जब कोई कहता हो कि समाज-सेवा धर्म है, तो गलत कहता है। साधना की दृष्टि से बिल्कुल गलत कहता है। अगर कोई किसी को सिखाता हो कि यही साधना है कि तुम समाज की सेवा करो, तो बिल्कुल ही गलत और झूठी बात कह रहा है। अगर कोई समाज-सेवा को धर्म-साधना कहता हो, तो गलत कह रहा है। क्योंकि धर्म-साधना तो वैयक्तिक है, समाज-सेवा से उसका क्या लेना-देना! या राष्ट्र-सेवा से क्या लेना-देना! या राष्ट्रीय-आंदोलन से क्या लेना-देना! लेकिन हां, अगर यह शांति सध जाए वैयक्तिक रूप से तो जरूर उस व्यक्ति का जीवन समाज-सेवा में परिणत हो जाएगा।
सेवा तो धर्म में नहीं ले जाती है, लेकिन धर्म सेवा में ले जाता है। तो
जो समाज-सेवा को धर्म समझता हो, वह गलत समझता है। जो धर्म को ही समाज-सेवा समझता हो, वह ठीक समझता है, सम्यक समझता है। सेवा धर्म नहीं है, धर्म जरूर सेवा है। यह भेद बहुत बुनियादी है।
इसलिए अगर आपने सोचा कि समाज-सेवा करेंगे--कहीं हरिजन-उद्धार करेंगे, कहीं जमीन बंटवाएंगे, कहीं कुछ और करेंगे--अगर आपने यह सोचा और आपने सोचा इससे आत्मा की उपलब्धि होगी, तो आप बिल्कुल गलती में हैं। इससे कुछ आत्मा की उपलब्धि नहीं होगी। इससे आप एक अच्छे आदमी, एक सज्जन आदमी बन जाएंगे। आप लोकप्रिय होंगे, आपमें एक सूक्ष्म अहंकार का रस और मजा होगा, और कुछ नहीं होगा। सेवक होने का सुख आप लेंगे, सेवा का सुख न ले पाएंगे। सेवक होने का सुख एक है, सेवा का सुख बिल्कुल दूसरा है।
लेकिन अगर आप धर्म-साधना में प्रविष्ट होते हैं, जो कि नितांत वैयक्तिक है, तो एक दिन ऐसा आएगा कि वह साधना आपके जीवन को सेवा में परिणत कर देगी। अभी वह जीवन स्वार्थ है, तब वह जीवन सेवा हो जाएगा। आत्म-अज्ञान में जीवन स्वार्थ होता है, आप जो भी करें वहां स्वार्थ किसी न किसी रूप में मौजूद रहेगा। और आत्म-ज्ञान में जीवन सेवा होता है, आप कुछ भी करें वहां स्वार्थ मौजूद नहीं रह सकता है।
मेरे लिए धर्म बुनियादी है, परिणाम उसका जरूर होगा। इसलिए पुराने उन सारे लोगों ने जिन्होंने धर्म को जाना, यह बड़ी हैरानी की बात है कि उन्होंने क्यों नहीं यह कहा कि समाज-सेवा धर्म है! यह कभी विचार आपने किया? जमीन पर अभी करीब सौ, डेढ़ सौ वर्षों से यह ख्याल धीमे-धीमे पैदा होना शुरू हुआ कि समाज-सेवा ही धर्म है। रवींद्रनाथ ने गीत गाया है कि कहां तुम भगवान को खोज रहे हो? वह वहां है जहां किसान जमीन तोड़ते हैं और जहां मजदूर पत्थर तोड़ते हैं।
यह बात अच्छी लगती है, कविता भी बड़ी अच्छी है यह। लेकिन यह एक सामाजिक,
एक सामाजिक सुधार आंदोलन होगा, लेकिन यह कोई धर्म से संबंधित बात नहीं है। भगवान न तो वहां है जहां दुकानदार दुकान करता है और न वहां है जहां पूंजीपति शोषण करता है और न वहां है जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। और अगर है

तो फिर तीनों में है। यानी वह एक सामाजिक इंफेसिस तो है सुधार की, उससे कोई मतलब नहीं है, लेकिन पिछले सौ वर्षों में सुधार आंदोलन धर्म को डुबाए दे रहे हैं और खाए जा रहे हैं। और कुल कारण इतना है कि धर्म का जो नाम है और जो मूल्य है, उस नाम और मूल्य का हम समाज-सुधार के लिए शोषण करना चाहते हैं, उसका फायदा लेना चाहते हैं। वृत्ति बुरी नहीं है, लेकिन उसे अलग ही चलाया जाए तो बेहतर है। सामाजिक सुधार एक बात है, सुखद है, अच्छी है, होनी चाहिए। धर्म बिल्कुल दूसरी बात है। और मेरा मानना यह है कि धर्म में जो प्रतिष्ठित होगा, वही वस्तुतः, वही वस्तुतः सामाजिक हो पाता है। क्योंकि धर्म में प्रतिष्ठित होकर ही वह अहंकार टूटता है जो उसे अलग किए है। वह निर-अहंकार हो जाता है। निर-अहंकारिता ही सेवा है, निर-अहंकारिता ही प्रेम है, निर-अहंकारिता ही वह है जिसे हम चाहें कि व्यक्तियों में हो। और अहंकार सारी बुराई की जड़ है, जो सारे जीवन को विषाक्त कर देती है।
तो राष्ट्र-धर्म की बात, समाज-धर्म की बात न भी करें तो कोई हर्ज नहीं है। यानी अगर धर्म की ही बात पूरी हो जाए तो वह अपने आप हो जाएगा, वह इसका आया हुआ कांसीक्वेंस, इसका सहज परिणाम है। धर्म सधे, सब अपने से सध जाएगा। उससे बड़ी सधने की और कोई बात नहीं है। और नारे और स्लोगन्स--कि यह हरिजन-उद्धार, या वेश्याओं का उद्धार, या विधवाओं का विवाह, या गरीब बच्चों का पढ़ाना-लिखाना यही धर्म है--ऐसा जो हम जोर देते हैं, ये बातें बुरी नहीं हैं, सब अच्छी हैं, लेकिन यही धर्म है, ऐसा जो कह देते हैं तो गलती बात हो जाती है। ये सब लोक-धर्म हैं। होने चाहिए, हों तो बहुत अच्छा है। लेकिन ये धर्म नहीं हैं। धर्म से इसका कोई वास्ता नहीं है।
धर्म तो साधना है समाधि की, धर्म तो अंतःप्रवेश है। वह तो एक पूरी अलग दुनिया है व्यक्ति के भीतर जाने की, एक अलग रास्ता है। वह जरूर घटित हो जाएगा तो वैसा व्यक्ति, उसका जीवन, सारे जगत में जो भी अशुभ है, उसके विसर्जन का माध्यम होगा। उसके भीतर से अशुभ विसर्जित हो जाएगा। धार्मिक होकर पहली दफा व्यक्ति सामाजिक, बल्कि जिसको हम कहें जागतिक, सारे जगत से एक हो जाता है, क्योंकि उसका स्व और वह अहंकार, वह ईगो टूट जाती है और खंडित हो जाती है।
मैं समझता हूं बात मेरी आपको समझ में आई होगी। प्रश्न तो बहुत रह गए, यहां लिखे हुए रह गए, बहुत से अनलिखे आपके मन में रह गए होंगे, फिर कभी मिलते हैं तो उनकी चर्चा हो सकेगी। और धन्य तो वे होंगे, भाग्यशाली तो वे होंगे, जिनके वे बिना पूछे मिट जाएं, जिनके भीतर से वे टूट जाएं और वे निष्प्रश्न हो जाएं। जिस साधना की इस बीच हमने चर्चा की है, अगर उस पर थोड़ी गति हुई, तो जरूर वे अपने आप विसर्जित हो जाने को हैं।

समाधि कमल
आठवां प्रवचन

आज का दिन अंतिम है

आज की रात तो हम विदा होंगे। इन तीन दिनों में बहुत सी बातें कही हैं।
और इतने प्रेम से, इतनी शांति से आपने उन्हें सुना है कि उनका परिणाम निश्चित होगा। वे आपके भीतर जाकर बीज बनेंगी और आपके जीवन में उनसे कुछ हो सकेगा।
इस आशा में ही उन बातों को मैं कहा हूं। और जीवन की एक संक्षिप्त व्यवस्था साधक की कैसी हो, उसकी रूपरेखा आपके सामने स्पष्ट हुई होगी। यह भी लगा होगा कि क्या करने जैसा है। अब यह आपके ऊपर है कि जो प्रीतिकर लगा है वह जीवन का हिस्सा हो जाए।
मनुष्य की कमजोरी यह नहीं है, यह बिल्कुल नहीं है कि वह पहचान नहीं पाता कि क्या ठीक है। कमजोरी वहां है जहां वह पहचान करने के बाद भी, जो गलत है, उस पर ही चले चला जाता है। बहुत दिन गलत के भीतर रहने पर गलत से भी मोह हो जाता है। एक कैदी को बहुत दिन जेल के भीतर बंद रहने पर कारागृह से भी मोह हो जाता है।
फ्रांस की क्रांति में एक घटना घटी। वहां वेसटाइल का किला है, वहां फ्रांस के सारे बड़े और पुराने कैदी रखे जाते थे, जिनकी आजीवन कारावास की सजा हो, या मृत्यु की सजा हो, या और लंबी सजाएं हों। जब फ्रांस में क्रांति हुई तो क्रांतिकारियों ने सत्ता को उलट दिया और सोचा वेसटाइल के किले को तोड़ दें, ताकि जो आजन्म से वहां बंद हैं वे मुक्त हो जाएं। उन्होंने सोचा कि इससे कारागृह के लोग बड़े प्रसन्न होंगे। उनकी मुक्ति का आनंद अपरिसीम होगा। वे गए और उन्होंने कारागृह को तोड़ दिया, बंदियों को मुक्त कर दिया और उनसे कहा, अब तुम कारागृह के बाहर हो! अब तुम स्वतंत्र हो! अब तुम मुक्त हो! वे खड़े होकर सुनते रहे, उनकी कुछ समझ में नहीं आया। कोई उसमें तीस वर्ष से बंद था, कोई चालीस वर्ष से, उसमें ऐसे भी थे जो पचास वर्षों से बंद थे। उन्होंने सुना, लेकिन उनकी समझ में नहीं आया। उनमें से किसी ने पूछा, आप क्या कहते हैं? क्या कारागृह टूट गया? क्या हम मुक्त हैं? क्या यह संभव है? क्रांतिकारियों ने कहा, देखते नहीं दीवालें तोड़ दी हैं! देखते नहीं सब व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई है! तुम जा सकते हो।
वे बहुत डरे हुए, बहुत घबड़ाए हुए से बाहर निकले, अविश्वस्त, उन्हें विश्वास नहीं था। और सबसे बड़ी हैरानी की जो बात हुई, जो मनुष्य के इतिहास में कभी पहले नहीं हुई थी, सांझ को उनमें से आधे से ज्यादा कैदी वापस लौट आए। उन्होंने कहा, बाहर अच्छा नहीं लगता है। उन्होंने कहा, बाहर अच्छा नहीं लगता है, हम यहीं ठीक हैं। अब यहां जिंदगी बीत गई, अब थोड़े-बहुत दिन के लिए और नई व्यवस्था, कौन उलझन दे!
यह आश्चर्यजनक लगता है कि आप कैद में वापस लौट जाएं और कहें कि हम यहीं ठीक हैं, अब जिंदगी यहां बीत गई, अब कौन नई व्यवस्था के झंझट में पड़े! पुराने को छोड़ने में, गलत को भी छोड़ने में जो दिख गया हो और ठीक जो दिखाई पड़ता हो उस रास्ते पर भी चलने में एक बड़े दुर्गम साहस की जरूरत होती है।
धार्मिक आदमी का जीवन साहस से निर्मित होता है और साहस से बनता है। जो अतीत के प्रति मुंह मोड़ सकता है और जो गलत रास्ते को देख कर बीच रास्ते से लौट सकता है, हो सकता है बुरा होता हो, लेकिन जो उसे व्यर्थ दिख जाए वह उसे छोड़ने का साहस कर सकता है, वह अभी युवा है, अभी वह बूढ़ा नहीं हुआ, अभी उसमें साहस है, अभी उसके जीवन में कोई क्रांति घटित हो सकती है। साहस के बिना कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता है। कमजोर, साहसहीन धार्मिक नहीं हो सकते हैं।
लेकिन हम देखते क्या हैं? हम देखते हैं कि जितने साहसहीन हैं वे सब धार्मिक दिखाई पड़ते हैं और जितने कमजोर हैं वे सब धार्मिक हो जाते हैं।
उनका धर्म भय से निकलता है, घबड़ाहट से, सुरक्षा की आकांक्षा से निकलता है।
वे धार्मिक नहीं हो सकते हैं।

महावीर ने कहा हैः अभय धार्मिक आदमी की बुनियाद है, आधार है। फियरलेसनेस, जो उस अभय पर अपने को खड़ा करेगा वह सत्य तक पहुंच सकता है। जो भय पर अपने को खड़ा करेगा वह सत्य तक नहीं पहुंच सकता।
एक साहस चाहिए कि हम प्रयोग कर सकें, एक हिम्मत चाहिए कि हम उस भूमि में चल सकें जिसमें हम कभी नहीं चले और उन रास्तों पर पैर रख सकें जो पगडंडियां बिल्कुल अपरिचित हैं। जो परिचित के, जो नोन के, जो ज्ञात के घेरे में घूमेगा वह कभी धर्म में प्रवेश नहीं कर सकता। अज्ञात में, अननोन में, जो अपरिचित है, अनजान है, उस रास्ते पर जिस पर हमारे पैर कभी नहीं पड़े, जो उन पर पैर रखने का साहस नहीं कर सकता वह कभी धर्म में प्रवेश नहीं कर सकता।
तो धर्म के लिए एक आधारभूत साहस की जरूरत है। एक ऐसे साहस की कि हम अपरिचित में प्रवेश कर सकें। अपरिचित भय देता है। असल में भय अपरिचित से होना स्वाभाविक है। अनजान रास्ते, जिनसे हम परिचित नहीं हैं। और सबसे अनजान रास्ता एक ही है वह आत्मा का रास्ता है, उससे हम बिल्कुल परिचित नहीं हैं। इस जगत में उतना अनजान रास्ता कोई भी नहीं है। उतना अपरिचित, उतना अंधेरा, उतना पता नहीं आगे क्या हो, उतना अकेला कि साथ कोई भी नहीं है, उतना अकेला रास्ता कोई भी नहीं है। इसलिए उस अकेलेपन से बचने के लिए, उस साहस से बचने के लिए, उस हिम्मत से, जो अज्ञात में छलांग लेने के लिए करनी पड़ती है, हमने ऐसे झूठे धर्म के नाम पर सामाजिक व्यवस्थाएं बना ली हैं जिनमें साहस की कोई जरूरत नहीं है। हमने ऐसे थोथे क्रियाकांड बना लिए हैं जिनमें साहस की कोई जरूरत नहीं है। हमने धर्म की ऐसी सस्ती शक्ल बना ली है जिसमें साधना की कोई जरूरत नहीं है। वह हमने इसलिए किया है ताकि हम अपने को एक धोखा दे सकें कि हम धार्मिक हो रहे हैं और धार्मिक होने का जो साहस हमें करना पड़े उससे भी बच जाएं।
तो हमने कैसे-कैसे सस्ते उपाय निकाल लिए हैं! हमने उपाय निकाल लिए हैं बहुत ही सस्ते और हम अपने को धोखा दे लेते हैं कि इस भांति हम धार्मिक हो गए। जब कि हम धार्मिक नहीं हुए, हमने केवल एक बड़े साहस से अपने को बचा लिया है और हमने एक थोथा आवरण ओढ़ लिया है। सस्ते में--कोई टीके लगा कर, कोई मंदिर जाकर, कोई पोथी बगल में दबा कर, कोई कपड़े ऐसे-वैसे पहन कर--इस भांति हम अपने को धोखा दे लें, लेकिन यह धोखा घातक है। और यह घातक इसलिए है कि जीवन का विश्वास नहीं है। अभी हम आज यहां विदा होते हैं, नहीं कहा जा सकता हम फिर दुबारा मिल सकें। नहीं कहा जा सकता यह दुबारा मिलना फिर हो। यह जमीन की यात्रा इतनी अजीब है कि रास्तों पर जिनसे हम मिलते हैं, कौन जाने रास्ते दुबारा उनसे कटेंगे या नहीं कटेंगे!
मैं अभी एक जगह था, एक यात्रा पर था। वर्षा थी, एक नाले से निकलते थे,
तो कार आगे नहीं जा सकी, नाले पर पूर था, तो दो घंटे तक वहां रुकना पड़ा। मेरे पीछे दो गाड़ियां और आकर रुकीं, वे भी नहीं जा सकीं। जो उनमें थे, अपरिचित थे। मुझे वहां बैठा देख कर सहज मेरे पास चले आए, उनसे कुछ बातें हुईं, उनसे मैं कुछ बात किया। दो-ढाई घंटे वहां रुकना पड़ा। वे मुझसे बोले, आपकी बातें बड़ी प्रीतिकर हैं और बड़ा सौभाग्य हुआ कि उनको हमने सुना और कभी समय मिला तो हम उन पर जरूर प्रयोग करेंगे।
मैंने उनसे कहा, वे बातें अगर प्रीतिकर होतीं और वे बातें अगर सौभाग्य मालूम होतीं, तो आप यह न कहते कि कभी समय मिला तो उनको करेंगे। यह असंभव था। अगर वे प्रीतिकर होतीं, अगर वे सौभाग्य मालूम होतीं, तो वे इसी क्षण करने जैसी लगतीं। क्योंकि जब समय मिलेगा तब उन्हें करेंगे, तो बीच में जो करते रहेंगे वह ज्यादा सौभाग्यपूर्ण होगा, ज्यादा महत्वपूर्ण होगा; उसे पहले कर लेंगे, फिर इन्हें बाद में देखेंगे।
फिर मैं उनसे कहा कि यह स्मरण रहे कि हम अजीब लोग हैं! जो क्षुद्र है,
जो व्यर्थ है, उसे हम रोज निबटा लेते हैं। जो विराट है, जो सार्थक है, उसे कल पर टाल देते हैं। और अक्सर वह कल कभी नहीं आ पाता है। बहुत कम जीवन हैं जिनमें वह कल आता है जब हम विराट को करें। क्योंकि क्षुद्र तो रोज मौजूद है। वह चुक नहीं जाएगा, क्षुद्र रोज मौजूद है। जो प्यास आज लगी, कल भी लगेगी; जो भूख आज लगी, वह कल भी लगेगी; जो कपड़े आज पहनने पड़े, वे कल भी पहनने

पड़ेंगे; जिस मकान में आज रहना पड़ा, कल भी रहना पड़ेगा। जो आज है वह कल भी होगा। क्षुद्र रोज खड़ा हो जाता है, वह विलीन नहीं होता। क्षुद्र के साथ एक खूबी है, आप उसे कितना ही विलीन करें, वह नित-नवीन, उतना का उतना, शायद ज्यादा भी खड़ा हो जाता है। वह कभी समाप्त नहीं होता, वह नित-नूतन हो जाता है। अगर उसके कारण आज समय नहीं मिल रहा है, तो कल भी समय नहीं मिलेगा, परसों भी समय नहीं मिलेगा। और जिंदगी जितनी थकने लगेगी, उतनी शक्ति तो कम हो जाएगी और उलझन उतनी की उतनी बनी रहेगी। जो कल पर टालता है, वह हमेशा पर टाल रहा है। उनसे मैंने यह कहा।
वे बोले, यह बात तो ठीक लगती है, जरूर मैं विचार करूंगा।
मैंने कहा, आप जब भी, जो भी कह रहे हैं, फिर भी कह रहे हैं विचार करूंगा,
तो आप फिर टाल रहे हैं। यह भी हो सकता है, मैंने उनसे कहा, कि कल हम न हों। यह हो सकता है, इस जमीन पर बहुत से लोग कल सुबह होते-होते न हो जाएंगे, उनमें हमारी संख्या भी हो सकती है। और एक दिन तो हमारी संख्या होगी। एक दिन तो यह होगा कि हम होंगे, एक रात होंगे और दूसरे दिन सुबह नहीं होंगे। यह तो निश्चित है। एक दिन कल हमें नहीं आएगा, आज अंतिम होगा। वह आज भी हो सकता है।
वे काफी खुश थे। वे बोले, ठीक है। फिर वह नाला उतर गया। वे मुझसे पहले निकल गए, उनके पीछे मैं निकला। कुछ गाड़ी में हमारे चाक खराब हुआ, उस तरफ रुक कर उसे बदलना पड़ा, कोई पंद्रह मिनट लगे होंगे। पंद्रह मिनट बाद हम पहुंचे, दो मील के फासले पर वे तो समाप्त थे, वह तो गाड़ी टकरा गई थी, वे तो तीन लोग थे, तीनों ही समाप्त हो गए। अभी पंद्रह मिनट पहले हम उनसे बात किए कि यह हो सकता है कि कल न हो--और पंद्रह मिनट बाद हमने पाया कि उन तीनों का कल नहीं है।
मेरे साथ जो ड्राइवर था उसने कहा, यह तो बड़ी अनहोनी बात है! मैं आप लोगों की बात सुनता था। ज्यादा मैं नहीं समझा, इतना मैं समझा कि कल निश्चित नहीं है। और यह तो, यह तो क्या हो गया?
अब कोई रास्ता न था कि मैं उनसे कहूं कि जो आप करना चाहते थे उसे कर लें। अब कोई रास्ता नहीं था कि मैं उनको समझाऊं कि जो मैंने कहा था करने को उसे पकड़ लें, उसे जी लें, अब कोई रास्ता नहीं था।
इतना ही आज अंतिम दिन मुझे आपसे कहना हैः ऐसा न हो कि आप उस जगह हों कि फिर आपसे कहने को समय न रह जाए कि कर लें। उसके पहले कर लेना उचित है, उसके पहले कर लेना जरूरी है। उसके पहले जीवन के सत्य के प्रति और जीवन के आत्मिक स्वरूप के प्रति प्रगति, उस दिशा में चल लेना जरूरी है। उस चल लेने के अदभुत फायदे हैं। मृत्यु आ जाए तो हम उसे न कर पाएंगे और अगर हम उसे कर लें तो मृत्यु नहीं आएगी। मृत्यु आ जाए तो हम उसे नहीं कर पाएंगे और अगर हम उसे कर लें तो मृत्यु नहीं आएगी।
आप कहेंगे, पहली बात तो ठीक लगती है, दूसरी बात आज तक ऐसा तो हमने कभी नहीं देखा कि किसी की मृत्यु न आई हो। महावीर की भी आ जाती है, बुद्ध की भी आ जाती है, कृष्ण की भी आ जाती है--मृत्यु तो सबकी आ जाती है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अगर उसे कर लें तो मृत्यु नहीं आती है। महावीर की मृत्यु हमको दिखती है, महावीर को नहीं दिखती। बुद्ध की मृत्यु हमको दिखती है, बुद्ध को नहीं दिखती। उन्हें दिखता हैः जो मर रहा है वह वे नहीं हैं और जो वे हैं उसकी कोई मृत्यु संभव नहीं है। मृत्यु के पहले जो अपने में प्रवेश कर जाए वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है, उसकी मृत्यु नहीं होती है।
तो यह अदभुत है! यह अदभुत है, जो जान ले वह मृत्यु से बच जाता है; और जो
कल पर टालता रहे उसे मृत्यु पकड़ लेती है, वह ज्ञान से बच जाता है। ज्ञान और मृत्यु विरोधी हैं। आत्मज्ञान मृत्यु विरोधी है। होगा, शरीर तो गिरेगा, लेकिन हम उसे जानेंगे जो शरीर नहीं है, जो हमारी सत्ता है, और वह नहीं गिरेगा।
अमृत को अनुभव कर लेना जीवन की उपादेयता है। जो अमृत को अनुभव नहीं कर पाता उसे जानना चाहिए कि वह जीया नहीं, वह केवल धीरे-धीरे मरता रहा है। मैं जिस दिन पैदा हुआ, लोग समझते हैं कि मैं उस दिन पैदा हुआ। अब मुझे दिखाई

पड़ता है कि मैं उसी दिन से मरना शुरू हो गया हूं। मैं उस दिन से मर रहा हूं निरंतर, रोज-रोज, हर क्षण। अभी तीन दिन यहां था, तीन दिन--तीन दिन और मरा। ऐसा रोज मरता जाऊंगा। एक दिन मरण की क्रिया पूरी हो जाएगी।
तो हम जिसे जीवन कह रहे हैं वह जीवन नहीं है। वह ग्रेजुअल डेथ, वह क्रमिक मृत्यु है, क्रमिक मृत्यु है। रोज-रोज मरते जाते हैं जन्म के बाद, फिर एक दिन ये सब मृत्यु पूरी हो जाती है, उसे हम मरण कहते हैं। मरण कोई घटना नहीं, एक विकास है। इसे जीवन न समझें। और इसलिए मैं कहता हूं कि जीवन न समझें--अगर यह जीवन हो तो इसकी परिसमाप्ति पर मृत्यु कैसे हो सकती है? जीवन और मृत्यु तो विरोधी बातें हैं। जीवन के बीज बोएं और मृत्यु का
फल लगे, तो थोड़ा शक होना चाहिए कि जिन बीजों को हम जीवन समझते रहे वे जीवन के न रहे होंगे, वे मृत्यु के ही रहे होंगे। क्योंकि जो फल में लगता है वह बीज में उपस्थित होता है। जो अंत में आता है वह प्रारंभ में मौजूद होता है, तभी आ सकता है, अन्यथा नहीं आ सकता है। तो जिसके अंत में मृत्यु आती है, मैं आपको कह दूं, वह प्रारंभ से मृत्यु है, अन्यथा अंत में मृत्यु हो कैसे जाती? तो जिसे हम जीवन कहते हैं वह जीवन नहीं है। जीवन का प्रारंभ तो स्वयं की सत्ता को जानने से होता है।
मनुष्य के दो जन्म होते हैं। एक जन्म है जो देह का है, जो मां-बाप देते हैं। उस देह के जन्म को हम जीवन समझ लें तो हम गलती में हैं। देह का जन्म जीवन नहीं है। एक दूसरा जन्म है जो साधना से उपलब्ध होता है। और उस जन्म के माध्यम से हम आत्मिक सत्ता को, स्वसत्ता को अनुभव करते हैं। जीवन वहीं से प्रारंभ होता है।
लोग समझते हैं कि जन्म और मृत्यु के भीतर जीवन घिरा है। और मैं आपसे कहूं कि जन्म और मृत्यु के भीतर जीवन नहीं घिरा है। जो जीवन है उसका न तो जन्म है और न उसकी मृत्यु है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु निश्चित है। तो जीवन का न तो जन्म होता है और न मृत्यु होती है। जन्म और मृत्यु जीवन के नहीं हैं, देह के हैं।
देह बिल्कुल भी जीवन नहीं है, देह बिल्कुल मिट्टी है। उसके भीतर कोई जीवन है जो उससे प्रकट हो रहा है और हमें धोखा दे रहा है कि देह जीवन है। जैसे इस बिजली के बल्ब से भीतर से प्रकाश निकल रहा है और हम धोखे में पड़ जाएं कि यह जो कांच का घेरा है यह प्रकाश दे रहा है। यह कांच का घेरा बिल्कुल प्रकाश नहीं दे रहा। प्रकाश भीतर है, यह कांच का घेरा केवल उसे पार आने दे रहा है, यह ट्रांसपैरेंट है। यह देह ट्रांसपैरेंट है केवल जीवन के लिए, यह जीवन नहीं है। यह जीवन को बाहर आने देती है, यह पारदर्शी है। और इससे धोखा हो जाता है और लगता है यह जीवन है।
उस सत्य को, जो हमारे भीतर है, देह से भिन्न है, पृथक है, उसे जान लेने
पर जीवन का अनुभव होता है। और जीवन का अनुभव होते ही जन्म और मृत्यु भ्रम हो जाते हैं, झूठे हो जाते हैं।
तब हम अमृत को जानते हैं, तब हम उसे जानते हैं जो हमारा होना है। उसे जान लेना ही जीवन की सार्थकता है। जो उसे नहीं जानता, वह समझे कि उसने जीवन को व्यर्थ गंवा दिया है। यह मैं किसी और से नहीं कह रहा हूं, यह मैं बिल्कुल आपसे कह रहा हूं, निपट आपसे--कि इसे अपने भीतर समझें। यह कोई मेरा भाषण नहीं है। और पूरे तीन दिन मैंने कोशिश नहीं की कि आपको कोई भाषण दूं, कोई उपदेश नहीं दिया है। जो मुझे लगता है, जो मुझे दिखाई पड़ता है, जो मेरी अंतरात्मा में था, उसे खोला है आपके सामने। और सिर्फ इस ख्याल से वह आपसे बातचीत कर रहा हूं और आपसे कह रहा हूं कि दूसरे के लिए नहीं कह रहा हूं कि सोचें, इसे देखें अपने तईं कि अब तक जिसे आपने जीवन समझा है वह जीवन है? अगर नहीं है तो संकल्प को घना होने दें। अगर नहीं है तो संकल्प को दृढ़ होने दें। अगर नहीं है तो साहस लें और हिम्मत करें और अपने जीवन को परिवर्तित करें। उसे एक नई दिशा में गतिमान करें। जो चूक जाएंगे उनके लिए मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करेगी।
इसे यूं समझ लें जैसे कि मृत्यु दूसरे ही क्षण हो तो आप क्या करेंगे?
और वह दूसरे ही क्षण है! उतना निकट उसे मान कर साहस को जुटाएं, संकल्प को जुटाएं और संलग्न हो जाएं। वह संलग्नता ईश्वर करेगा तो आपमें पैदा होगी,

आप चाहेंगे तो जरूर पैदा होगी। वह निपट आपके ऊपर, आपके संकल्प के ऊपर निर्भर है।
इस अंतिम दिवस, और कुछ ज्यादा मैं नहीं कहने को हूं, सिर्फ इतना ही कहने को हूं कि मैंने जो भी कहा है उसे विचार न समझें, उसे अच्छे विचार न समझें, उन्हें सुन कर प्रशंसा करने की, ताली बजाने की कोई भी जरूरत नहीं है। अगर उन्हें सुन कर आपके हृदय में कोई रुदन उठे, कोई घबड़ाहट उठे, कोई संताप हो, कोई पछतावा हो, कोई पश्चात्ताप पैदा हो, तो मैं समझूंगा कि बात पूरी हो गई। उसी पश्चात्ताप, उसी संताप, उसी घबड़ाहट, उसी पीड़ा, उसी प्यास से वह संकल्प जन्म पाएगा जो जीवन को बदल देता है। जो जीवन को मृत्यु से बदल कर अमृत से संयुक्त कर देता है और जो एक द्वार खोलता है जहां हम एक दूसरे राज्य के हिस्से हो जाते हैं, जहां हम एक दूसरे राज्य के सदस्य हो जाते हैं। उस राज्य के सदस्य होने के लिए यह आमंत्रण इन तीन दिनों में मैंने दिया है। सोचता हूं मेरी आवाज आप तक पहुंच गई होगी और वह कहीं आपके मन को ध्वनित करेगी, और कहीं प्रतिध्वनित वह बात रहेगी, और आपके जीवन में कुछ होगा, यह आशा करता हूं और यह कामना करता हूं।
अब हम अंतिम दिवस के रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। ध्यान के बाद कोई बात नहीं होगी।

समाधि कमल
नौवां प्रवचन

ध्यान आंख के खुलने का उपाय है

आपके कुछ प्रश्न आज लूंगा। कोई प्रश्न आज छूट जाएंगे तो परेशान न हों,
कल उन पर चर्चा हो जाएगी। ईश्वर सगुण है या निर्गुण? ईश्वर है या नहीं है? ईश्वर में विश्वास मैं करता हूं या नहीं करता हूं? इस भांति के जो भी प्रश्न हैं, उनको मैं लूंगा।

एक बात जो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण और विचार करने जैसी है वह यह है कि हजारों वर्षों से मनुष्य को विश्वास करने की प्रेरणा दी गई है। उसे समझाया गया है कि तुम विश्वास करो! ईश्वर में विश्वास करो, आत्मा में विश्वास करो, धर्म में विश्वास करो, गुरुजनों में विश्वास करो, शास्त्रों में विश्वास करो। इस भांति कोई हजारों वर्षों से मनुष्य को विश्वास के लिए दीक्षित और तैयार किया गया है।
सबसे पहले जो मैं कहना चाहूंगा वह यह कि मेरा विश्वास में ही विश्वास नहीं है। मैं इस पूरी धारा को ही गलत मानता हूं। मनुष्य को दीक्षित किया जाना चाहिए विवेक में, विश्वास में नहीं। क्योंकि विश्वास तो अंधी चीज है। विश्वास का अर्थ है, जिस बात को तुम नहीं जानते हो उसे मान लो। जैसे एक अंधा आदमी प्रकाश को जानता तो नहीं है, लेकिन विश्वास कर सकता है कि प्रकाश है। लेकिन यदि अंधा आदमी विश्वास भी कर ले कि प्रकाश है, तो भी क्या उसे प्रकाश का कोई अनुभव होगा? क्या उसके मन में कोई रूप बनेंगे? क्या उसके मन में कोई प्रतीति होगी? क्या वह किसी भांति इस प्रकाश को जानने में विश्वास के द्वारा समर्थ हो सकेगा?
अंधा आदमी विश्वास भी करे तो भी प्रकाश को नहीं जानेगा। प्रकाश तो दूर है, अंधा आदमी अंधेरे को भी नहीं जानता है। तुम शायद सोचते होओगे कि अंधे को अंधेरा दिखता होगा। तो तुम गलती में हो। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। तुम अगर सोचते होओगे कि अंधे को कम से कम अंधेरा तो मालूम होता होगा। तो भी तुम गलती में हो। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। आंखें न हों तो अंधेरा और प्रकाश, दोनों ही दिखाई नहीं पड़ते हैं।
तुम अपनी आंख बंद करके देखोगे तो तुमको अंधेरा दिखाई पड़ेगा, इससे तुम
यह मत सोचना कि जिसकी आंख नहीं है उसको भी अंधेरा दिखाई पड़ता होगा। बंद आंख फिर भी आंख है। और जिसकी आंख नहीं है उसे कैसा दिखाई पड़ता है, यह तो तुम कल्पना ही नहीं कर सकते। उसे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता, क्योंकि देखने के लिए आंख चाहिए। प्रकाश देखने के लिए भी आंख चाहिए और अंधकार को देखने के लिए भी आंख चाहिए।
अंधे आदमी को हम विश्वास दिला सकते हैं कि प्रकाश है, लेकिन वह विश्वास झूठा होगा। क्योंकि अंधे को कोई अपना अनुभव तो हो नहीं सकता, तुम्हारी बात मान लेगा। और मानी हुई बात के पीछे संदेह खड़ा रहता है, शक, शंका बनी रहती है कि पता नहीं लोग ठीक कह रहे हैं या झूठ कह रहे हैं! विश्वास, जो हम दूसरों से सीख लेते हैं, वह हमेशा अधूरा और कच्चा होगा। उसके पीछे शंका होगी, संदेह होगा। केवल वही विश्वास जो ज्ञान से उपलब्ध होता है, वास्तविक होता है, सच्चा होता है। जिसे हम खुद अनुभव से जानते हैं, वही जीवन का आधार बनता है।
दुनिया में जो धर्म का पतन हुआ और लोग अधार्मिक हुए वह इसीलिए कि धर्म विश्वास पर खड़ा किया गया है। और विश्वास अंधा होता है। इसलिए धार्मिक जीवन धीरे-धीरे अंधा होता चला गया, धीरे-धीरे अंधविश्वास होता चला गया, सुपरस्टीशन होता चला गया। उसमें न तो कोई ज्ञान की ज्योति रही, न कोई अनुभूति का बल रहा, न प्राणों का उससे कोई संबंध रहा। झूठा हो गया, मिथ्या हो गया। सारे लोग इसलिए मानते हैं कि हमसे कहा जाता है, लेकिन हमें खुद कोई अनुभव नहीं है।
तो मैं तो यह कहूंगा कि खोजना, विचार करना, श्रम करना जानने के लिए, तो
एक दिन जरूर ही परमात्मा को या सत्य को जाना जा सकता है। विश्वास जो कर

लेगा वह फिर कभी नहीं जान पाता, वह विश्वास पर ही रुक जाता है। जो विश्वास नहीं करता है वह खोज करता है, प्रयास करता है, श्रम करता है जानने का और किसी दिन जान पाता है।
विश्वास तो बाधा है। इसलिए चाहे निर्गुण ईश्वर पर विश्वास करो, चाहे सगुण ईश्वर पर विश्वास करो, तुम्हारे विश्वास का कोई भी मूल्य नहीं है। किसी के विश्वास का कोई मूल्य नहीं है। और चाहे तुम किसी भी ईश्वर पर विश्वास न करो, अविश्वास करो, अविश्वास का भी कोई मूल्य नहीं है। मूल्य है खोज का, संदेह का, डाउट और इंक्वायरी। संदेह करो और खोज करो। और जब तक तुम्हें खुद कुछ अनुभव न हो जाए तब तक कुछ भी मत मानना; न तो आस्तिक को मानना जो कहता है ईश्वर है और न नास्तिक को मानना जो कहता है ईश्वर नहीं है। तुम कहना कि मैं नहीं जानता हूं, मैं नहीं जानती हूं, मुझे तो खोज करनी है, मुझे पहचानना है, मुझे जानना है, मैं खुद जानने को उत्सुक हूं। मैं बिना जाने कोई भी बात मानने को राजी नहीं हूं।
अंधा आदमी एक हुआ बुद्ध के समय में। बुद्ध एक गांव में गए, उस अंधे आदमी को उसके मित्र समझाते थे कि प्रकाश है, लेकिन वह मानता नहीं था। वह उनसे कहता था कि मैं छूकर देखना चाहता हूं कि प्रकाश कैसा है? तो प्रकाश को स्पर्श करने का कोई उपाय नहीं है। वह कहता था कि मैं चख कर देखना चाहता हूं कि प्रकाश कैसा है? लेकिन चखने का भी कोई उपाय नहीं है। वह कहता था, तुम प्रकाश को बजाओ, उसमें कोई धुन निकले, तो मैं धुन ही सुन लूं। यह भी कोई उपाय नहीं है।
फिर बुद्ध उस गांव में आए तो उसके मित्र उस अंधे आदमी को लेकर बुद्ध
के पास गए और उन्होंने कहा, आप तो बहुत विचारपूर्ण हैं, इसे समझा दें। यह प्रकाश को मानने से इनकार करता है।
बुद्ध ने कहा, अगर वह मान लेता तो ही मैं उसे गलत कहता। वह नहीं मानता,
यह तो ठीक है। उसे नहीं दिखाई पड़ता, वह कैसे माने? और मेरे पास तुम व्यर्थ लाए, मेरी बजाय तुम किसी वैद्य के पास ले जाओ। उसे उपदेश की नहीं, उपचार की जरूरत है। उसकी चिकित्सा होनी चाहिए, उसका इलाज होना चाहिए। समझाना व्यर्थ है, क्योंकि प्रकाश को देखने के लिए आंखें चाहिए, प्रकाश को देखने के लिए उपदेशों की कोई भी आवश्यकता नहीं है। और आंख नहीं है तो कितना ही समझाओ, प्रकाश का कोई अनुभव नहीं हो सकता और न प्रकाश पर वस्तुतः कोई श्रद्धा हो सकती है।
वे मित्र उस अंधे आदमी को चिकित्सकों के पास ले गए। उसकी आंख पर जाली
थी, वह कुछ ही दिनों के इलाज से ठीक हो गई, कट गई। वह आदमी नाचता हुआ, भागता हुआ बुद्ध को धन्यवाद देने आया, उनके पैरों में गिर पड़ा और उसने कहा कि अब मैं क्या कहूं? प्रकाश तो है, पहले भी था, लेकिन मेरे पास आंखें नहीं थीं। अब यह जो अनुभव है बहुत दूसरे प्रकार का है। यह अनुभव प्राणों का अनुभव हो गया। इस अनुभव को अब कोई झूठा नहीं कर सकता, इस अनुभव को अब कोई खंडित नहीं कर सकता, अब कोई तर्क इसे नष्ट नहीं कर सकता, अब कोई इसे हिला नहीं सकता, डिगा नहीं सकता। यह तो प्राणों के प्राण ने जाना कि प्रकाश है। ठीक ऐसे ही परमात्मा भी जाना जा सकता है। लेकिन उसके लिए भी आंख चाहिए। ये जो हमारी साधारण आंखें हैं, ये केवल वस्तुओं को, पदार्थों को देख पाती हैं। और एक विवेक की, विचार की आंख होती है, जो परमात्मा को भी जान सकती है। उसे जगाने और खोलने की जरूरत है। वह हरेक के भीतर है और हरेक के भीतर बंद पड़ी हुई है। जब उस आंख को कोई खोलता है और जगा लेता है तो उसे परमात्मा का अनुभव होता है।
उस अनुभव में न तो कोई सगुण और निर्गुण है; उस अनुभव में न तो हिंदुओं
का परमात्मा है, न मुसलमानों का; उस अनुभव में न तो ईसाइयों का परमात्मा है, न किसी और धर्म वालों का। उस अनुभव में तो यह सारी सत्ता, यह सारा विश्व ही एक परमात्मा का रूप दिखाई पड़ने लगता है। उस अनुभव में तो फूल में भी परमात्मा दिखता है, वृक्ष में भी, पत्थर में भी, मनुष्य में भी, पक्षी में भी। उसमें तो दिखाई पड़ता है कि यह पूरा का पूरा जीवन, यह जो जीवन-शक्ति है जो सब तरफ फैली हुई है, यह सभी कुछ परमात्मा का अनुभव देने लगती है। वहां कोई परमात्मा मनुष्य की भांति खड़ा नहीं होता, कि हम उससे बातें कर रहे हैं

और वह हमारे सामने खड़ा है। वहां तो समग्र जीवन, सारी सृष्टि ही परमात्म-स्वरूप अनुभव होती है।
और तब जीवन में एक क्रांति हो जाती है। और तब व्यक्ति का पूरा का पूरा आमूल आचरण बदल जाता है। फिर वह और ढंग से जीता है, और ढंग से बोलता है, और ढंग से उठता है।
लेकिन विश्वास करने वाले आदमी के जीवन में कोई फर्क नहीं होता। विश्वास करने वाले का जीवन वैसा ही होता है जैसा अविश्वास करने वाले का जीवन होता है। तुम उसे धक्का दो तो वह भी तुम्हें धक्का देगा; तुम उसे गाली दो तो वह तुम्हें दुगुने वजन की गाली देगा; तुम ईंट मारो तो वह पत्थर मारेगा। उसे भी क्रोध होता है, वह भी ईर्ष्या से भरता है, वह भी गुस्से में आता है--जो विश्वास करने वाला है। लेकिन जो परमात्मा को जानता है उसका जीवन बदल जाता है। उसके जीवन में घृणा, क्रोध, हिंसा समाप्त हो जाते हैं। उसके जीवन में प्रेम ही प्रेम रह जाता है। वही सबूत है, वही प्रमाण है इस बात का कि उसने जाना है। उसके जीवन में सारी बात बदल जाती है। उसके जीवन में कोई दुख, कोई चिंता नहीं रह जाती। मृत्यु भी आ जाए तो भी उसके जीवन में आनंद ही बजता रहता है, उसके हृदय में गीत ही गूंजते रहते हैं।
एक फकीर मरा। जीवन भर आनंद से भरा हुआ था। उसकी मौत करीब आने लगी, वह बहुत बीमार पड़ गया। तो लोग उसके पास देखने आते थे यह सोच कर कि अब तो दुखी हो गया होगा, अब तो मौत करीब आ रही है, अब तो इसके चित्त में दुख और पीड़ा और उदासी आ रही होगी। लेकिन वह खाट पर पड़ा था, उसका शरीर तो सूख गया था, लेकिन उसकी आंखों की वही शांति, वही ज्योति कायम थी। वह मरने के करीब था। चिकित्सकों ने कहा कि अब यह कल सुबह तक नहीं बच पाएगा। तो लोग उत्सुक थे कि शायद अब दुखी हो जाएगा। लेकिन वह मरने के आखिरी क्षण तक हंसता रहा और प्रसन्न रहा। और मरते वक्त उसने कहा कि मित्रो, तुम एक काम करना, मेरे मरने के बाद मेरे वस्त्रों को अलग मत करना, मैं जिन वस्त्रों में मरूं उन्हीं वस्त्रों के साथ मुझे तुम चिता पर चढ़ा देना।
हमारे मुल्क में भी ऐसा करते हैं, वस्त्र बदलते हैं, स्नान कराते हैं,
उस मुल्क में भी ऐसा ही करते थे। लेकिन उसके निवेदन को ख्याल में रख कर, वह मर गया, तो उसको उन्हीं वस्त्रों में ले जाकर जलाया। जब चिता पर उसकी लाश रखी, तब तक तो लोग उदास थे और दुखी थे, लेकिन चिता पर लाश रखते ही से सारे लोग हंसने लगे। तुम ख्याल भी नहीं कर सकते कि क्यों हंसने लगे? तुम्हें कल्पना भी नहीं आ सकती कि कोई मर गया है, कोई जल रहा है, कोई प्रियजन अपना, और लोग हंसेंगे! लोगों को हंसना पड़ा!
उस फकीर ने मरने के पहले अपने कपड़ों के भीतर पटाखे और फुलझड़ियां छिपा रखी थीं। जब वह लाश पर चढ़ाया गया तो वे सब पटाखे फूटने लगे और फुलझड़ियां छूटने लगीं तो लोगों को हंसी आने लगी। और लोगों ने कहा कि अदभुत आदमी था, जीता था तब भी हंसता था, प्रसन्न था, आनंदित था; मृत्यु आई तब भी प्रसन्न था; और अब मर गया है तो भी इस बात की खबर दे रहा है कि मैं प्रसन्न हूं, मैं खुश हूं और दुख मनाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
जो आदमी परमात्मा को जानता है उसके जीवन में सब कुछ आनंद हो जाता है। लेकिन विश्वास करना जानना नहीं है।
इसलिए यह मुझसे मत पूछो कि मैं क्या विश्वास करता हूं?
मैं तो विश्वास कुछ भी नहीं करता और न किसी से कहता हूं कि कभी विश्वास करना। मैं तो कहता हूं कि जानना, खोजना, खुद अपने प्राणों को संलग्न करना कि वह किसी भांति आंखें भीतर की खुल सकें और तुम्हें खुद परमात्मा का अनुभव और दर्शन हो सके।
विश्वास पर नहीं, विचार पर, विवेक पर, व्यक्तिगत श्रम पर मेरी श्रद्धा है। विश्वास तो खतरनाक बात है, उसका अर्थ है दूसरों को मान लेना। और जो दूसरों को मान लेता है उसका खुद का विकास कुंठित हो जाता है, रुक जाता है।
किसी और को मानने की जरूरत नहीं है; खुद ही जानने की, पहचानने की जरूरत है।
तो इसलिए इस छोटे से जीवन में जल्दी मत करना और कुछ मान मत लेना।
हालांकि मां-बाप सिखाएंगे, अध्यापक सिखाएंगे--यह मान लो, वह मान लो। छोटी-

मोटी चीजों में तो ठीक है, लेकिन परमात्मा जैसी बड़ी चीज में किसी को मानने की जरूरत नहीं है।
कैसे आंख खुल सकती है, उसकी--मैं अभी तुम्हारे प्रश्नों की बात कर लूं--तो फिर मैं उसकी चर्चा करूंगा। ध्यान का प्रयोग भी हम करेंगे तीन दिन। ध्यान आंख के खुलने का उपाय है। ध्यान के द्वारा भीतर की आंख धीरे- धीरे खुलती है।
और भीतर की आंख खुल जाएगी तो खुद ही जान सकोगे कि परमात्मा है या नहीं?
है तो कैसा है? उसका रूप है या नहीं? उसमें कोई गुण हैं या नहीं? उसका आकार है या नहीं? या क्या है परमात्मा? किस अनुभूति को परमात्मा कहते हैं? यह तुम खुद ही जान सकोगे। तो बजाय इसके कि मैं यह बताऊं कि परमात्मा कैसा है, क्या यही उचित नहीं है कि हम उस विधि और मार्ग का विचार करें जिससे प्रत्येक को अनुभव हो सके, प्रत्येक जान सके!
प्रत्येक जान सकता है, क्योंकि सबके भीतर यह संभावना है। कोई मनुष्य ऐसा पैदा नहीं होता जिसके भीतर एक आंख न हो जो बंद है और जो खुल न सकती हो। लेकिन खोलने का उपाय करेंगे तभी, खोलने के लिए चेष्टा करेंगे तभी।
उसी चेष्टा को साधना कहा जाता है, उसी चेष्टा को ध्यान।
तो वह हम अभी बात करेंगे कि ध्यान क्या है। और फिर हम सब साथ बैठ कर प्रयोग भी करेंगे तीन दिन। अगर पूरे श्रम से, पूरे मन से, पूरे संकल्प से तुमने उस प्रयोग को किया, तो तीन दिन में भी एक झलक मिल सकती है शांति की, एक झलक मिल सकती है आनंद की, एक आलोक या प्रकाश का दर्शन हो सकता है। और अगर तीन दिन के छोटे से समय में भी पूरे प्राणों से संलग्न होकर उस प्रयोग को किया, तो बहुत कुछ द्वार खुल सकते हैं जो भीतर बंद हों। और फिर अगर उस प्रयोग को जारी रखा, तो दो-चार-छह महीने में ही तुम्हें प्रतीत होगा कि तुम्हारे भीतर तो फर्क होना शुरू हो गया, तुम्हारे भीतर एक नई आंख खुलनी शुरू हो गई, तुम्हें तो कुछ नये अनुभव होने लगे जो कभी भी नहीं हुए थे। और अगर कोई व्यक्ति जीवन भर थोड़ा सा समय भी ध्यान के लिए दे, साधना के लिए दे, तो कोई कारण नहीं है कि जीवन के अंत होते-होते वह परमात्मा के समक्ष खड़ा न हो जाए।
तो मैं नहीं कहता कि मानो, विश्वास करो, मैं कहता हूं, जानो। जब कि जाना ही जा सकता है तो विश्वास करना व्यर्थ है। किसी की मानने की जरूरत नहीं है। द्वार खोलो, मार्ग खोजो, खुद पहचानो।

यह तो मैं पहले दो-एक प्रश्नों के बाबत कहा। और प्रश्न इसी भांति आत्मा के संबंध में पूछा है। और प्रश्न पूछा है कि मरने के बाद क्या होता है? और प्रश्न पूछा है कि आत्माएं मर जाने के बाद भटकती हैं, वह सच है या झूठ है?

ये सारे प्रश्न हैं। इन सारे प्रश्नों में भी यह समझने की बात है कि मरने के बाद आत्मा का क्या होता है, इस संबंध में तुम उत्सुक हो। लेकिन तुम्हारी उत्सुकता इस संबंध में बिल्कुल भी नहीं है कि तुम्हारे भीतर जो आत्मा है अभी जिंदा हालत में उसकी क्या हालत है? मरने के बाद का तुम विचार करोगे कि मरने के बाद आत्मा का क्या होता है। और अभी आत्मा का क्या हो रहा है, इसका कोई विचार नहीं? यह तो बड़ी नासमझी की बात हुई। यह तो बहुत ही गलत बात हुई।
महत्वपूर्ण तो यह है कि मैं इस वक्त सोचूं कि जिंदा स्थिति में मेरी आत्मा का क्या हाल है? लेकिन हम पूछते हैंः मरने के बाद क्या हाल होगा? मरने के बाद वही हाल होगा जो अभी जिंदा हालत में है। उससे भिन्न थोड़े
ही होगा। लेकिन अगर अभी हमारे भीतर आत्मा की स्थिति अच्छी नहीं है--दुख है, शांति नहीं है, आनंद नहीं है--तो मरने के बाद की चिंता करने से क्या फायदा? महत्वपूर्ण तो यही है कि हम अभी सोचें कि जिंदा स्थिति में आत्मा का क्या हाल है?

और बड़े रहस्य की बात यह है कि जिंदा रहते हुए जो आदमी आत्मा को जान लेता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि मेरी आत्मा की कोई मृत्यु नहीं हो सकती। आत्मा मरणधर्मा नहीं है।
लेकिन यह कोई दूसरे के कहने से नहीं, यह तो तुम खुद ही जब अनुभव कर सको अपने भीतर तो तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़ सकता है कि तुम्हारा शरीर अलग है और तुम्हारी आत्मा अलग है। यह उतना ही स्पष्ट दिखाई पड़ सकता है जिस तरह तुम्हें दिखाई पड़ रहा है कि तुम्हारे वस्त्र अलग हैं और तुम अलग हो। यह उसी तरह दिखाई पड़ सकता है जिस तरह तुम्हें दिखाई पड़ता है कि जिस मकान में हम बैठे हैं वह अलग है और हम अलग हैं। यह तो इतना साफ दिखाई पड़ सकता है... तुम छोटे बच्चे का विचार करो। मां के पेट में बच्चा आता है, छोटा सा अणु बनता है। पहले दिन वही देह होती है, वही शरीर होता है। फिर वह अणु बड़ा होता है, फिर मां के पेट में नौ महीने में बच्चा बड़ा होता है। फिर वह बाहर आता है, फिर और बड़ा होता चला जाता है। अगर पहले दिन के बच्चे की तस्वीर तुम्हारे सामने रख दी जाए, तुम्हारी खुद की तस्वीर, तो तुम पहचान नहीं सकोगे कि यह मेरी तस्वीर है। अगर पहले दिन की तुम्हारी तस्वीर रख दी जाए तो कोई भी नहीं पहचान सकेगा कि यह मेरी तस्वीर है। कोई भी कह देगा--यह मेरी तस्वीर है? कैसे हो सकती है? लेकिन एक दिन वही तुम्हारा शरीर था। आज तुम युवा हो, कल तुम बूढ़े हो जाओगे। बुढ़ापे में तुम्हारी आज की तस्वीर तुम्हें बहुत भिन्न मालूम पड़ेगी।
बचपन, जवानी, बुढ़ापा, बहुत फर्क हो जाता है शरीर में। लेकिन भीतर कोई
है जो वही का वही बना रहता है। तुमने शायद कभी यह फिक्र न की हो कि आंख बंद करके तुम यह सोचो कि मेरी आत्मा की कितनी उम्र है? अगर तुम आंख बंद करके सोचोगी तो तुम्हें वहां आत्मा की कोई उम्र पता नहीं चलेगी--कि दस साल, कि बीस साल, कि तीस साल। और जैसा आज लगेगा वैसा ही दस साल बाद भी लगेगा, तीस साल बाद भी लगेगा, मरते वक्त भी वैसा ही लगेगा। भीतर कोई उम्र नहीं है, सब उम्र शरीर की होती है। जैसे एक आदमी ट्रेन में जाए, नासिक पर से गुजरे, फिर वह कल्याण पहुंचे या बंबई पहुंचे, तो क्या वह यह कहेगा कि मैं नासिक था, अब मैं कल्याण हो गया? अब मैं बंबई हो गया? वह कहेगा, मैं नासिक पर से निकला, कल्याण पर से निकला, अब बंबई से निकल रहा हूं।
तुम बच्ची थीं, आज युवा हो, कल बूढ़ी हो जाओगी। तो क्या तुम यह कहोगी कि कभी हम बच्चे थे? अगर समझ आएगी तो मनुष्य ऐसा सोचना शुरू करता है कि कभी मैं बचपन से निकला, अब मैं जवानी से निकल रहा हूं, अब मैं बुढ़ापे से निकल रहा हूं। भीतर तो कोई एक यात्री है जो वही का वही है, स्टेशंस बदल जाते हैं--बचपन से जवानी आ जाती है, जवानी से बुढ़ापा आ जाता है।
शरीर तो रोज मरता रहता है। वैज्ञानिक बताते हैं, सात वर्ष में पूरे शरीर के अणु-अणु बदल जाते हैं। सात वर्ष बाद तुम्हारे शरीर में एक टुकड़ा भी नहीं होता वही जो सात वर्ष पहले था। सत्तर वर्ष जो आदमी जीता है उसका पूरा शरीर दस बार बदल जाता है, पूरा का पूरा बदल जाता है, उसमें कुछ भी बचता नहीं। शरीर प्रतिदिन मरता जाता है और अपने मरे हुए हिस्सों को बाहर फेंकता रहता है।
तुम्हारे बाल हैं, तुम्हें शायद कभी ख्याल न आया हो कि तुम बाल काटती
हो तो उनमें दर्द क्यों नहीं होता? अगर वे जिंदा हिस्से होते तो उनमें दर्द होता। वे मरे हुए हिस्से हैं। नाखून हैं, वे मरे हुए हिस्से हैं। शरीर अपने मुर्दा अंगों को बाहर फेंक रहा है। बालों के रूप में, नाखूनों के रूप में, पसीने के रूप में, मल के रूप में अपने मुर्दा अंगों को बाहर फेंक रहा है। इसीलिए तो बाल को काटते वक्त या नाखून को काटते वक्त दर्द नहीं होता। ये मरे हुए हिस्से हैं, इनको शरीर बाहर फेंक रहा है। इनको बाहर फेंकता जाता है, ये बेकार हिस्से हैं, इनकी जगह नये हिस्से भीतर स्थापित होते चले जाते हैं।
ऐसे शरीर तो रोज मरता है, लेकिन भीतर कोई है जो रोज नहीं मरता। भीतर कोई है जिसकी स्मृति स्थायी है। लेकिन उसे जाना, पहचाना जा सकता है। शांत क्षणों में भीतर जाकर यह देखा जा सकता है। और जब यह दिखाई पड़ेगा तो तुम्हें ज्ञात होगा कि मेरी आत्मा तो शरीर से अलग है। और जिस दिन तुम्हें

यह ज्ञात हो जाएगा कि मेरी आत्मा शरीर से अलग है, उसी दिन तुम्हें यह भी ज्ञात होगा कि मेरा शरीर तो मरेगा, लेकिन आत्मा नहीं मरेगी।
लेकिन यह मैं नहीं कहूंगा कि ऐसा है। मेरा सारा जोर इसी बात पर है कि तुम्हें खुद अनुभव होना चाहिए। मेरी बात मान लेने से कोई फायदा नहीं है। आत्मा नहीं मरती है, आत्मा नहीं मर सकती है। लेकिन इसे अनुभव किया जाना चाहिए। इसे मान नहीं लेना चाहिए, ऐसे किसी की बात स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिए। खुद प्रयोग करना चाहिए साहस के साथ। और छोटा सा प्रयोग भी जारी रहे तो प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में इस महानतम वस्तु को जान सकता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। और अगर यह ज्ञात हो जाए तो तुम्हारा सारा भय, तुम्हारा सारा डर, तुम्हारी सारी चिंता, सब समाप्त हो जाएगी। अगर यह पता चल जाए कि मैं अमर हूं, तो फिर मृत्यु का कोई भय नहीं है। दुख, पीड़ा, कोई भी फिर मुझे नष्ट नहीं कर सकते। तब तुममें एक साहस का उदय होगा--अदम्य साहस का--जब तुम्हें यह ज्ञात हो जाएगा कि मेरी कोई मृत्यु नहीं है।
मृत्यु के भय के कारण ही तो मनुष्य कमजोर हो जाता है, भयभीत हो जाता है। मरने से जो डरता है वह भयभीत हो जाता है। केवल धार्मिक व्यक्ति ही ठीक-ठीक अर्थों में अभय, फियरलेसनेस को उपलब्ध हो सकता है, जिसको यह ज्ञात हो कि मेरी कोई मृत्यु नहीं है।
क्राइस्ट को सूली पर लटकाया। जिन्होंने उनको लटकाया उन्होंने सोचा होगा कि यह घबड़ाएगा। उनके हाथों में कीलें ठोंक दिए और अंत में उनसे कहा कि अब इसके पहले कि हम तुम्हें सूली पर चढ़ा दें, तुम्हें कुछ कहना हो तो कहो। तो क्राइस्ट ने कहा, हे परमात्मा, इन सारे लोगों को क्षमा कर देना, क्योंकि इनको पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! क्राइस्ट ने कोई क्रोध की बात नहीं कही। क्योंकि क्राइस्ट के सामने कोई फर्क ही नहीं पड़ता है, जिंदा या मुर्दा। भीतर वे जानते हैं कि उनकी मृत्यु असंभव है।
मंसूर हुआ एक फकीर। उसके लोगों ने हाथ-पैर काट डाले, उसकी आंखें फोड़ दीं। लेकिन वह हंसता था, हंसता रहा। लोगों ने उससे पूछा कि तुम मृत्यु से घबड़ा नहीं रहे हो? उसने कहा, घबड़ाऊं तब जब मुझे यह पता हो कि मैं मरूंगा। मैं तो जानता हूं कि मेरी मृत्यु असंभव है।
सिकंदर हिंदुस्तान आया था। यहां से एक फकीर को यूनान ले जाना चाहता था। जब हिंदुस्तान से जाने लगा तो उसने खोज-बीन की कि कोई बड़ा फकीर, कोई बड़ा साधु क्या मेरे साथ जाने को राजी है? तो एक गांव में गया। लोगों ने कहा कि वहां एक बहुत बड़ा साधु है। उसके पास गया। उससे जाकर कहा--नंगी तलवार उसने अपने हाथ में निकाल ली और उस साधु से कहा--मेरे साथ यूनान चलने को राजी हो जाओ। उस साधु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं है, तलवार भीतर कर लो, तुम्हें शायद पता नहीं है कि साधु को डराया नहीं जा सकता। तलवार व्यर्थ बाहर क्यों निकाल रहे हो? सिकंदर ने कहा, अगर मैं तुम्हारी गर्दन काट दूं तो तुम डरोगे नहीं? उस संन्यासी ने कहा, डर का कोई सवाल नहीं। तुम गर्दन को काटोगे, वह मेरे लिए वस्त्रों जैसी हो गई है। और मेरी कोई गर्दन काट दे तो भी मैं नहीं मरता हूं। यह मेरा अनुभव है और इसलिए मुझे भयभीत करना संभव नहीं है।
जो मृत्यु से डरता है, जानना चाहिए कि वह आत्मा को नहीं जानता। और मृत्यु से डरने वाले लोग पूछते हैं कि क्या आत्मा अमर है? वे इसलिए पूछते हैं ताकि उनको विश्वास आ जाए कि आत्मा नहीं मरती, तो उनका भय थोड़ा कम हो जाए।
लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा, भारत जैसा मुल्क है हमारा, यहां सारे लोग मानते हैं कि आत्मा अमर है। लेकिन कभी तुमने यह भी देखा कि यहां इस जमीन पर पूरी दुनिया में मृत्यु से डरने वाले सर्वाधिक लोग भी यहीं रहते हैं, इसी मुल्क में! आत्मा को मानने वाले लोग भी यहीं रहते हैं, आत्मा को अमर मानने वाले लोग भी यहीं हैं और मृत्यु से डरने वाले लोग भी यहीं हैं। इतना दुनिया में मृत्यु से कोई भी नहीं डरता जितना इस मुल्क में लोग डरते हैं। क्यों? क्योंकि इन्होंने आत्मा जानी नहीं है, केवल मृत्यु के भय की वजह से यह मान लेते हैं कि आत्मा अमर है, ऐसा विश्वास कर लेते हैं, ताकि मरने का भय थोड़ा कम हो जाए।

तो यह मत पूछो कि आत्मा अमर है या नहीं? आत्मा का मरने के बाद क्या होगा?
यही पूछो कि अभी भीतर मेरे कोई आत्मा है? अगर है तो उसे मैं कैसे जानूं? कैसे पहचानूं? क्या रास्ता है उसे जानने का?
यह पूछोगे तब तो कोई बात आगे बढ़ सकती है। और अगर तुमने यह पूछा किसी से
कि आत्मा है मरने के बाद या नहीं? और उसने कह दिया कि है, तो फिर क्या करोगे? और उसने कह दिया कि नहीं है, तो भी क्या करोगे? दोनों हालत में चुपचाप रह जाओगे उत्तर सुन कर। उत्तर तुम्हारे जीवन में कौन सा फर्क लाएगा? तुमने पूछा, ईश्वर है? किसी ने कह दिया कि है, फिर क्या करोगे? किसी ने कह दिया कि नहीं है, तो क्या करोगे? तुम्हारे जीवन में कौन सा फर्क आएगा?
हमेशा स्मरण रखोः वे ही प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, वे ही उत्तर खोजने जैसे हैं, जिनसे हमारा जीवन बदलता हो, जिनसे हमारे जीवन में क्रांति आती हो, जिनसे हमारा जीवन नया होता हो, जिनसे हमारा अनुभव और ज्ञान किन्हीं नई दिशाओं को जानता हो, किन्हीं नये क्षेत्रों में प्रवेश करता हो।
जिन उत्तर और प्रश्नों से हम वहीं के वहीं खड़े रह जाते हों, उनका कोई
भी मूल्य नहीं है। और उनको न कभी पूछने की जरूरत है, न उनके उत्तर खोजने की जरूरत है। क्या फर्क पड़ेगा? कोई फर्क नहीं पड़ता। दुनिया में जिस भांति नास्तिक जीते हैं, उसी भांति आस्तिक जीते हैं। जिस भांति वे लोग जीते हैं जो मानते हैं आत्मा अमर है, उसी भांति वे लोग जीते हैं जो मानते हैं आत्मा अमर नहीं है। उनके जीने में कोई फर्क नहीं पड़ता। नहीं पड़ सकता है। जीवन में तो फर्क तभी पड़ता है जब किसी व्यक्ति को स्पष्ट रूप से कुछ बोध होते हैं।
इस बोध के लिए मार्ग है--ध्यान। इस बोध के लिए केवल विचार करना, केवल सोच लेना, किसी से पूछ लेना मार्ग नहीं है। उसकी मैं बात करूं।

और यह पूछा है कि मैंने सुबह कहा कि महत्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा, बाहर के जीवन में तो इनके सिवाय विकास नहीं हो सकता, ऐसा प्रश्न पूछा है। और मैंने यह कहा कि बाहर के और भीतर के दोनों के जीवन में संतुलन होना चाहिए, दोनों का विकास होना चाहिए। तो उन्हें, पूछने वाले को, यह तो समझ में आया है कि भीतर के जीवन का विकास तो बिना प्रतिस्पर्धा के हो सकता है, लेकिन बाहर के जीवन का विकास नहीं हो सकता।

यह बात गलत है। अभी तक सचमुच ऐसा ही हुआ है कि बाहर के जीवन में बहुत प्रतिस्पर्धा है और तभी विकास होता है। लेकिन नहीं, इससे भिन्न हो सकता है।
एक चमार है, वह जूते सीता है। वह इस कारण भी अच्छे जूते सी सकता है कि पड़ोसी जो दूसरा चमार है उससे उसको आगे निकलना है, इसलिए उससे अच्छे जूते सिए। ज्यादा कमाई होगी, ज्यादा पैसा आएगा, बड़ा मकान बना सकेगा। नहीं लेकिन, वह इसलिए भी अच्छे जूते सी सकता है कि उसे जूते सीने की कला से प्रेम है। या जो आदमी उसके जूते पहनेगा, वह चाहता है कि वह उसके प्रति बुरा भाव न लाए, वह चाहता है कि वह प्रसन्न हो, वह चाहता है कि मैंने जो चीज बनाई है वह उसे खुशी दे।
कबीर का नाम तुमने सुना होगा, वे कपड़ा सीते थे। फकीर थे इतने बड़े, साधु थे, लेकिन फिर भी कपड़ा सीते थे। लोगों ने उनसे कहा कि यह तो उचित नहीं है कि आप कपड़ा सिएं और बाजार में बेचने जाएं। आप जैसे साधु को क्या जरूरत? लेकिन कबीर ने कहा कि नहीं, अगर मैं कपड़े नहीं सिऊंगा, तो जो भगवान अनेक-अनेक रूपों में मेरे द्वारा सिए हुए कपड़े पहनता है, उसे इतने अच्छे कपड़े फिर नहीं मिल सकेंगे। क्योंकि दूसरे जुलाहे तो पैसा कमाने के लिए कपड़े सीते हैं, मैं तो प्रेम से कपड़ा सीता हूं।
तो कबीर कपड़ा सीते थे, गीत गाते थे। इतने प्रेम से कपड़ा सीकर बाजार बेचने जाते थे। और जब कोई खरीदने वाला आता था तो उसके गले में खुद ओढ़ा देते थे और उससे कहते थेः राम बहुत सम्हल कर इसको पहनना। मैंने बड़ी मेहनत से,

बड़े प्रेम से, अपने प्राणों का पूरा भाव इसमें पिरोया है। अब यह तो बहुत और तरह की बात हो गई। और कबीर के मुकाबले कपड़े किसी के भी नहीं होते थे बाजार में। हो भी नहीं सकते थे। मगर इसमें कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी।
तुमने गोरा कुम्हार का नाम शायद सुना हो। एक बहुत बड़ा कुम्हार हुआ, बहुत बड़ा विचारक हुआ, बहुत बड़ा साधु हुआ। वह घड़े बनाता रहा जिंदगी भर मिट्टी के और घड़े बेचता रहा। वह इतने मजबूत घड़े बनाता था कि दूसरे कुम्हारों ने उस पर एतराज उठाया कि तुम तो हमारे धंधे को खराब किए दे रहे हो। क्योंकि तुम्हारा घड़ा तो इतना चलता है जिसका कोई हिसाब नहीं! घड़े तो ऐसे बनाओ कि जल्दी फूट जाएं, ताकि शुरू में खरीदने वाला दुबारा आए। लेकिन गोरा कुम्हार ने कहा, मैं कोई धंधा नहीं करता हूं, मैं तो प्रेम करता हूं घड़े बनाने को। और इतना अच्छे से अच्छा घड़ा बनाना चाहता हूं कि जो ले जाए उसे दुबारा फिर घड़ा खरीदने की जरूरत न पड़े।
अब इसमें कोई काम्पिटीशन न रहा, इसमें किसी से कोई प्रतिस्पर्धा न रही, इसमें तो काम करने से प्रेम हुआ। हम अपने काम से प्रेम करें तो भी काम का विकास होगा। एक बागवान अपनी बगिया लगाने से प्रेम करे, एक किसान अपने खेत में बीज बोने से प्रेम करे, एक दफ्तर का नौकर अपनी दफ्तर की नौकरी से प्रेम करे। सारी दुनिया में अपने काम से प्रेम होना चाहिए।
अभी यह है नहीं। इसके न होने की भी कुछ बुनियादी बातें हैं। इसके न होने का सबसे बड़ा कारण तो यह है कि जो छोटे काम हैं उन कामों में किसी आदमी को इज्जत नहीं मिलती है, प्रतिष्ठा नहीं मिलती है, रिस्पेक्ट नहीं मिलती है। बड़े काम जिनको हम कहते हैं, उनमें आदर मिलता है, इज्जत मिलती है। तो हर आदमी बड़ा काम करना चाहता है।
अगर अच्छी शिक्षा हो तो बच्चों को यह समझाया जाना चाहिए कि कोई काम छोटा और बड़ा नहीं है। एक चमार भी अगर अच्छे जूते सीता है तो उतना ही आदर योग्य है जितना किसी राज्य का मंत्री है, अगर वह अच्छा काम करता है। अगर राज्य का मंत्री बुरा काम करता है तो अच्छे काम करने वाले चमार से भी उसको कम इज्जत मिलनी चाहिए। एक राष्ट्रपति को भी उतनी ही इज्जत मिलनी चाहिए जितनी एक चपरासी को। सवाल अच्छे और बुरे काम का होना चाहिए, सवाल पदों का नहीं होना चाहिए। पद का कोई मूल्य नहीं होना चाहिए। अगर दुनिया अच्छी होगी और जैसा मैंने कहा, अगर वह प्रतिस्पर्धा पर खड़ी नहीं होगी, तो दुनिया में पदों का कोई सवाल नहीं होगा। पदों का कोई सवाल है भी नहीं।
अब्राहम लिंकन प्रेसिडेंट हुआ अमरीका का। उसका बाप तो जूता सीता था, चमार था। जब वह प्रेसिडेंट हुआ और पहले दिन वहां की सीनेट में बोलने को खड़ा हुआ, तो अनेक लोगों को उससे बड़ी पीड़ा हो गई कि एक चमार का लड़का और प्रेसिडेंट हो जाए मुल्क का! तो एक आदमी ने खड़े होकर व्यंग्य कर दिया और कहा कि महानुभाव लिंकन, ज्यादा गुरूर में मत फूलो! मुझे अच्छी तरह याद है कि तुम्हारे पिता जूते सिया करते थे। तो जरा इस बात का ख्याल रखना, नहीं तो प्रेसिडेंट होने में भूल जाओ।
और कोई आदमी होता तो दुखी हो जाता, क्रोध से भर जाता। शायद गुस्से में आता और उस आदमी को कोई नुकसान पहुंचाता। प्रेसिडेंट नुकसान पहुंचा सकता था। लेकिन लिंकन ने क्या कहा? लिंकन की आंखों में आंसू आ गए और उसने कहा कि तुमने ठीक समय पर मेरे पिता की मुझे याद दिला दी। आज वे दुनिया में नहीं हैं, लेकिन फिर भी मैं यह कह सकता हूं कि मेरे पिता ने कभी किसी के गलत जूते नहीं सिए हैं, और जूते सीने में वे अदभुत कुशल थे। वे इतने कुशल कारीगर थे जूता सीने में कि मुझे आज भी उनका नाम याद करके गौरव का अनुभव होता है। और मैं यह भी कह देना चाहता हूं--और यह बात लिख ली जाए, लिंकन ने कहा--कि जहां तक मैं समझता हूं, मैं उतना अच्छा प्रेसिडेंट नहीं हो सकूंगा, जितने अच्छे वे चमार थे! मैं उनके ऊपर नहीं निकल सकता हूं, उनकी कुशलता बेजोड़ थी!
यह एक समझ की बात है, एक बहुत गहरी समझ की। जब तक दुनिया में पदों के साथ इज्जत होगी, तब तक अच्छी दुनिया पैदा नहीं हो सकती और ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा चलेगी। प्रतिस्पर्धा काम के कारण नहीं है, प्रतिस्पर्धा है पदों के साथ जुड़े हुए आदर के कारण। कोई आदमी बागवान नहीं होना चाहता,

बागवान होने में कौन सी इज्जत मिलेगी? राष्ट्रपति होना चाहता है। यह तब तक चलेगा, जब तक हम गरीब बागवान को भी इज्जत देना शुरू नहीं करेंगे। तुम्हारे घर में एक चपरासी है, बूढ़ा आदमी है। तुम उसको कोई इज्जत नहीं दोगे, उससे आदमी की तरह भी व्यवहार नहीं करोगे।
लेकिन तुम्हें शायद यह ख्याल न हो, पदों से आदमीयत में कोई फर्क नहीं पड़ता, पदों से कोई फर्क नहीं पड़ता। और सच तो यह है कि दुनिया में जिन बड़े- बड़े पदों की बहुत इज्जत होती है, उन बड़े-बड़े लोगों ने जितने नुकसान पहुंचाए हैं, उतने छोटे-छोटे और निरीह लोगों ने कोई नुकसान नहीं पहुंचाए। दुनिया की सेवा छोटे-छोटे लोगों ने की है, दुनिया का काम छोटे-छोटे लोग चलाते रहे हैं, दुनिया की जिंदगी छोटे-छोटे लोगों पर निर्भर है। और जिनको हम बड़े-बड़े लोग कहते हैं--राष्ट्रपति हैं, और प्रधानमंत्री हैं, और मंत्री हैं--इन सारे लोगों ने दुनिया को कोई अच्छी स्थिति में नहीं पहुंचाया है। इन सारे लोगों ने दुनिया को उपद्रवों में डाला है, परेशानियों में डाला है, दिक्कतों में डाला है। और जिंदगी चलाने वाले जो छोटे-छोटे लोग हैं उनका कोई आदर नहीं है, कोई सम्मान नहीं है। यह हमारी पूरी स्थिति गलत है। जब मैंने यह कहा कि इस भांति का व्यक्तित्व होना चाहिए कि प्रतिस्पर्धा न हो, उसका मतलब है कि पूरी शिक्षा और ढंग की होनी चाहिए, पूरे समाज की व्यवस्था, सोचना और ढंग का होना चाहिए। और ढंग का हो सकता है-- अगर बच्चे तैयारियां करेंगे, अगर छोटी लड़कियां और छोटे लड़के यह निर्णय करेंगे कि हम एक दूसरे तरह का समाज बनाना चाहते हैं, जहां हम काम को आदर देंगे, पदों को नहीं; जहां हम श्रम को आदर देंगे, धन को नहीं।
अभी तो धन की प्रतिष्ठा है, श्रम की कोई प्रतिष्ठा नहीं। एक रद्दी से रद्दी आदमी बहुत बड़ा धनवान है तो तुम उसको आदर दोगे। और एक अच्छे से अच्छा आदमी जिसके पास कोई धन नहीं है, तुम उसकी तरफ मुंह उठा कर भी नहीं देखोगे। यह तो गलत बात है, यह एकदम गलत बात है। आदर होना चाहिए अच्छे मनुष्य का, प्रेमपूर्ण मनुष्य का, सच्चे मनुष्य का। आदर होता है धनी का। जब कि हो सकता है धन इकट्ठा करने में उसने झूठ भी बोला हो, बेईमानी भी की हो, पाप भी किए हों, बुरा भी किया हो। लेकिन आदर उसका है जहां धन है। अच्छा समाज होगा तो वहां आदर काम का होगा, श्रम का होगा, धन का नहीं। वहां आदर उन लोगों का होगा जो नींव की बुनियाद हैं, केवल उनका ही नहीं जो भवन के शिखर हैं।
तो ऐसे समाज की रचना के लिए और ऐसी शिक्षा के लिए जो मैंने बात कही उस
पर विचार करना। तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि भीतर का विकास भी हो सकता है, बाहर का भी, बिना किसी प्रतिस्पर्धा के।

और दूसरी बात यह पूछी है कि क्या प्रतिस्पर्धा हमेशा ही बुरी होती है, कभी अच्छी नहीं होती?

हां, प्रतिस्पर्धा कभी अच्छी नहीं होती। कभी अच्छी नहीं हो सकती। नहीं इसलिए हो सकती है अच्छी, क्योंकि प्रतिस्पर्धा में तुम्हारा दूसरे के साथ हमेशा विचार जुड़ा हुआ है--उससे आगे होना है।
नहीं, विचार होना चाहिए--मुझे स्वयं को विकसित करना है, मुझे आज जहां मैं हूं वहां से कल मुझे आगे होना है। दूसरे से आगे नहीं, मुझे स्वयं से प्रतिदिन आगे होते जाना है। प्रतिस्पर्धा में मुझे दूसरे से आगे होते जाना है और वास्तविक विकास में मुझे स्वयं से आगे होते जाना है। जहां आज सांझ का सूरज जिस जगह मुझे छोड़ गया है, सुबह उठते जब सूरज निकले तो मुझे उसी जगह न पाए, मुझमें कुछ विकास हो जाए। सुबह का उगने वाला सूरज जहां मुझे पाए, सांझ का डूबने वाला सूरज मुझे उसी जगह खड़ा न पाए, मुझमें कुछ विकास हो जाए। मैं आगे पहुंच जाऊं। मेरे जीवन में कुछ नया अनुभव, कुछ नया ज्ञान, कुछ नया प्रेम जाग्रत हो जाए।
यह अगर ख्याल हो कि मुझे खुद के ही साथ सतत विकास करना है, तब तो जीवन अच्छा होता है। और जहां दूसरे के साथ स्पर्धा है वहां जीवन गलत हो जाता है। दूसरे के साथ किसी भी तरह की स्पर्धा शुभ नहीं है।
और प्रश्न तुम्हारे बच जाएंगे, उनकी मैं कल चर्चा करूंगा।

समाधि कमल
दसवां प्रवचन

अज्ञान का बोध, रहस्य का बोध

ज्ञान का बोध, इस संबंध में थोड़ी सी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं।
जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, अज्ञान के बोध के बिना कोई व्यक्ति सत्य के अनुभव में प्रवेश न कभी किया है और न कर सकता है। इसके पहले कि अज्ञान छोड़ा जा सके, ज्ञान को छोड़ देना आवश्यक है। इसके पहले कि भीतर से अज्ञान का अंधकार मिटे, यह जो ज्ञान का झूठा प्रकाश है, इसे बुझा देना जरूरी है। क्योंकि इस झूठे प्रकाश की वजह से, जो वास्तविक प्रकाश है, उसे पाने की न तो आकांक्षा पैदा होती है, न उसकी तरफ दृष्टि जाती है। एक छोटी सी घटना इस संबंध में कहूंगा और फिर आज की चर्चा शुरू करूंगा।
एक पूर्णिमा की रात्रि में, एक बहुत विलक्षण कवि एक नौका पर बजरे में यात्रा कर रहा था। छोटा सा झोपड़ा था बजरे का, नौका थी, पूर्णिमा की रात थी। वह भीतर बैठ कर, मोमबत्ती को जला कर, उसके प्रकाश में किसी ग्रंथ को पढ़ता रहा। फिर जब आधी रात हो गई और वह थक गया तो उसने मोमबत्ती को बुझाया, सोने की तैयारी की।
लेकिन मोमबत्ती को बुझाते ही उसे एक अदभुत अनुभव हुआ जिसकी उसे कल्पना भी न थी। जैसे ही मोमबत्ती बुझी कि बजरे के रंध्र-रंध्र से, खिड़की से, द्वार से चांद की रोशनी भीतर आ गई। उसने बजरे को आकर भर दिया। वह हैरान हो गया! वह मोमबत्ती का छोटा सा टिमटिमाता प्रकाश चांद के प्रकाश को बाहर रोके हुए था! उसके बुझते ही चांद भीतर प्रवेश कर गया! उसे ख्याल भी भूल गया था--उस टिमटिमाती मोमबत्ती के प्रकाश में उसे ख्याल भी भूल गया था--कि बाहर चांद भी है। तब वह उठ कर खिड़की पर गया और उसने कहा, मैं कैसा अभागा हूं! आधी रात मैंने व्यर्थ ही खो दी। चांद की अनुपम ज्योत्स्ना मिल सकती थी, वह चांद का शीतल प्रकाश मिल सकता था, तब मैं धुआं देती एक छोटी सी मोमबत्ती की टिमटिमाती पीली रोशनी में बैठा रहा। आधी रात का उसे दुख हुआ।
लेकिन बहुत कम लोग हैं जो पूरे जीवन में से आधा जीवन भी सच्चे प्रकाश
को पाने के लिए जिनके जीवन में संभावना बन पाती हो। अधिक लोग तो जीवन गंवा देते हैं टिमटिमाती रोशनियों में। मोमबत्ती जलाए रखते हैं और इसलिए सत्य का प्रकाश उपलब्ध नहीं हो पाता।
यह हमारा जो ज्ञान है झूठा और उधार, यह मोमबत्ती की तरह धुआं देता हुआ प्रकाश है। इसे बुझा देना जरूरी है, तो ही सत्य के, प्रकाश के आगमन की संभावना प्रारंभ होती है।
कल मैंने इस संबंध में आपसे बात की। यह जो ज्ञान है झूठा, यह जाए तो ही सच्चे ज्ञान के आने का द्वार खुलता है। अज्ञान का बोध इसलिए अत्यंत अनिवार्य और अपरिहार्य आवश्यकता है। उसके बिना कोई गति नहीं है। अज्ञान के बोध से क्या होगा? अज्ञान के बोध से जो होगा और जो होना चाहिए और जिस भांति उसके होने में सहायता दी जा सकती है, उन सूत्रों पर आज मैं बात करूंगा।
अज्ञान के बोध से पहली तो बात यह होगी कि जीवन एकदम रहस्य से भर जाएगा,
एक बहुत मिस्ट्री घेर लेगी। जीवन रहस्य से भरा हुआ है। लेकिन थोथे ज्ञान की वजह से उस रहस्य पर दृष्टि नहीं जाती। जैसे मैंने कहा, चांद का प्रकाश भीतर आ जाएगा। जैसे ही आपका मिथ्या ज्ञान हटा, आपने उस दीये को बुझाया जो कि झूठा है और पराया है, जीवन में एक अदभुत मिस्ट्री उपलब्ध हो जाएगी। चारों तरफ एक रहस्य का अनुभव होने लगेगा।
रहस्य का अनुभव मनुष्य का समाप्त होता जा रहा है। धर्मग्रंथों ने उसे समाप्त किया है, विज्ञान ने उसे समाप्त किया है, साहित्य ने उसे समाप्त किया है, सभ्यता ने उसे समाप्त किया है। मनुष्य को जो एक रहस्य की प्रतीति होनी चाहिए वह विलीन हो गई है। उसे कोई रहस्य का अनुभव नहीं होता। क्योंकि उसने हर चीज के लिए व्याख्या कर ली है, हर चीज के सिद्धांत बना लिए हैं और मामला समाप्त हो गया है।

आपको दिखाई पड़ते हैं दरख्त? आपको दिखाई पड़ते हैं चांद-सूरज? आपको जब
एक बीज फूट कर अंकुर बनता है तो कोई रहस्य का अनुभव नहीं होता? कि होता है? नहीं होता होगा। यह चारों तरफ पूरा जीवन बहुत मिस्टीरियस है, बहुत रहस्यपूर्ण है। लेकिन हमारा थोथा ज्ञान इसकी व्याख्या कर देता है। थोथा ज्ञान बीच में आ जाता है और रहस्य से हमारा कोई संपर्क नहीं हो पाता। नहीं तो जीवन तो प्रतिक्षण रहस्य है। सब अज्ञात है, सब अननोन है। लेकिन हम सबकी व्याख्याएं करके इस भांति बैठ गए हैं जैसे सब ज्ञात हो गया हो, सब नोन हो गया हो। यह जो नोन हो जाने का भ्रम है कि सब ज्ञात हो गया है, इससे रहस्य समाप्त हो गया है। और जिस चित्त में रहस्य नहीं है, उस चित्त में धर्म कैसे होगा? जिस चित्त में रहस्य की लहरें नहीं उठतीं, आश्चर्य की, चकित होने की, अवाक रह जाने की, वह चित्त धार्मिक कैसे होगा?
कोई चीज आपको रहस्य से भरती है? आकाश में घूमते हुए बादल?
नहीं लेकिन, विज्ञान ने उनकी व्याख्या कर दी है। और धर्म ने पहले ही व्याख्या कर दी थी कि इंद्र बादल भेजता है पानी गिराने के लिए। तो बादलों में जो मिस्टीरियस था वह विलीन हो गया, क्योंकि बात साफ हो गई कि इंद्र भेजता है पानी गिराने को। एक व्याख्या, एक एक्सप्लेनेशन मिल गया और मिस्ट्री समाप्त हो गई। तो फिर बादल आकाश में घिर रहे हैं, लेकिन हमारे लिए अर्थहीन हो गए, हमें पता चल गया कि बात क्या है। ज्ञात हो गया तो रहस्य समाप्त हो गया। जहां चीजें अज्ञात होती हैं, अननोन होती हैं, वहां रहस्य होता है। जहां चीजें ज्ञात हो जाती हैं, रहस्य समाप्त हो जाता है। जिसे हम जान लेते हैं उसमें रहस्य समाप्त हो जाता है। जिसे हम नहीं जान पाते हैं उसमें रहस्य कायम रहता है। सब रहस्य समाप्त हो गया, क्योंकि इंद्र ने बादल भेज दिए, तो रहस्य समाप्त हो गया।
फिर उस पागलपन से बचे, हमको पता चला कि कोई इंद्र नहीं है, कोई बादल भेजने वाला नहीं है। तो विज्ञान ने नये एक्सप्लेनेशंस दे दिए, उसने नई व्याख्याएं दे दीं कि सूरज की गरमी से पानी भाप बनता है, फिर बादल बनते हैं और वे पानी गिराते हैं। इंद्र बदल गए, व्याख्या दूसरी आ गई। लेकिन क्या हमारी कोई भी व्याख्या अल्टीमेट है? क्या हमारी कोई भी व्याख्या इस रहस्य को खोलती है कि जगत क्यों है?
नहीं, विज्ञान यह बता देता है कि कैसे होता है बादल का बनना। लेकिन बादल के होने की जरूरत क्या है? बादल अगर न होता तो कोई हर्जा था! क्यों है? विज्ञान बता देता है कि बीज कैसे अंकुर बनता है। लेकिन क्यों बनता है? क्या कारण है? क्या जरूरत है? हम हैं तो क्यों हैं? यह हमारे भीतर प्रेम पैदा होता है तो क्यों पैदा होता है? यह हमारे भीतर एक जीवन-शक्ति है, यह क्यों है? ये चारों तरफ पक्षी गीत गा रहे हैं, ये पौधे बड़े हो रहे हैं, आकाश में बादल घूम रहे हैं, ये क्यों?
विज्ञान ने कुछ व्याख्याएं दे दीं, कुछ धर्म ने दे दीं और यह "क्यों" हमारी दृष्टि से ओझल हो गया और हमें लगने लगा कि हम जीवन को जान रहे हैं। यह जानने का भ्रम खतरनाक है। इसकी वजह से रहस्य समाप्त हो गया। जब कि सच्चाई यह है कि जीवन के "क्यों" के संबंध में न कुछ ज्ञात है, न कुछ ज्ञात अभी हुआ है, न हो सकता है। जो अल्टीमेट "क्यों" है, जो आखिरी और अंतिम "क्यों" है, वह बिल्कुल अज्ञात है।
उस अज्ञात का जब तक संस्पर्श न होगा प्राणों में तब तक प्राणों में धर्म का उदय नहीं हो सकता। क्योंकि उस अज्ञात के संस्पर्श से ही अनंत परमात्मा का मार्ग स्पष्ट होता है और खुलता है।
लेकिन हमारे मस्तिष्क तो ज्ञात से बंध गए हैं। सब चीजें हमें मालूम
हो गई हैं। जब कि सच्चाई यह है कि हमें मालूम कुछ भी नहीं है। लेकिन पहले धर्म ने यह काम किया था, अब विज्ञान यह काम कर रहा है। और मनुष्य के जीवन से इन दोनों ने मिल कर मिस्ट्री को हटा कर अलग कर दिया। अब हमारे जीवन में मिस्टीरियस जैसा कुछ भी नहीं है।
मैं एक जगह गया, एक प्रोफेसर मेरे साथ थे। हम गए एक जलप्रपात को देखने, बहुत ऊंचे पहाड़ से पानी गिरता था। लेकिन वे प्रोफेसर मुझसे बोले, वहां क्या रखा है? आखिर पानी ही तो पहाड़ से नीचे गिरता है! उन्होंने बात तो

बिल्कुल ठीक कही--वहां क्या रखा है? आखिर पानी ही तो पहाड़ से नीचे गिरता है! इसमें बात क्या है देखने की?
पहाड़ से पानी नीचे गिरता है, इस वाक्य में सब समाप्त हो गया। लेकिन पहाड़ से पानी नीचे गिरता है, जिन्होंने आंख खोल कर उसे देखा होगा, उनके प्राणों में कुछ तरंगित हो गया। वह इस व्याख्या में नहीं आता, वह शब्दों में नहीं बंधता है, उसके लिए कोई व्याख्या नहीं हो सकती। लेकिन जिसने पहाड़ से पानी को गिरते देखा है, उसके प्राणों में भी कोई झरना जाग सकता है। वह इस व्याख्या में कहीं भी नहीं आता है।
अगर हम एक फूल को ले लें और एक वनस्पतिशास्त्री से पूछें कि फूल क्या है? तो वह कहेगा, ये-ये तत्व मिले हुए हैं, ये-ये रासायनिक केमिकल्स मिले हुए हैं, उनसे बना हुआ है। बात खत्म हो गई। लेकिन फूल किसी के प्राणों में जो गीत पैदा कर देता है, वह इस व्याख्या में नहीं आया, वह छूट गया हाथ से। केमिस्ट्री की लेबोरेटरी में जाकर फूल की सब व्याख्या हो जाएगी, सब तत्व निकाल कर रख देंगे, बता देंगे कि यह-यह है, यह-यह है। बात खत्म हो गई। काव्य नष्ट हो गया, रहस्य विलीन हो गया। व्याख्या तो हो गई, लेकिन फूल के प्राण समाप्त हो गए।

फूल केमिकल्स में ही नहीं है, फूल केमिकल्स के जोड़ से कुछ ज्यादा है।
वह वही उसे जान पाता है जिसके प्राण रहस्य से आंदोलित होते हैं, जो अज्ञात के लिए अपने द्वार खोलता है और व्याख्याओं को हटा देता है और फूल से सीधा संबंधित हो जाता है। उसके प्राणों में भी कोई फूल खिल जाते हैं, जिसको कोई विज्ञान कभी नहीं खोज पाएगा कि फूल से उन फूलों के खिल जाने का क्या संबंध है?
लेकिन जीवन में हमने हर चीज की व्याख्या कर ली है। आदमी की भी व्याख्या कर ली है, उसकी भी एनालिसिस कर डाली है, उसके शरीर को भी काट-छांट कर सब पता लगा लिया है। उसके मस्तिष्क की भी खोज कर ली है। हमने सब एनालिसिस कर ली है। और एनालिसिस में सब मर गया है। क्योंकि जो भी सुंदर है वह हमेशा सिंथेटिक है, उसकी कोई एनालिसिस संभव नहीं, उसका कोई विश्लेषण संभव नहीं। और जब भी हम किसी चीज का विश्लेषण करेंगे तो चीजें मर जाएंगी। फ्रायड ने प्रेम का विश्लेषण किया, सेक्स हाथ में आ गया, प्रेम विलीन
हो गया। फ्रायड ने बहुत मेहनत करके आखिर पता लगाया कि प्रेम-व्रेम कुछ नहीं है, यह तो सब सेक्स है।
और यह सच है। अगर विश्लेषण करेंगे तो यही पता लगेगा। अगर आप भी अपने प्रेम का विश्लेषण करेंगे तो मुश्किल में पड़ जाएंगे, फिर उसमें कुछ नहीं मिलेगा खोजने से, आखिर में सेक्स मिलेगा।
विश्लेषण पार्थिव पर ले आता है। जितना चीजों को तोड़िएगा उतनी नीची होती चली जाएंगी। आखिर में जो अत्यंत मैटीरियल है वही हाथ में आ जाएगा और जो भी स्प्रिचुअल था वह विलीन हो जाएगा। जो भी आध्यात्मिक है, जो भी आत्मिक है, वह सिंथेटिक है, वह जुड़ा हुआ है, वह इकट्ठा है, वह टोटेलिटी में है। वह टुकड़ों में नहीं है, वह समग्र में है। अखंड है, खंड में नहीं है। लेकिन विज्ञान और धर्मशास्त्र और तत्व-चिंतन सब खंड-खंड कर देता है। और तब चीज सब नष्ट हो जाती है।
एक सुंदर चित्र पिकासो ने बनाया। एक पेंटर है, उसने एक बहुत सुंदर चित्र बनाया। एक अमरीकी करोड़पति उसे खरीदने गया। उससे पूछा, कितने दाम होंगे? उसने कहा, पांच हजार डालर। वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहा, इसमें है भी क्या? एक कैनवस का टुकड़ा है, कुछ रंग हैं, इसमें है क्या ऐसी बात? आखिर पांच हजार डालर की इसमें कौन सी बात हो गई? एक कैनवस का टुकड़ा है, कितने दाम होते हैं उसके? और कुछ पेंट हैं, तो उनके कितने दाम होते हैं?
पिकासो ने अपने सहयोगी को कहा कि एक कैनवस का टुकड़ा इससे भी बड़ा ले आओ
और रंगों की पूरी की पूरी ट्यूब ले आओ और इनको दे दो, और जितने दाम इनको देना हो दे जाएं।
वह करोड़पति बोला, लेकिन मैं उस कैनवस के टुकड़े और रंगों को लेकर क्या करूंगा?

तो पिकासो ने कहा, फिर स्मरण रखो, यह जो चित्र है यह रंग और कैनवस ही नहीं है, यह उससे ज्यादा है। उसके हम दाम ले रहे हैं।
अगर इसको वैज्ञानिक के पास ले जाएं तो वह तोड़ कर, निकाल कर रख देगा कि कैनवस यह रहा, लाल रंग यह रहा, हरा रंग यह रहा, पीला रंग यह रहा। बात खत्म हो गई। चित्र कहां है?
चित्र तो टोटेलिटी में है; टुकड़ों में नहीं, समग्रता में है। टुकड़े कर दें, चित्र विलीन हो गया, खत्म हो गया, वहां कुछ भी नहीं बचा।
जिंदगी को जब हम तोड़ कर देखने की कोशिश करते हैं तो व्याख्याएं, इंटरप्रिटेशंस हाथ में रह जाते हैं और जीवन से हाथ छूट जाता है। रहस्य विलीन हो जाता है, सिद्धांत हाथ में रह जाते हैं। सिद्धांत मुर्दा होते हैं, रहस्य जीवित होता है। जीवन में जो भी आपने रहस्यपूर्ण जाना हो, उसको आप जब भी खंड-खंड करेंगे, तभी आप पाएंगे कि वह गया। आप सबको पता है सौंदर्य का। लेकिन कोई पूछे कि सौंदर्य क्या है? बस फिर मुश्किल हो जाएगी। फिर आप जो भी बताएंगे वह सब गड़बड़ हो जाएगा। आप सबने शायद प्रेम को जाना हो। लेकिन कोई पूछे कि प्रेम क्या है? सब गड़बड़ हो जाएगा। फिर जो बताएंगे वह सब व्यर्थ होगा। आपको खुद ही लगेगा कि यह मैं क्या बता रहा हूं!
बंगाल में एक सूफी फकीर हुआ। उसके पास एक बार एक बहुत बड़ा पंडित मिलने गया। वह फकीर तो प्रेम ही प्रेम की धुन लगाए रखता था। जो भी कोई आता और पूछता तो वह कहता--प्रेम। चौबीस घंटे प्रेम के ही गीत गाता और कहता कि प्रेम ही सब कुछ है, और प्रेम ही परमात्मा है, और जो प्रेम को जान लेता है वह सब जान लेता है। वह पंडित भी गया। उस पंडित ने जाकर पूछा कि महानुभाव, पहले यह तो बताइए, प्रेम कितने प्रकार का होता है? प्रेम ही प्रेम लगाए हुए हैं! कौन से प्रकार का प्रेम है?
वह सूफी बोला, तुमने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया। मुझे प्रकार का तो कोई भी पता नहीं, सिर्फ प्रेम का पता है। और मुझे पता ही नहीं चला कि कोई प्रकार भी होते हैं प्रेम में। प्रेम का मुझे पता है, लेकिन प्रकार का मुझे कोई पता नहीं।
तो वह पंडित हंसा। और पंडित हमेशा ही उन पर हंसते रहे हैं जो जानते हैं। उस पंडित ने अपना ग्रंथ खोला और कहा कि तुमको नहीं मालूम तो मेरे ग्रंथ में पांच प्रकार बताए हुए हैं। ये सुन लो! और अब दुबारा जब किसी से प्रेम की बात करो तो पहले समझ तो लो कि प्रेम कितने प्रकार का होता है। उसने अपने पांच प्रकार बताए, उनकी व्याख्या बताई। वह बहुत खुश था कि आज इस फकीर को ठीक पकड़ा, आज मुश्किल में डाल दिया। बताने के बाद उसने उस फकीर को पूछा कि कैसा लगा? जंचा? ये प्रकार ठीक हैं कि गलत हैं? नहीं तो मैं विवाद करने को तैयार हूं।
फकीर ने एक गीत गाया, क्योंकि इसके सिवाय कोई उत्तर नहीं हो सकता था। पंडित तर्क देता है, फकीर जो जानता है वह गीत गाता है। उसने एक गीत गाया। और गीत का अर्थ बहुत अदभुत था। गीत का अर्थ था कि तुम जब प्रेम के प्रकार बताने लगे तो मुझे उस सुनार की याद आ गई जो एक बार भूल से फूलों की बगिया में पहुंच गया था। अपने साथ वह, सोने को जिस पत्थर पर कसता था, उसको भी ले गया था। और फूलों को उस पर कस-कस कर देखने लगा कि फूल सच्चे हैं या झूठे? मुझे उस सुनार की याद आ गई जब मैंने तुम्हारी किताब सुनी। उसने कहा, हे परमात्मा, यह क्या अदभुत है! प्रेम को तो मैंने जाना, प्रकार का मुझे आज तक पता नहीं चला कि प्रकार भी होते हैं! और उसने कहा, मैं तुमसे निवेदन करता हूं, तुमने प्रकार जाने हैं, लेकिन प्रेम नहीं जाना होगा। जो प्रकार जानता है वह प्रेम नहीं जान सकता। क्योंकि प्रकार है विश्लेषण, एनालिसिस; और प्रेम है सिंथीसिस, प्रेम है समन्वय, इकट्ठा, समग्रता, टोटेलिटी।
तोड़ कर चीजें नष्ट हो गई हैं। और हमने सब तोड़ डाला है। सब तोड़ डाला है। इसलिए आत्मा विज्ञान को कभी ज्ञात नहीं हो सकती, अणु ज्ञात हो सकता है। अणु ज्ञात हो सकता है, एटम ज्ञात हो सकता है, आत्मा विज्ञान को कभी ज्ञात नहीं हो सकती। क्योंकि विज्ञान तोड़ता है, तोड़ते में आखिर में अणु पर पहुंच जाता है, परमाणु पर पहुंच जाता है। और जो जीवन का सत्य है वह जोड़ पर है।
जोड़ते जाओ, जोड़ते जाओ, आखिर में जब जोड़ने को कुछ न बचे तो जो है वह परमात्मा

है। तोड़ते जाओ, तोड़ते जाओ, जब आखिर में कुछ न बचे तो जो है वह परमाणु है। तोड़ने से नीचे टूटते-टूटते परमाणु हाथ में रह जाएगा, जोड़ने से जोड़ते-जोड़ते अंत में परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।
जीवन को जो जोड़ने की दृष्टि से देखता है उसे तो बहुत रहस्य मालूम होंगे और जो तोड़ने की दृष्टि से देखता है उसे कोई भी रहस्य मालूम नहीं हो सकता है। और जिसे रहस्य मालूम न हो उसके लिए परमात्मा तक जाने का कोई मार्ग नहीं।
इसलिए मैंने कल कहा कि अज्ञान का बोध जरूरी है। क्योंकि अगर आपका ज्ञान से छुटकारा हो जाए तो आप व्याख्याओं से, तोड़ने से, एनालिसिस से मुक्त हो जाएंगे। और तब कुछ हो सकता है, तब शायद छोटी-छोटी चीज आपको अत्यधिक रहस्य से भरी हुई मालूम पड़े।
लेकिन हमारी आंखें अंधी हो गई हैं व्याख्याओं में, हमारी आंखें बिल्कुल अंधी हो गई हैं। हमारी आंखें व्याख्याओं से अंधी हो गई हैं। हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जो हमें सिखा दिया जाता है, हम उसको दोहराते रहते हैं। फिर हम देख भी नहीं पाते, सोच भी नहीं पाते, क्योंकि व्याख्याएं बीच में आ जाती हैं। फिर कोई रास्ता देखने का नहीं रह जाता। चीजों से सीधे संपर्क का जो इमीजिएट कांटेक्ट है वह विलीन हो जाता है। सीधा कोई हमारा हृदय उनसे जुड़ नहीं पाता। हम दूर खड़े रह जाते हैं, चीजें दूर खड़ी रह जाती हैं, बीच में व्याख्याएं और शास्त्र खड़े हो जाते हैं और ज्ञान खड़ा हो जाता है।
जिस व्यक्ति ने फूलों के संबंध में सब जान लिया हो--सारा वनस्पतिशास्त्र, वह फूलों को देखने से वंचित हो जाएगा। उसे तो रंग दिखाई पड़ेंगे, केमिकल्स दिखाई पड़ेंगे, फूल नहीं दिखाई पड़ेगा। फूल से जो काव्य और जो पोएट्री पैदा होती है हृदय में, वह जो तरंग हो जाती है पैदा, वह उसके भीतर नहीं होगी। और जिसके भीतर होगी वह उसे पागल मालूम पड़ेगा कि तुम पागल हो।
अभी वैज्ञानिक चांद के संबंध में सब समझे ले रहे हैं। चांद के संबंध में जो भी काव्य है, नष्ट हो जाएगा। चांद पर आदमी उतर जाएगा, चांद की छाती पर खड़ा हो जाएगा, लेकिन चांद को जान नहीं पाएगा। चांद को तो उन्होंने जाना है जिनके हृदय उसको देख कर आनंद से भर गए हैं और जिनके हृदय में संगीत पैदा हुआ और गीत पैदा हुए हों और जिन्होंने चांद को धन्यवाद दिए हैं, उन्होंने चांद को जाना है। हालांकि वे चांद से बहुत दूर थे। और वैज्ञानिक चांद की छाती पर खड़ा हो जाएगा, फिर भी चांद को नहीं जान पाएगा। वह जो चांद की मिस्ट्री है वह नष्ट हो जाएगी।
विज्ञान और धर्मशास्त्र और फिलासफी, सब जीवन से मिस्ट्री को खत्म करने में लगे हुए हैं। इसीलिए तो आदमी नीचे गिरता जा रहा है। वह सब चारों तरफ एक ही काम चल रहा है कि जिंदगी को जान लो पूरा, उसमें अनजाना, अननोन कुछ भी न रह जाए।
आपको पता नहीं है, अगर किसी दिन वे सफल हो गए और जिंदगी में सब जान लिया गया और कुछ भी अनजाना न रहा, उसी दिन सारी दुनिया को आत्मघात कर लेना होगा। क्योंकि जीने का फिर कोई कारण नहीं रह जाएगा। अगर सब जान लिया गया तो उससे ज्यादा बोर्डम पैदा करने वाली और कोई बात नहीं होगी। जीते हैं हम अननोन के कारण, नोन के कारण नहीं। और जैसे-जैसे हम किसी चीज से परिचित होते जाते हैं, आदी होते चले जाते हैं, वैसे ही उसमें अर्थ खोता चला जाता है। कोई युवक किसी युवती को प्रेम करने लगे। जब वह प्रेम करता है तो युवती अननोन होती है, अज्ञात होती है। उस युवती के हृदय में भी वह युवक अज्ञात होता है। लेकिन कल वे जल्दी से शादी कर लेते हैं, इकट्ठे रहने लगते हैं, पति-पत्नी हो जाते हैं, ज्ञात हो जाते हैं, प्रेम विलीन हो जाता है। तब वे बड़े हैरान होते हैं कि यह क्या हुआ? पहले क्षणों में जो प्रेम का अनुभव हृदय को आंदोलित किया था वह कहां गया? अब वे आदी हो गए, अब वे एक-दूसरे को सोचने लगे कि हम जानते हैं, इसलिए प्रेम विलीन हो गया। प्रेम तो वहां हो सकता था जहां अननोन मौजूद था, अज्ञात मौजूद था। तो वहां हृदय खिंचता था,

खोज करता था, चैलेंज था, चुनौती थी। अब सब ज्ञात हो गया, पत्नी परिचित है और ज्ञात है, बात खत्म हो गई।
अभी कल सांझ को बहुत बढ़िया बात हुई। मेरे पास एक बहिन है वह गई, उसके गले में दर्द था, वह डाक्टर के पास गई। लौट कर उससे छोटी बहिन ने मुझे कहा कि डाक्टर और डाक्टर की पत्नी दोनों वहीं थे। लेकिन बड़ी बहिन ने कहा कि नहीं, वह पत्नी नहीं हो सकती, क्योंकि डाक्टर उससे बहुत प्रेम से बोल रहा था। वह जरूर नर्स होगी, कोई और होगी। इतने प्रेम से पत्नी से कोई पति कभी बोलते ही नहीं, न कोई पत्नी किसी पति से बोलती है।
वे परिचित हो गए, वह सब ज्ञात हो गया। अब बोझ है सब, ढोना है। अज्ञात तो विलीन हो गया है भीतर। अब कोई वहां अज्ञात आत्मा नहीं, जिसे जानना हो, जिसे प्रेम करना हो, परिचित होना हो। सब ज्ञात हो गया। इसीलिए तो दांपत्य एक बोर्डम है, एक ऊब है, एक घबड़ाहट है, एक परेशानी है।
लेकिन अगर जीवन में रहस्य हो, अगर चीजों के अज्ञात तत्व के प्रति हमारे जीवन में संवेदनशीलता हो, सेंसिटिविटी हो, तो आप हजार वर्ष एक पत्नी के साथ रहें, उसे जान थोड़े ही सकते हैं। उसमें बहुत अज्ञात मौजूद रहेगा, बहुत अज्ञात मौजूद रहेगा। जन्म-जन्म एक पत्थर को भी पूरा नहीं जाना जा सकता, एक फूल को पूरा नहीं जाना जा सकता। एक मनुष्य को, एक स्त्री को, एक पुरुष को कैसे पूरा जाना जा सकता है? बिल्कुल नहीं जाना जा सकता। बहुत अज्ञात है उसके भीतर।
वह जो अज्ञात है वही तो परमात्मा है। अगर उसकी तरफ आंख खुली रहे और हृदय खुला रहे, तो रोज-रोज सुबह आप पाएंगे--यह पत्नी तो नई है, जिसको मैंने कल नहीं जाना। यह तो बिल्कुल नई है। इसको मैंने कब जाना? कब पहचाना? रोज सुबह आप पाएंगे--प्रेम के पहले दिन मौजूद हैं, वे गए नहीं। वे नहीं जा सकते।
सुबह रोज सूरज उगता है। हम सोचते हैं वही सूरज उग रहा है जो कल उगा था। भूल में मत पड़ना! विज्ञान कुछ भी कहे। विज्ञान झूठ कहता होगा, रोज नया सूरज उगता है। आंख चाहिए देखने वाली! रोज नये बादल बनते हैं। जो बादल आज बने हैं, इसके पहले कभी नहीं बने थे और आगे भी कभी नहीं बनेंगे। और जो सूरज आज सुबह निकलेगा--जिस पैटर्न में, जिस बैकग्राउंड में, जिस पृष्ठभूमि में--वह बिल्कुल नया है, वह कभी इसके पहले नहीं हुआ था। लेकिन आप इसी ख्याल में हैं कि कल जो सुबह सूरज उगा था वही आज भी उगा है, तो देखना क्या है? आप इस ख्याल में हैं कि कल जो मित्र मिलने आया था वही आज भी मिलने आया है, तो फर्क क्या है?
नहीं! जो कल था वह गया। जीवन में कुछ भी ठहरता नहीं। प्रतिक्षण सब भागा जा रहा है, बदला जा रहा है। प्रतिक्षण सब नया है। लेकिन व्याख्याएं सब पुरानी हैं, इसलिए सब मामला गड़बड़ हो गया। व्याख्याएं पुरानी हैं, जीवन नया है। व्याख्याएं सीखी हुई हैं, जीवन बहुत अनसीखा हुआ है, रोज नये-नये रास्ते तय करता है। नये रास्ते तय करता है, जिन पर वह कभी नहीं चला। यही तो खूबी है जीवन की! यही खूबी तो उसके भीतर छिपा हुआ परमात्मा है! मृत और जीवित में यही तो फर्क है। मैटर, पदार्थ और चैतन्य में यही तो भेद है। चैतन्य प्रतिक्षण नया है, सब नया है। इस नये का बोध हो तो जीवन में रहस्य होगा और उस बोध से गति मिलेगी और जीवन के सत्य को जाना जा सकेगा।
लेकिन यह बोध कहां है? हम तो सब मुर्दे की तरह हैं। इकट्ठा किए हुए हैं अपने मन में। उसी के आधार पर जीते हैं, उसी के आधार पर देखते हैं। मैंने तो अब तक कोई पुराना आदमी नहीं देखा। नाम पुराने हैं, हर आदमी नया है। आप खुद ही सोचिए, आप यहां से तीन दिन के बाद जाएंगे, क्या आप वही आदमी होंगे जो आए थे? नहीं, बहुत कुछ बह गया होगा, मन बहुत कुछ नई दृष्टि में पड़ गया होगा, नये सोच-विचार हो गए होंगे। लेकिन जब आप लौट कर पहुंचेंगे तो आपके जो मित्र, जिनको आप अपने गांव में छोड़ आए हैं, समझेंगे कि वही आदमी आया। वही आदमी नहीं आता। वही पत्ते थोड़े ही निकलते हैं हर पतझड़ के बाद, दूसरे पत्ते आ गए। लेकिन लगता है दरख्त वही है।
पिछली बार भी हम माथेरान आए थे, यही दरख्त खड़े हुए थे। अब भी यही खड़े हैं। क्या वही दरख्त खड़े हुए हैं? नहीं, सब पत्ते बदल गए। सब बदल गया, सब

पक्षी बदल गए, गीत बदल गए, सब बदल गया। लेकिन हम सोचते हैं कि यह तो देखा हुआ है, वही जगह है। यह अंधी दृष्टि है, खतरनाक दृष्टि है। जीवन के प्रति नये का निरंतर बोध, जीवन के प्रति रहस्य के बोध को जो व्यक्ति उपलब्ध न हो, वह आदमी कितना ही भजन-पूजन करे, कितना ही मंदिर जाए, कितना ही शास्त्र पढ़े, सब व्यर्थ है। सब बिल्कुल व्यर्थ है, इसमें कोई भी अर्थ नहीं है।
यह कैसे होगा? यह रहस्य कैसे जगेगा? यह पर्त कैसे टूटे हमारी आंखों की
जो हमारे ऊपर बैठी है? हम सब सीखे हुए बैठे हैं व्याख्याएं। गुलाब का फूल आता है, हम फौरन कह देते हैं--बहुत सुंदर है। हो सकता है सिर्फ इसलिए कह रहे हों कि लोगों ने कहा कि गुलाब का फूल सुंदर है। सुना है बचपन से, इसलिए कहने लगे। उसको सौंदर्य को आपने जाना? नहीं जाना। इसलिए एक मुल्क में एक फूल सुंदर समझा जाता है, दूसरी कौम में दूसरा फूल सुंदर समझा जाता है। एक मुल्क में एक तरह की शक्ल सुंदर समझी जाती है, दूसरे मुल्क में दूसरी तरह की शक्ल सुंदर समझी जाती है। क्यों?
सुनते हैं, सीख लेते हैं। ये भी सब सीखी हुई बातें हैं। गुलाब को देखा
और बोल दिया--बहुत सुंदर है। लेकिन उसके सौंदर्य को जाना? उसके सौंदर्य को जानने के लिए तो कुछ और मार्ग खोलने पड़ेंगे हृदय के। उस फूल के पास थोड़ी देर चुपचाप बैठना पड़ेगा, बिना सोचे, बिना धर्म और विज्ञान को बीच में लाए फूल के निकट होना पड़ेगा, मैत्री करनी पड़ेगी, फूल को जगह देनी होगी। और जब फूल को आप अपने हृदय में जगह देंगे तो फूल अपने हृदय में आपको जगह देगा। तब पता चलेगा सौंदर्य का। उसके पहले कैसे पता चल सकता है? उसके पहले कुछ पता नहीं चल सकता। थोथे शब्द हैं जो हम दोहरा रहे हैं।
मैं जहां हूं वहां कुछ गुलाब के फूल लगे हैं। कोई भी आता है वह कहता है, बड़े सुंदर हैं! और जल्दी से उनको तोड़ लेता है। मैं कहता हूं, अगर सुंदर होते तो तुम तोड़ते? क्योंकि सौंदर्य को कौन दुष्ट तोड़ना चाहेगा? लेकिन तुम तोड़ते हो इससे पता चलता है कि सुंदर नहीं हैं। तुमने सुन लिया है कि सुंदर हैं। सुंदर को कोई तोड़ना चाहेगा? क्योंकि तोड़ने का अर्थ है नष्ट कर देना, तोड़ने का अर्थ है मार डालना। तुम कहते हो कि सुंदर है और जल्दी से तोड़ते हो, तो मुझे शक हो जाता है कि दो में से कौन सी बात सच्ची है? अगर फूल सुंदर है ऐसा तुमने जाना, तो तुम उसे तोड़ना चाहोगे? तुम उसे नष्ट करना चाहोगे? तुम उसके मालिक होना चाहोगे?
नहीं, तुम चाहोगे कि इसे कोई तोड़ न ले। तुम चाहोगे कि यह नष्ट न हो जाए। तुम इसे सहारा दोगे कि यह टिके, इसकी खुशबू और थोड़ी देर तक फैले। और लोग भी जो करीब से निकलें वे भी इसके सौंदर्य को, आनंद को उपलब्ध हो सकें, इसे जान सकें, इसे प्रेम कर सकें, तुम यह चाहोगे।
लेकिन नहीं, प्रेम तो कुछ भी नहीं है, सौंदर्य का बोध कुछ भी नहीं है। तोड़ा और जल्दी से खीसे में लगा लिया।
अगर कोई बच्चा सुंदर लगता है उसकी गर्दन तोड़ कर खीसे में लगाइएगा?
नहीं लेकिन, अगर बस चले तो आप यह भी कर सकते हैं। आपका बस नहीं चलता इसलिए। नहीं तो जो गुलाब के फूल को तोड़ता है वह बच्चे की गर्दन क्यों न तोड़ेगा? और करते भी हैं जहां तक बस चलता है। कोई स्त्री किसी को सुंदर लगती है, तो घर में कैद करके पत्नी बना लेता है, मालिक हो जाता है उसका। अगर मालकियत जाने लगे तो गर्दन काट देगा उसकी भी। ओनरशिप पैदा कर लेता है। जो चीज हमें सुंदर लगती है उसके हम तत्क्षण मालिक होना चाहते हैं।
और स्मरण रखें, जिसको कोई चीज सुंदर लगती हो वह मालिक नहीं होना चाहेगा, क्योंकि मालिक होने से ज्यादा कुरूपता और अग्लीनेस कुछ भी नहीं है। एक फूल का भी मालिक होना अत्यंत अग्ली एक्ट है, कुरूप कृत्य है। मालिक होना? प्रेम करना समझ में आता है, मालिक होना कैसे समझ में आता है!
लेकिन यह हमारी स्थिति है! लेकिन हम कहते हैं कि फूल बहुत सुंदर है। दोहराते हैं शब्द सुने हुए, याद किए हुए। और याद किए हुए शब्द हमेशा गड़बड़ हो जाते हैं, जीवन से उनका कोई संबंध, संपर्क नहीं रह जाता। जीवन आगे बढ़ जाता है, शब्द पीछे के रह जाते हैं। उनको हम बिठाते हैं, सब गड़बड़ होती है। जीवन में जो कनफ्यूजन है, जीवन में जो उलझन है, जीवन में जो द्वंद्व है, जीवन में जो चिंता है, जो एंग्जाइटी है, जीवन में जो समस्याएं ही समस्याएं

हैं और कोई समाधान नहीं, उसका कारण है कि हमने कुछ चीजें पहले से ही तय कर रखी हैं जीवन को बिना जाने, बिना देखे, बिना पहचाने। जीवन को बिना परिचित हुए, बिना अनुभव किए कुछ हमने तय कर रखा है, उसी को जीवन पर ठोंकते रहते हैं। जैसे कोई दर्जी हो, कपड़े पहले बना ले, फिर आदमी का नाप करे, और फिर आदमी के हाथ लंबे हों तो हाथ काट दे, पैर छोटे हों तो खींच कर बड़ा कर दे, ऐसी हमारी व्यवस्था है।
व्याख्याएं पहले हैं और जीवन पीछे है, व्याख्याओं को उसके ऊपर बिठाते हैं, इसलिए जीवन कुरूप हो जाता है, अपंग हो जाता है और हम हमेशा दूर रह जाते हैं जीवन से। उस धारा में नहीं बह पाते, जीवन के साथ एक नहीं हो पाते। जीवन के और हमारे प्राणों का संगीत जुड़ नहीं पाता, एक हार्मनी पैदा नहीं हो पाती। हम दूर खड़े रहते हैं, जीवन दूर चला जाता है। फिर हम सत्य को जानना चाहते हैं, परमात्मा को जानना चाहते हैं। यह कैसे होगा?
एक गांव में एक वृद्ध आदमी था। वह बहुत बूढ़ा हो गया था और बहरा हो गया था। मेरे देखे तो बहुत लोग बूढ़े होने के पहले ही बहरे हो जाते हैं। और बहुत लोग तो बहरे पैदा ही होते हैं। कान वाले लोग तो कम होते हैं। लेकिन वह बूढ़ा था और उसके कान धीरे-धीरे खराब हो गए थे। फिर उसके पड़ोस में एक युवा बीमार पड़ा और खबर आई कि शायद वह मर जाए, न बच सके। तो लोगों ने उस बूढ़े को कहा कि तुम जाओ, दो शब्द सहानुभूति के, संवेदना के उसे कहोगे तो उसे सुख होगा। तो उसने कहा, लेकिन मैं बहरा हूं और बीमार आदमी इतने जोर से नहीं बोल पाएगा कि मैं समझ सकूं। फिर भी तुम कहते हो तो मैं जाऊंगा।
तो वह गया। लेकिन बहरा आदमी क्या करता, उसने सोच लिया पहले से कि क्या- क्या बात करूंगा और यह भी कल्पना कर ली कि वह क्या-क्या उत्तर देगा। अनुमान कर लिया। उसके उत्तर मैं दे दूंगा। तो उसने सोचा, जाते से ही मैं पूछूंगा कि कहो कैसे हो? तो वह कहेगा, ठीक है, सब ठीक है। सभी लोग ऐसा कहते हैं। मरता हुआ आदमी भी यही कहता है कि सब ठीक है। कैसा झूठ है दुनिया में! वह भी कहता है सब ठीक है। सब बिल्कुल ठीक नहीं है, लेकिन सभी कह रहे हैं कि सब ठीक है।
उसने सोचा, वह तो कहेगा ही कि सब ठीक है। तो मैं कहूंगा कि परमात्मा की कृपा है, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। फिर मैं उससे पूछूंगा कि किस चिकित्सक का इलाज चल रहा है? तो वह किसी न किसी डाक्टर का तो नाम लेगा ही। तो मैं कहूंगा, वह तो बहुत ही अच्छा डाक्टर है। मेरे घर में भी उसके चरण पड़े तब से स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है। उसके तो पैर जहां पड़ जाएं वहीं स्वास्थ्य है। वह तो बड़ा जीवनदायी है। उससे मैं यह कहूंगा। ऐसा वह तय करके वहां गया।
उसने जाकर पूछा कि कहो ठीक तो हो?
उस आदमी ने कहा, कहां, ठीक कहां हूं, मरने के करीब बैठा हूं।
वह बोला, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, भगवान की कृपा है।
वह आदमी तो बहुत घबड़ाया, उसने यह आशा न की थी कि... यह कैसा आदमी है! उसने कहा, मैं मरने के करीब हूं, यह कहता है बहुत अच्छा है। यह किस शत्रुता का बदला ले रहा है? कब मैंने इससे कुछ बुरा कहा था जो यह बदला लेने आया है मरते वक्त! ऐसा कोई किसी से कहता है!
फिर उसने पूछा, किस चिकित्सक का इलाज चल रहा है?
उसने गुस्से में कहा कि मौत का! यमदूत चिकित्सा कर रहे हैं।
उसने कहा, वे तो बहुत ही भले चिकित्सक हैं। जहां उनके पैर पड़ जाएं वहीं जीवन ही जीवन है, स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है। उनके हाथों में तुम बिल्कुल सुरक्षित हो, घबड़ाना मत।
युवक तो घबड़ाया होगा, हैरान हुआ होगा!
लेकिन पूरे जीवन में ऐसा हो रहा है। हम बहरे हैं, हम अंधे हैं। शास्त्रों ने, विज्ञान ने, व्याख्याओं ने सब कान, आंखें, सब बंद कर दी हैं। जिंदगी से कुछ पूछते हैं, उत्तर हमें सुनाई नहीं पड़ता। उत्तर जो हम देते हैं वह हमारा अपना तैयार किया हुआ हजारों साल का उत्तर है, वह हम दे देते हैं। तब जिंदगी में हमारे उत्तर का कोई मेल नहीं होता। जिंदगी एक तरफ जाती

है, हम दूसरी तरफ जाते हैं। और तब जीवन अगर दुख और विषाद हो जाता हो तो आश्चर्य नहीं है।
जीवन से जुड़ना जरूरी है। सारी दीवालें तोड़ देनी जरूरी हैं बीच की ताकि जीवन से हम जुड़ जाएं। यह कैसे होगा?
तो पहला चरण इसलिए मैंने कहाः अज्ञान का बोध। दूसरा चरण मैं आपसे कहता हूंः रहस्य उन्मुखता, रहस्य की तरफ उत्प्रेरणा। सदा जहां रहस्य हो, वहां व्याख्याएं हटा देना और डूबने की कोशिश करना। एक दरख्त के पास कभी बैठ कर देखना। दरख्त उतना ही नहीं है जितना दिखाई पड़ता है। वह लकड़ी नहीं है जिसका फर्नीचर बनता है बस, उतनी बात नहीं है। एक दरख्त दिखा और हमने सोचा कि अच्छा फर्नीचर बन सकता है। उतना नहीं है। दरख्त एक जीवित फिनॉमिना है, एक घटना है, एक जीवन की अदभुत कृति है, एक सृजन है, प्रभु का, परमात्मा का अदभुत रूप है, कुछ प्रकट हो रहा है वहां, कुछ बन रहा है।
फूल उतने ही नहीं हैं कि खरीदे और किसी को भेंट कर दिए या माला बना दी
और किसी के गले में डाल दी। फूल उससे बहुत ज्यादा हैं। पत्ते-पत्ते में कोई कथा है, जो बहुत अदभुत है। छोटा-छोटा पत्ता भी कोई कहानी कह रहा है, जो अदभुत है। लेकिन सुनने वाले कान चाहिए, देखने वाली आंखें चाहिए। एक-एक कंकड़ में कुछ लिखा है। जो वेद में और कुरान में नहीं है वह एक-एक कंकड़ में है। जो गीता में और किसी महापुरुष के वचनों में नहीं है वह एक-एक पत्ते में है। लेकिन देखने वाली आंख चाहिए, खुले हुए कान चाहिए, खुला हुआ हृदय चाहिए। तो एक छोटे से पत्ते का कंपन कहीं ले जाएगा--किन्हीं दूर यात्राओं पर। पानी का कूदता हुआ एक कतरा किसी रहस्य को खोल देगा। आकाश में उठा हुआ कोई तारा कुछ कह जाएगा जो अबूझ है।
लेकिन खुली हुई आंख! आंख तो बंद है। कैसे यह खुलेगी?
थोड़ी कोशिश करनी पड़ेगी कि यह खुल सके, क्योंकि सैकड़ों साल इसको बंद करने में लगे हैं, हजारों साल ने इसको बंद किया है। धीरे-धीरे मनुष्य प्रकृति से टूटता गया है, टूटता गया है। अकेला रह गया है, आइसोलेटेड हो गया है। जब कि उसकी जड़ें हैं प्रकृति में, जब कि वहीं से कोई मार्ग हो सकता है। वह उससे टूटता गया, दूर हटता गया। हमारा कोई संबंध नहीं है, हम मनुष्य-निर्मित दुनिया में रह रहे हैं, परमात्मा के संसार से हमारा कोई संबंध नहीं है। मनुष्य ने एक दुनिया बना ली है अपनी, एक एनक्लोजर बना लिया है, एक घर बना लिया है, एक दीवाल बना ली है, उसके भीतर है। मनुष्य-निर्मित दुनिया है इसलिए कठिनाई हो गई है।
एक बड़ी दुनिया है जो चारों तरफ फैली है। जब मनुष्य नहीं था तब भी थी,
हो सकता है मनुष्य न रह जाए तब भी होगी। और कोई फर्क नहीं पड़ेगा--पक्षी ऐसे ही गीत गाएंगे और पौधे ऐसे ही निकलेंगे, चांद ऐसे ही रोशनी देगा, सूरज ऐसे ही घूमेगा--आदमी नहीं भी हो सकता है। तो भी यह सब ऐसा ही था और ऐसा ही होगा। और यह सूरज और यह पृथ्वी पर सब समाप्त नहीं है, ऐसे हजारों और लाखों सूरज हैं, ऐसे करोड़ों तारे हैं। जहां तक मनुष्य की दूर खोज जाती है, उसके पार भी बहुत कुछ है। असीम है सब, अनंत है सब।
इस असीम और इस अनंत के प्रति थोड़े हृदय को खोलना जरूरी है। उसके लिए जीवन में कुछ देखने के, सुनने के, जागने के प्रयोग करने जरूरी हैं। कभी किसी दरख्त को प्रेम करें, उसके पास रुकें। और आप हैरान हो जाएंगे, दरख्त में भी आपको कुछ चैतन्य के आभास मिलने शुरू होंगे।

एक वैज्ञानिक ने एक अदभुत काम किया इधर। कैक्टस का एक पौधा, जिसमें कांटे ही कांटे होते हैं और जिसमें कभी बिना कांटे की कोई शाखा नहीं होती, एक अमरीकन वैज्ञानिक उस पौधे को बहुत प्रेम करता रहा। लोगों ने तो समझा कि पागल है, क्योंकि पौधे को प्रेम करना! अरे आदमी को ही प्रेम करने वाले को बाकी लोग पागल समझते हैं, तो पौधे को प्रेम करने वाले को तो कौन समझदार समझेगा! उसके घर के लोगों ने भी समझा कि दिमाग खराब हो गया है।
वह सुबह से उठता तो वह पौधा ही पौधा था। उसी को प्रेम करता, उससे बातें
भी करता। तब तो और पागलपन हो गया। पौधे से बातें! लेकिन वह उससे बातें भी करता। और उस पौधे से वह निरंतर कहता रहा कि कोई मेरा विश्वास नहीं करेगा,

कोई मेरी सुनता नहीं, कोई मेरी मानता नहीं, मुझे तो लगता है कि तुममें भी जीवन है और अदभुत जीवन है। तुम भी शायद सुनते हो, तुम भी शायद समझते हो। शायद हमारी भाषाएं अलग हैं, शायद हमारे ढंग अलग हैं। पता नहीं क्या है! लेकिन तुम्हारे भीतर भी कुछ है। मैं कैसे उससे संबंधित हो जाऊं? क्या तुम मेरी बातों को सुनते हो या मेरे हृदय को अनुभव करते हो? या मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो प्रेम बहता है उसकी तरंगें तुम तक पहुंचती हैं? लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा? क्या तुम मेरे लिए कुछ खबर दोगे? और उसने कहा, खबर का मैं एक सूत्र तुम्हें बताता हूं--यह वह सात साल तक निरंतर उस पौधे से कहता रहा--कि अगर तुम तक मेरा प्रेम पहुंचता हो तो तुममें एक ऐसी शाखा निकल आए जिसमें कांटे न हों, तो मैं समझ जाऊंगा।
और सात साल बाद एक शाखा निकल आई जिसमें कांटे नहीं थे।
अब क्या समझिएगा? सारे अमरीका में परेशानी खड़ी हो गई। उस पौधे में तो कभी बिना कांटे की कोई शाखा होती नहीं। वह आदमी पागल साबित नहीं हुआ। उसके प्रेम की खबरें वहां तक पहुंचीं, वहां कोई है जिसने उसको सुना, उत्तर भी आया।
ये पौधे ही नहीं हैं जो पास खड़े हैं। ये पक्षी ही नहीं हैं जो यहां- वहां घूम रहे हैं। इनके भीतर भी जीवन ने अनूठे रास्ते पकड़े हैं, इनके भीतर भी जीवन प्रकट हुआ है, इनके भीतर भी जीवन ने रूप लिया है, इनके भीतर भी कोई केंद्र है जहां जीवन मौजूद है--वही जीवन जो हमारे भीतर मौजूद है। इनसे कम्युनिकेशन हो सकता है, इनसे संबंध हो सकता है। इन तक प्रेम पहुंचाया जा सकता है, इनसे प्रेम पाया जा सकता है। यह कठिन नहीं है। लेकिन हमारे द्वार बंद हैं इसलिए कुछ पता नहीं चलता कि जीवन में क्या है। परमात्मा चारों तरफ है और हम पूछते हैं कि ईश्वर कहां है? और हम पूछते हैं कि किस मंदिर में जाएं, मस्जिद में जाएं कि गिरजाघर में जाएं?
जो भी यह पूछता है कि ईश्वर को खोजने कहां जाएं, वह जरूर अंधा है; क्योंकि जिसको ख्याल आएगा थोड़ा सा भी, थोड़ा सा भी दिखाई पड़ेगा चारों तरफ, वह पाएगा--ईश्वर तो यहां है। यह जो चारों तरफ फैली हुई प्रकृति है, यह परमात्मा का घर है। ये जो चारों तरफ रूप दिखाई पड़ रहे हैं, इन रूपों से मत भटक जाना, इनके भीतर कुछ है जो अरूप है। उससे जुड़ना, उससे संपर्क साधना, उसके पास जाना, उसे प्रेम से पुकारना। कोई संबंध होगा, कोई प्रेम फलित होगा। और इसी जीवन में और चारों तरफ फैले इसी जगत में, इसी विस्तार में हमारे प्राण संयुक्त होंगे तो ज्ञात होगा कि क्या है। तो ज्ञात होगा कि क्या है, तो अनुभव में आएगा, प्रतीति होगी कि सत्य क्या है, ईश्वर क्या है, आत्मा क्या है। जब तक यह नहीं तब तक सब व्यर्थ है। और इसके लिए तो मन के दर्पण को खूब साफ करना पड़े, धूल हटानी पड़े, चित्त से सारी व्याख्याएं हटानी पड़ें। छोटे बच्चे जैसा हो जाना पड़े, जो बिल्कुल निर्दोष आंखों से दुनिया को देखता है।
और तब, तब ठीक यहीं, इसी जगह कुछ होगा। उसके लिए इशारे किए जा सकते हैं, उसके लिए कहा नहीं जा सकता कि क्या होगा। उसकी हम कल बात करेंगे कि क्या हो सकता है और हम क्या करें कि जिस भांति इस प्रकृति से टूटे हुए संबंध जुड़ जाएं। मनुष्य अपरूटेड हो गया है, उसकी जड़ें उखड़ गई हैं। इसलिए तो सारी उदासी है। कोई पौधा इतना उदास नहीं, कोई पक्षी इतना उदास नहीं। मनुष्य के पास सब कुछ है और उदास है! क्या हो गया है? जरूर प्रकृति से कहीं हमारी जड़ें ढीली हो गई हैं। कहीं रस के स्रोत से हम टूट गए हैं, दूर हो गए हैं। इसलिए सब कुम्हलाया जा रहा है, सब सूखा जा रहा है। कांटे ही कांटे लगते हैं, कोई फूल दिखता नहीं, कोई फूल निकलता नहीं।
ये जड़ें वापस जोड़नी जरूरी हैं। साधना का कोई और अर्थ नहीं है, साधना
का अर्थ है अपनी रूट्स को वापस, अपनी जड़ों को उनके मूलस्रोत तक वापस पहुंचा देना, जहां से वे जल पा सकें, जहां से वे प्राण पा सकें, जहां से वे जीवन के मूल केंद्र से संबंधित हो सकें।
लेकिन परमात्मा का जब भी ख्याल उठता है तो हम आकाश की तरफ हाथ जोड़ लेते हैं। परमात्मा का जब भी ख्याल उठे तो जड़ों का विचार करना, सिर की तरफ देखने से कोई फायदा नहीं है। नीचे की तरफ, जहां से जीवन जुड़ा है, वहां से।

यह रहस्य का बोध! अज्ञान का बोध, मैंने कल आपसे कहा। रहस्य का बोध! जीवन में एक काव्य होना चाहिए, जीवन में एक संगीत होना चाहिए, सौंदर्य का बोध होना चाहिए, प्रेम का बोध होना चाहिए। जुड़ना चाहिए आसपास। प्रेम का और क्या अर्थ है? अर्थ है जुड़ना।
इसलिए तो कहा कि प्रेम से परमात्मा मिल सकता है। उसका क्या मतलब है? उसका मतलब यह नहीं है कि प्रेम-प्रेम, प्रेम-प्रेम जपेंगे तो परमात्मा मिल जाएगा। प्रेम का अर्थ हैः जुड़ना। अकेला प्रेम है जो जोड़ता है, और सब तोड़ता है।
प्रेम को फैलाना होगा, चारों तरफ फैलाना होगा। कभी विचार करें, कभी देखें, अभी दो दिन यहां हैं, रात जब तारे आकाश में हों तो चले जाएं एकांत में, जरा आंखें साफ करके पहली दफा तारों को देखें। सब हटा दें अपने मन को और चुपचाप तारों के नीचे बैठे रह जाएं। जाने दें हृदय के प्रेम को तारों तक। और प्रेम की कोई पुकार अनसुनी नहीं आती, प्रेम की कोई पुकार बिना प्रत्युत्तर के नहीं लौटती, उत्तर लाती है साथ। यह असंभव है कि प्रेम खाली लौट आए, दुगना प्रेम लेकर लौटता है।
तो तारों को जब प्रेम के गीत से भर कर आप देखेंगे तो वहां से भी कुछ आएगा। और जब वृक्षों के पास प्रेम से बैठेंगे तो वहां से भी कुछ आएगा। पक्षी भी कुछ देंगे। सब तरफ से कुछ मिलेगा। जो बाहर की तरफ प्रेम फेंकता है उसके हृदय की तरफ प्रेम के अनंत-अनंत स्रोत आने शुरू हो जाते हैं। और तब उसके भीतर एक ऊर्जा होगी, एक जागरण होगा, एक होश आएगा, वह मिस्टीरियस उसको पकड़ लेगा, वह जो रहस्यपूर्ण है उसको पकड़ लेगा। तब वह व्यक्ति नहीं रह जाएगा, तब वह समष्टि का धीरे-धीरे एक अंग होने लगेगा। तब वह इकाई नहीं रह जाएगा, वह सबका एक हिस्सा होने लगेगा। धीरे-धीरे उसका व्यक्ति मिटता जाएगा और परमात्मा प्रकट होता चला जाएगा।
जो व्यक्ति रहस्य से जितना दूर है उतना अहंकार से भर जाता है। जो व्यक्ति जितना अहंकार से भर जाता है उतना ही जीवन के रहस्य से दूर होता चला जाता है। अहंकार का अर्थ हैः मैं हूं और मेरा किसी से कोई संबंध नहीं है। मैं हूं और मेरा किसी से कोई प्रेम नहीं है। मैं सेवा ले सकता हूं, शोषण कर सकता हूं, लेकिन मेरा कोई संबंध नहीं है। मेरे प्राण अलग और दूर हैं। इसलिए अहंकार ऊपर उठना चाहता है और अकेला होना चाहता है। जितना आदमी ऊपर उठता जाता है उतना अकेला होता जाता है। जितना ज्यादा धन उसके पास होता जाता है उतना वह टूटता जाता है दूसरों से, उसके भवन में बंद होता चला जाता है। वह किसी देश का राजा हो जाता है, राष्ट्रपति हो जाता है, सबसे टूट जाता है, अलग खड़ा हो जाता है।
मैं अलग होना चाहता है; प्रेम जुड़ना चाहता है। जो मैं के रास्ते पर जाएगा वह सबसे टूट जाएगा और उसकी जड़ें छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। वह फूल तोड़ सकता है, फूल को जान नहीं सकता। वह किसी की गर्दन दबा सकता है, किसी को प्रेम नहीं कर सकता।
हिंदुस्तान से तैमूरलंग जब वापस लौटा, एक गांव में ठहरा। उसके स्वागत में आसपास की वेश्याएं नाचने के लिए आईं, रात को उसके दरबार में वे नाचीं। जब वे लौटने लगीं, अंधेरी रात थी। उसने उनके सौंदर्य की खूब प्रशंसा की और उनके नृत्यों और उनके गीतों का बहुत आनंद लिया। और उन्हें बहुत भेंटें दीं और कहा कि मैंने ऐसी सुंदर स्त्रियां नहीं देखीं, ऐसे गीत नहीं देखे, ऐसे नृत्य नहीं देखे। मैं आनंदित हुआ। और उसने उन्हें बहुत-बहुत भेंटें दीं। लेकिन रात अंधेरी थी, अमावस की थी। उन वेश्याओं ने कहा, रात अंधेरी है, हमें दूर तक जाना है। तो उसने अपने सिपाहियों को कहा कि जाओ और बीच के सब गांवों में आग लगा दो ताकि रोशनी हो जाए। क्योंकि कोई यह न कहे बाद में कि तैमूरलंग के पास नाचने आई हुई वेश्याएं अंधेरे में वापस लौटीं। उसने रात में भी दिन करवा दिया। आसपास के दस-बारह गांवों में आग लगा दी गई। सोए हुए लोग वहां जल गए और वे वेश्याएं प्रकाश में लौटीं।
इसने नृत्य देखा होगा? इसने संगीत सुना होगा? इसने उनके सौंदर्य को अनुभव किया होगा? कैसे संभव है? यह कैसे संभव है?

तो चित्त पर निरंतर विचार करना जरूरी है, चित्त के प्रति सजग होना जरूरी है कि मैं जो कर रहा हूं कहीं वह मेरे भीतर क्रूरता, घृणा, हिंसा, इन सबको तो बलिष्ठ नहीं करता जाता? कहीं मेरे भीतर अहंकार को तो पुष्ट नहीं करता जाता?
एक तरफ मैं यह करता रहूं जीवन भर और फिर अचानक जब मैं इससे घबड़ा जाऊं, अहंकार से पीड़ा पाऊं, अशांति पाऊं, दुख से भर जाऊं, तो मैं कहूं कि मुझे परमात्मा चाहिए, मुझे ईश्वर चाहिए, मुझे मोक्ष चाहिए, तो कैसे होगा? यह अहंकार को समझना होगा, तोड़ना होगा, मिटाना होगा। अहंकार मरे तो ही कुछ हो सकता है।
अहंकार के मरने के मैंने दो सूत्र आपसे कहे, तीसरे सूत्र की मैं कल चर्चा करूंगा। ज्ञान जाने दें, रहस्य आने दें। ये दो बातें मैंने कहीं, कल तीसरी बात आपसे कहूंगा। इस संबंध में कुछ प्रश्न होंगे तो वह दोपहर और सांझ बात हो जाएगी।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। आज की बात के बाद सुबह का ध्यान
और भी आसान हो जाना चाहिए। आज की बात के बाद सुबह के ध्यान में और अर्थ आ जाना चाहिए। तो अब मैं कुछ और नहीं कहूंगा, कल मैंने सुबह के ध्यान के बाबत आपसे कहा है।
हम सब दूर-दूर हट जाएंगे। दरख्तों के नीचे चले जाएं या कहीं भी चले जाएं, दूर हट जाएं।

समाधि कमल
ग्यारहवां प्रवचन

ध्यान--जागरण का द्वार

तने दिन की चर्चा में मैंने यह कहा कि अज्ञानी मनुष्य, अज्ञान से घिरा हुआ व्यक्ति जो भी करेगा वह गलत होगा। वह जो भी करेगा गलत होगा।

पूछा हैः यदि अज्ञान से घिरा हुआ व्यक्ति जो भी करेगा वह गलत होगा, तो ध्यान, जागरण, इसकी जो चेष्टा है वह भी उसकी गलत होगी। फिर तो कोई द्वार नहीं रहा, फिर तो कोई मार्ग नहीं रहा। इससे संबंधित और दो-तीन प्रश्न भी हैं इसलिए सबसे पहले इसी प्रश्न को मैं ले लेता हूं।

निश्चित ही, भीतर अज्ञान हो तो हम जो भी करेंगे वह ठीक नहीं हो सकता। सामान्यतया सोचा जाता है कि कर्म ठीक होते हैं या गलत होते हैं। एक आदमी मंदिर जाता है तो हम कहते हैं ठीक है; एक आदमी वेश्यागृह में जाता है तो हम कहते हैं गलत है। एक आदमी चोरी करता है तो हम कहते हैं बुरा है, पाप है; एक आदमी दान देता है तो हम कहते हैं शुभ है, पुण्य है। हम कर्मों को देखते और विचार करते हैं। मेरे देखे यह आमूलतः गलत है। कर्म न तो अच्छे हो सकते हैं और न बुरे; चेतना अच्छी होती है या बुरी। और चेतना यदि गलत हो तो चाहे कर्म ऊपर से कितना ही ठीक दिखाई पड़े, बुनियाद में, आधार में गलत होगा।
जैसे, एक आदमी जिसने जीवन भर शोषण किया हो, शोषण से धन इकट्ठा किया हो, मंदिर बनाए, तो मंदिर बनाना कृत्य अच्छा नहीं हो सकता। मंदिर बनाना दिख रहा है कि बहुत अच्छा, लेकिन उसके प्रयोजन अच्छे नहीं हो सकते हैं। हो सकता है वह अपने नाम को छोड़ जाने के लिए मंदिर बनाता हो, अपने अहंकार की पुष्टि के लिए मंदिर बनाता हो। और सच तो यही है कि अब तक जो मंदिर बनाए गए हैं उनमें परमात्मा की कोई स्थापना नहीं हुई, उनमें तो अपने-अपने बनाने वालों का अहंकार ही प्रतिष्ठित हुआ है। इसीलिए तो जो मंदिर बनाता है उसकी चिंता इसकी बहुत कम होती है कि उसके भीतर क्या होता है, उसकी चिंता यही ज्यादा होती है कि उसके बाहर किसका नाम है। नाम की चिंता प्रमुख है, परमात्मा की और प्रार्थना की कोई चिंता नहीं है।
जो व्यक्ति, भीतर से जिसकी चेतना शुभ नहीं हुई है, जाग्रत नहीं है, कुछ
भी करेगा--वह दान भी देगा तो भी दान में जिसे उसने दान दिया उसके प्रति प्रेम नहीं होगा। हो सकता है दान में भी अहंकार की ही पूजा हो। उसमें भी वह यह अनुभव करना चाहता हो कि मैं बड़ा दानी हूं। उसमें भी वह मजा लेना चाहता हो। उसमें भी उसका रस हो। होगा! उसका रस यह नहीं होगा कि किसी की दरिद्रता मिट जाए। क्योंकि अगर दानी का यही रस होता कि किसी की दरिद्रता मिट जाए तो उसके पास धन इकट्ठा कैसे होता? अगर दरिद्रता मिटाना ही उसके चित्त की स्थिति होती, दुख मिटाना ही उसके चित्त की स्थिति होती, तो धन इकट्ठा कैसे होता? दरिद्रता पैदा कैसे होती?
आश्चर्यजनक है कि दुनिया में दानी भी हैं और दरिद्रता भी है! और हो सकता है ये दानी ही दरिद्रता के लाने में भी कारण हों। क्योंकि यह धन कहां से आता है?
जब कोई धन इकट्ठा करता है तो दूसरी तरफ दरिद्रता पैदा होती है। जब एक तरफ धन के ढेर लगने लगते हैं तो दूसरी तरफ धन का अभाव पड़ जाता है। जिसके पास ढेर बहुत बढ़ जाते हैं वह उनके दान भी करने लगता है। लेकिन उस चित्त में दरिद्र के प्रति प्रेम नहीं है। और यह दान जो वह कर रहा है इसमें भी और नये इनवेस्टमेंट हैं, मोक्ष तक के इनवेस्टमेंट हैं। वह दान इसलिए कर रहा है, यहां उसने इकट्ठा किया, यहां उसने सुख भोगा--जिसको उसने सुख समझा, वह सुख हो या न हो--यहां उसने बहुत धन इकट्ठा किया, बड़े मकान बनाए, अब वह इस बात के लिए भी चिंतित है कि स्वर्ग में उसकी हवेली छोटी न हो, वहां भी बड़ी होनी चाहिए। वहां भी पुण्य का खाता वह खोल लेना चाहता है, वहां भी जाकर वह दावेदार होगा, वहां भी जाकर वह अपना इंतजाम कर लेना चाहता है, इसलिए सारी व्यवस्था कर रहा है। दरिद्र से उसे प्रेम नहीं है। अपने अमीर होने से

पश्चात्ताप नहीं है। धन के प्रति उसका मोह कम नहीं हुआ है, लोभ उसका कम नहीं हुआ है, बल्कि और बढ़ गया है। इस संसार को छोड़ कर परलोक तक उसके लोभ की व्यापकता हो गई है, वह दूर तक सोचने लगा है। यहां उसका बैंक है, यहां उसका एकाउंट है। वहां परमात्मा के जगत में भी अगर कोई एकाउंट हो सकता है, उसकी भी व्यवस्था है, वह कर रहा है। वह वहां दर्ज करवा रहा है कि स्मरण रहे, मैं यहां भी दरिद्र नहीं था, मैं वहां भी दरिद्र नहीं रहना चाहता हूं। और तब उससे दान निकल रहा है। तब वह बांट रहा है गरीबों को।
यह सब झूठा होगा, यह मिथ्या होगा। यह शुभ नहीं है। यह महत्वपूर्ण नहीं
है कि आप क्या करते हैं, महत्वपूर्ण यह है कि आप क्या हैं! आपका होना महत्वपूर्ण है, आपकी बीइंग। आपका एक्शन और आपकी डूइंग नहीं। आप क्या करते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आप क्या हैं? क्योंकि उसी होने से तो आपका कृत्य निकलेगा, उसी होने से आपका कर्म निकलेगा।
कर्म हो सकता है अच्छा दिखाई पड़े। और अच्छा क्यों दिखाई पड़ता है? समाज
को जिसमें सुविधा होती है वह अच्छा दिखाई पड़ने लगता है कर्म, जिसमें समाज को असुविधा होती है वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन धर्म के और आत्मा के जगत में वैल्यूज अलग हैं, मूल्य अलग हैं। समाज मूल्य नहीं है। कौन सी स्थिति मुझे अधिक जागरण, अधिक आनंद, अधिक सत्य के करीब ले जाती है, वह शुभ है। कौन सी स्थिति मेरे भीतर दुख को लाती है, चिंता को लाती है, अंधेरे को लाती है, अज्ञान को बढ़ाती है, वह अशुभ है।
सवाल बिल्कुल भीतर है। और इस भीतर को हम आचरण से नहीं तौल सकते हैं। क्योंकि भीतर दूसरा आदमी हो सकता है, आचरण में दूसरा आदमी हो सकता है। भीतर बहुत क्रोधी आदमी हो सकता है, ऊपर क्षमा की बातें कर सकता है। और अक्सर ऐसा होता है, जो भीतर बहुत क्रोधी होता है वह बाहर क्षमा को ओढ़ लेता है। जो बहुत कुरूप अपने को अनुभव करता है वह सुंदर वस्त्र पहनता है ताकि कुरूपता छिप जाए। जो जितना कुरूप ख्याल करता है अपने को उतने आभूषण लाद लेता है ताकि कुरूपता छिप जाए। सौंदर्य को ओढ़ता है ताकि कुरूपता दिखाई न पड़े। जहां जितना क्रोध है वहां उतनी क्षमा को ओढ़ने की चेष्टा चलती है। जहां भीतर जितनी हिंसा है वहां ऊपर अहिंसा को ओढ़ने की तरकीबें चलती हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है, क्योंकि बाहर हम वह नहीं दिखना चाहते हैं जो हम भीतर हैं। इसलिए हम अहिंसा ओढ़ सकते हैं, सस्ती अहिंसा ओढ़ सकते हैं और उसके ओढ़ने के भीतर अपनी हिंसा को छिपा सकते हैं।
यह जो स्थिति है, यह जो हमारी स्थिति है भेद की--भीतर हम कुछ और हैं, बाहर हम कुछ और हैं। इसलिए केवल कृत्य से नहीं सोचा जा सकता कि क्या हो रहा है। कृत्य से नहीं सोचा जा सकता। वही आदमी चर्च को बनाने के लिए पैसा देता है, वही आदमी वार-फंड में भी पैसा देता है। वही आदमी है! वही मंदिर भी बनाता है, वही युद्ध के लिए भी पैसा दान करता है। यह इस आदमी की चेतना कैसी है? क्योंकि जिस आदमी ने परमात्मा के मंदिर के लिए दान दिया, उसके लिए युद्ध के लिए दान देने का अब कोई उपाय नहीं रह गया।
लेकिन वही आदमी दे रहा है! उसके पास पैसा है, वह युद्ध में भी देता है।
वह उस चर्च को भी देता है जहां प्रेम की शिक्षा दी जाती है और वह युद्ध को भी देता है जहां आदमी की हत्या की जाती है। वही गीता भी छपवा कर बंटवाता है, वही युद्ध के लिए भी सहायता करता है।
यह जो आदमी है इसके भीतर चेतना सोई हुई है, यह जो भी कर रहा है वह गलत है। गलत चेतना से ठीक कर्म असंभव है। एक ऐसे कुएं से जिसमें जहर भरा हो, ऐसा पानी निकालना असंभव है जिसमें जहर ऊपर न आ जाए। आएगा ही! जो भीतर है वही बाहर आता है। इसलिए मैंने कहा कि अज्ञान की स्थिति में जो भी हम करेंगे वह गलत होगा, वह शुभ नहीं हो सकता।
तो दूसरी बात उन्होंने यह पूछी है कि फिर यह ध्यान का क्या होगा? जागरण का क्या होगा? साधना का क्या होगा? फिर तो यह भी गलत हो जाएगी।
निश्चित! अगर यह भी एक कर्म हो, एक एक्शन हो, तो गलत हो जाएगी। यह एक्शन
ही नहीं है, यह कर्म ही नहीं है, इसलिए गलत नहीं हो सकती।
अब इस थोड़ी सी बात को समझना बहुत जरूरी है।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है, कोई कर्म नहीं है। ध्यान कोई एक्ट नहीं है। मैंने कहा, कोई भी कर्म अज्ञान से निकलेगा, गलत होगा। ध्यान कोई कर्म नहीं है।
जापान में एक बहुत बड़ा राजा हुआ। उसने सुनी खबर कि पास के पहाड़ पर एक फकीर लोगों को ध्यान सिखाता है। बहुत लोगों ने खबर दी कि बहुत शांति मिली है, बहुत आनंद मिला है और प्रभु की झलक दिखाई पड़ी है। तो वह राजा भी गया। दूर-दूर तक पहाड़ में फैला हुआ आश्रम था, बीच में बड़ा भवन था, जो उस पूरे आश्रम में सबसे ऊपर और अलग दिखाई पड़ता था, बाकी तो झोपड़े थे। तो वह फकीर झोपड़ों का तो बताने लगा कि वे यहां स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां पढ़ते हैं, यहां वह करते हैं। वह राजा बोला कि मैं समझ गया झोपड़ों की बात, लेकिन इस बीच के बड़े भवन में क्या करते हैं? लेकिन फकीर इस बात को पूछते ही चुप हो जाता था। राजा बहुत परेशान हुआ। वह दूसरे झोपड़ों के बाबत फिर बताने लगा। आखिर विदा होने का वक्त आ गया, न तो वह उस बड़े भवन में ले गया और न उसके संबंध में कुछ कहा।
राजा ने चलते हुए कहा कि या तो तुम पागल हो या मैं पागल हूं। जिस चीज
को देखने आया था उसको तो तुमने दिखाया भी नहीं, उस बड़े भवन में मुझे ले भी नहीं गए, उसके संबंध में कुछ कहते भी नहीं। मैं दो-चार बार पूछ भी चुका। और तुम यह सब फिजूल--कि भिक्षु यहां स्नान करते हैं, यहां पानी है, यहां यह है--यह सब तुमने मुझे बताया, इससे क्या प्रयोजन है?
वह फकीर बोला, मैं जरा मुश्किल में पड़ गया जब आप पूछते थे कि भिक्षु यहां क्या करते हैं? तो कठिनाई हो गई कि बात गड़बड़ हो जाएगी। भिक्षु वहां कुछ करते नहीं, वहां ध्यान में जाते हैं। और ध्यान कोई करना नहीं है। इसलिए मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अगर मैं कहूं कि ध्यान करते हैं, तो गलती हो जाएगी, क्योंकि ध्यान किया नहीं जाता।
वह कोई एक्ट नहीं है आपका, आपकी कोई क्रिया नहीं है। बल्कि जब आप सारी क्रियाएं छोड़ कर मौन हो जाते हैं, वहां कोई क्रिया नहीं रह जाती; शरीर कुछ नहीं कर रहा है, मन भी कुछ नहीं कर रहा है; शरीर भी शांत हो गया, मन भी शांत हो गया। दो ही तो क्रियाएं होती हैं--शरीर की या मन की। आत्मा की कोई क्रिया नहीं होती। आत्मा की कोई भी क्रिया नहीं होती। शरीर की क्रिया होती है या मन की क्रिया होती है। ध्यान वह स्थिति है जब शरीर की भी सारी क्रियाएं शांत हो गई हैं, मन की भी सारी क्रियाएं शांत हो गई हैं। फिर क्या है? वहां कोई एक्शन नहीं है, वहां सिर्फ बीइंग है। वहां कोई कर्म नहीं है, मात्र आत्मा है। वहां मात्र होना मात्र है। वहां कुछ किया नहीं जा रहा है, हम सिर्फ हैं।
इस फर्क को समझ लेंगे तो आपको ख्याल में आ जाएगा कि अकेला ध्यान ऐसी स्थिति और अवस्था है जिसको अज्ञानी भी कर सकता है। भाषा की भूल है। अज्ञानी भी कर सकता है और कुछ बुरा नहीं होगा। बल्कि इसके ही द्वारा उसका अज्ञान टूटेगा और नष्ट होगा।
मैं एक शिविर में था। वहां एक अत्यंत वृद्ध महिला, कोई अस्सी वर्ष की बूढ़ी महिला भी उस शिविर में आईं। वे बड़ी सीधी महिला हैं, अत्यंत गांव की हैं, बिल्कुल बे-पढ़ी-लिखी हैं। बहुत लोग उनको आदर करते हैं। कारण खोजना कठिन है आदर का। क्योंकि न वे कुछ बोलती हैं, न कोई खास बात है, गांव की बिल्कुल सामान्य महिला हैं। फिर भी उनके घर को लोग तीर्थ मानते हैं और आसपास उनके घर के चक्कर लगा जाते हैं।
वे भी आ गईं। किसी उनके भक्त ने कहा कि वहां चलिए, तो उन्होंने कहा, ठीक है, तो वे भी आ गईं। उनके पास गुजरात के एक बहुत प्रतिष्ठित वकील कोई बीस-तीस वर्षों से सब कुछ छोड़ कर उनके पास ही रहते हैं, उनके पैर दाबते रहते हैं, उनके कपड़े धोते रहते हैं। वे उनके साथ आए हुए थे।
सुबह की चर्चा में मैंने ध्यान के लिए समझाया। रात को हम ध्यान के लिए बैठे तो वे वकील मेरे पास आए और उन्होंने कहा उन महिला के बाबत कि वे तो नहीं आती हैं। मैंने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो, तो वे हंसती हैं और कहती हैं, तुम जाओ। मैं नहीं समझा, उन्होंने कहा। वकील ने मुझसे कहा कि मैं नहीं समझ पाया वे क्यों नहीं आती हैं?

मैंने कहा, कल सुबह मेरे सामने ही उनसे पूछना।
कल सुबह उन वकील ने खड़े होकर उनसे पूछा कि मैं यह निवेदन करता हूं कि
यह बताइए आप कल आईं क्यों नहीं? जब मैंने आपसे बार-बार कहा कि ध्यान करने चलिए तो आप नहीं आईं।
तो वे हंसने लगीं और मुझसे बोलीं, आपने इतना समझाया सुबह कि ध्यान किया नहीं जाता। मगर ये फिर भी मुझसे कहने लगे कि ध्यान करने चलिए, ध्यान करने चलिए। तो मुझे हंसी आने लगी कि ये कुछ समझे नहीं तो ध्यान क्या करेंगे? तो मैंने इनसे कहा, तुम जाओ। और जब ये चले आए तो मैं ध्यान में चली गई। उन्होंने मुझसे कहा, जब ये चले आए और कमरा सन्नाटा हो गया, तो मैं ध्यान में चली गई। ये यहां ध्यान करते रहे और वहां मैं ध्यान में चली गई। ध्यान करना नहीं है, क्योंकि करने में एक एफर्ट है, कोशिश है, काम है। ध्यान कोई काम नहीं है, ध्यान एक अवस्था है। ध्यान ऐसी अवस्था है जहां कोई क्रिया नहीं हो रही है।
तो इसलिए अज्ञान की स्थिति में एकमात्र द्वार है जहां से ज्ञान तक पहुंचा जा सकता है। वह ध्यान है। बाकी तो फिर सब क्रियाएं हैं। कोई प्रार्थना करता है तो क्रिया हो जाती है। लेकिन अगर वह प्रार्थना न करे और प्रार्थना में हो जाए, तो फिर वह अक्रिया हो जाएगी, फिर वह ध्यान हो जाएगा। जब मैं आपसे कहता हूं मैं आपको प्रेम करता हूं, तो कोई क्रिया करता हूं क्या? नहीं, प्रेम कोई क्रिया नहीं है। मैं प्रेम में होता हूं। यह बात गलत है जब मैं कहता हूं कि मैं प्रेम करता हूं। कहना चाहिए कि मैं प्रेम में हूं। प्रेम करना जैसी कोई चीज नहीं है, प्रेम में होना जैसी चीज है। ऐसे ही ध्यान में होना जैसी चीज है। उस पर हम और विचार करेंगे कि ध्यान में होना और ध्यान करना, इन दोनों में बुनियादी फर्क है। अगर ध्यान करते हैं, तो आप निश्चित मानिए, ध्यान भी एक गलत कृत्य होगा। और तब इस ध्यान के करने का यही परिणाम होगा कि आपके भीतर अहंकार मजबूत होगा कि मैं ध्यान करने वाला हूं, मैं धार्मिक हूं, मैं ज्ञानी हूं! और दूसरों को आप हीन समझना शुरू कर देंगे जो ध्यान नहीं करते हैं।
मोहम्मद ने एक दिन अपने एक रिश्तेदार के लड़के को कहा कि कल सुबह तू भी मस्जिद चलना। उस युवा को सुबह-सुबह पांच बजे उठा लिया और लेकर चले। वह पहले दिन पहली बार गया। जब मस्जिद से लौटते थे तो कुछ लोग बाहर सोए हुए थे। तो उस युवा ने मोहम्मद से कहा कि ये अधार्मिक, ये पापी देखो अभी तक सो रहे हैं!
मोहम्मद ने वहीं खड़े होकर ऊपर हाथ उठाए और कहा, हे परमात्मा, मुझसे भूल हो गई। यह घर ही सोया रहता तो बेहतर था, कम से कम यह दूसरों को अधार्मिक और पापी तो नहीं समझता था। यह आज एक दिन मस्जिद क्या हो आया है, इसने और एक अहंकार के लिए नया बिंदु खोज लिया कि दूसरे जो सो रहे हैं वे पापी हैं और अधार्मिक हैं।
यह प्रार्थना एक्ट हो गई, क्रिया हो गई अज्ञान से निकली हुई। अगर यह मस्जिद में जाकर प्रार्थना में चला गया होता तो लौटते में यह ख्याल असंभव था कि ये अधार्मिक हैं और पापी हैं। यह असंभव था। क्योंकि अहंकार का पोषण संभव नहीं था। प्रार्थना में और ध्यान में अहंकार तो विलीन हो जाता है, शून्य हो जाता है। वह बिंदु नहीं रह जाता सोचने का और विचार करने का। उसके आधार पर फिर चिंतन नहीं होता। फिर इसे कुछ और स्थिति होती। इसे शायद उन पर दया आती, शायद उन पर प्रेम आता, शायद यह उनकी सेवा में लग जाता, शायद यह उनकी फिक्र करने लगता कि किस दिन ये भी प्रार्थना के आनंद को उपलब्ध हो जाएं। लेकिन अभी यह नहीं हुआ। अभी यह हुआ कि उसे लगा कि ये दुष्ट, ये सब पापी! उसने एक मजा ले लिया।
दूसरे को नीचा दिखाने के बहुत उपाय हैं। एक आदमी साधु बन कर बैठ जाता
है, सारी दुनिया को असाधु मान लेता है। मजा आ गया। एक आदमी संन्यासी होकर बैठ जाता है, बाकी सबको भोगी मान लेता है। आनंद आ गया, बहुत गहरा आनंद आ गया। सबको नीचा दिखाने का दुनिया में बड़ा रस है।

तो अगर ध्यान क्रिया है तो आपको यह रस आ जाएगा लौट कर कि मैं एक ध्यान
के शिविर से लौट रहा हूं, साधारण आदमी नहीं हूं, ध्यानी हूं। तो जो नहीं आए हैं उनको नीचा दिखाने की आपको एक सुविधा हो गई। यह वही रास्ता है! एक आदमी छोटी कुर्सी पर बैठता है, दूसरा बड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी के पास दस रुपये हैं, एक के पास दस हजार हैं, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी बेचारा मंदिर नहीं जाता है, दूसरा जाता है, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी रोज गीता उठा कर पढ़ता है, वह बड़ा हो जाता है।
ये सब अहंकार की खोजें हैं। अहंकार के रास्ते बहुत सूक्ष्म हैं। अहंकार वहीं टूटता है जहां क्रिया न हो। जहां क्रिया है वहां तो अहंकार मजबूत होगा।
सिर्फ ध्यान एक ऐसी स्थिति है जीवन में जो क्रिया नहीं है और इसलिए उसमें प्रवेश हो सकता है। और वह प्रवेश अशुभ नहीं होगा। और उसी सूत्र के द्वारा अज्ञान से ज्ञान में संक्रमण होता है।
फिर ज्ञान में पहुंच कर भी क्रियाएं होंगी। लेकिन वे क्रियाएं अहंकार
को मजबूत नहीं करेंगी, क्योंकि ध्यान से गुजरने में अहंकार तो विलीन हो जाएगा। तब भी क्रियाएं होंगी। महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ हो, बुद्ध को उपलब्ध हुआ हो, क्राइस्ट को, फिर जीवन भर क्रिया तो करते रहे, फिर जीवन भर दौड़ते तो रहे एक गांव से दूसरे गांव, लोगों को समझाते तो रहे, बोलते तो रहे, यह सब क्रिया तो हुई। लेकिन फिर इससे अहंकार कोई पुष्ट नहीं हुआ, वह तो जा चुका था।
जब तक अहंकार है, अज्ञान है, तब तक क्रिया वासना-प्रेरित होती है। और
जब अहंकार विलीन हो जाता है तो क्रिया करुणा से स्फुरित होती है। वासना आगे होती है जिसको पाने के लिए क्रिया होती है, करुणा पहले होती है जिससे क्रिया का स्पंदन होता है, जिससे क्रिया निकलती है।
दो तरह की क्रियाएं हैं जगत में--वासना के लिए प्रेरित और करुणा से स्फूर्त। करुणा से स्फूर्त क्रिया शुभ है, वासना से प्रेरित क्रिया अशुभ है। लेकिन हमारी तो सारी क्रियाएं, चूंकि हम अज्ञान में हैं, वासना से प्रेरित होंगी। हम पूछेंगे कि किसलिए?

इसमें एक प्रश्न पूछा हैः ध्यान किसलिए करें? सत्य की खोज किसलिए करें? आत्मा की खोज किसलिए करें?

ठीक पूछा है। क्योंकि हम तो हर बात के लिए पूछेंगे कि किसलिए? कोई कारण हो पाने के लिए तो ठीक है, कुछ दिखाई पड़े कि धन मिलेगा, यश मिलेगा, गौरव मिलेगा, कुछ मिलेगा, तो फिर हम कुछ कोशिश करें। क्योंकि जीवन में हम कोई भी काम तभी करते हैं जब कुछ मिलने को हो। ऐसा कोई काम करने के लिए कोई राजी नहीं होगा जिसमें कहा जाए कि कुछ मिलेगा नहीं और करो। वह कहेगा, फिर मैं पागल हूं क्या? कि जब कुछ मिलेगा नहीं और मैं करूं।
लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, जीवन में वे ही क्षण महत्वपूर्ण हैं
जब आप कुछ ऐसा करते हैं जिसमें कुछ भी मिलता नहीं। यह मैं फिर से दोहराऊं, जीवन में वे ही क्षण महत्वपूर्ण हैं जब आप कुछ ऐसा करते हैं जिसमें कुछ मिलता नहीं। जब कुछ मिलने के लिए आप करते हैं तब बहुत क्षुद्र हाथ में आता है। विराट को पाने के लिए कुछ पाने की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। हो तो फिर बाधा हो जाएगी।
ध्यान किसलिए करते हैं? अगर कोई आपसे पूछे, प्रेम किसलिए करते हैं? तो क्या कहेंगे? कहेंगे, प्रेम स्वयं अपने आप आनंद है। वह किसी के लिए नहीं, कोई परपज नहीं है और आगे। प्रेम अपने में ही आनंद है। उसके बाहर और कोई कारण नहीं जिसके लिए प्रेम करते हों। और अगर कोई किसी कारण से प्रेम करता हो तो हम फौरन समझ जाएंगे कि गड़बड़ है, यह प्रेम सच्चा नहीं है।
मैं आपको इसलिए प्रेम करता हूं कि आपके पास पैसा है, वह मिल जाएगा। तो फिर प्रेम झूठा हो गया। मैं इसलिए प्रेम करता हूं कि मैं परेशानी में हूं, अकेला हूं, आप साथी हो जाएंगे। वह प्रेम झूठा हो गया। वह प्रेम न रहा। जहां

कोई कारण है वहां प्रेम न रहा, जहां कुछ पाने की इच्छा है वहां प्रेम न रहा। प्रेम तो अपने आप में पूरा है।
ठीक वैसे ही, ध्यान के आगे कुछ पाने को जब हम पूछते हैं--क्या मिलेगा?
वह हमारा लोभ पूछ रहा है। मोक्ष मिलेगा कि नहीं? आत्मा मिलेगी कि नहीं? वह पूछ रहा है हमारा लोभ। वही जो हमारी हमेशा लाभ, लोभ की जो चिंतना है, वह काम कर रही है।
नहीं, मैं आपसे कहता हूं, कुछ भी नहीं मिलेगा। और जहां कुछ भी नहीं मिलता वहीं वह मिल जाता है, सब कुछ जिसे हम कहें। जिसे हमने कभी खोया नहीं, जिसे हम कभी खो नहीं सकते, जो हमारे भीतर मौजूद है। अगर उसको पाना हो जो हमारे भीतर मौजूद है तो कुछ और पाने की चेष्टा सार्थक नहीं हो सकती है। सब पाने की चेष्टा छोड़ कर जब हम मौन, चुप रह जाएंगे, तो उसके दर्शन होंगे जो हमारे भीतर निरंतर मौजूद है। कुछ वहां मौजूद है, उसे पाने के लिए अक्रिया में हो जाना जरूरी है, सारी क्रियाएं छोड़ कर अक्रिया में हो जाना जरूरी है।
अगर मुझे आपके पास आना हो तो दौड़ना पड़ेगा, चलना पड़ेगा। और अगर मुझे मेरे ही पास आना हो तो फिर कैसे दौडूंगा और कैसे चलूंगा? और अगर कोई आदमी कहे कि मैं अपने को ही पाने के लिए दौड़ रहा हूं, तो हम उससे कहेंगे, तुम पागल हो, दौड़ने में तुम समय खराब कर रहे हो। दौड़ने से क्या होगा? दौड़ते हैं दूसरे तक पहुंचने के लिए, अपने तक पहुंचने के लिए कोई दौड़ना नहीं होता। फिर? अपने तक पहुंचने के लिए सब दौड़ छोड़ देनी होती है।
क्रिया होती है कुछ पाने के लिए, लेकिन जिसे स्वयं को पाना है उसके लिए कोई क्रिया नहीं होती, सारी क्रिया छोड़ देनी होती है। जो क्रिया छोड़ कर, दौड़ छोड़ कर रुक जाता, ठहर जाता, वह स्वयं को उपलब्ध हो जाता है। और यह स्वयं को उपलब्ध कर लेना सब उपलब्ध कर लेना है। और जो इसे खो देता है वह सब पा ले तो भी उसके पाने का कोई मूल्य नहीं। एक दिन वह पाएगा वह खाली हाथ था और खाली हाथ है।
अज्ञान की स्थिति में सिवाय ध्यान के कोई और मार्ग नहीं है, और ध्यान अज्ञान का कृत्य नहीं है।

उन्होंने यह भी पूछा है कि यदि ध्यान मात्र जागरण है, तो किसके प्रति जागरण?

स्वभावतः हम जीवन में तो हमेशा ऑब्जेक्टिव कांशसनेस को जानते हैं। किसी के प्रति जागरण को जानते हैं। दरख्त को देखते हैं, आदमी को देखते हैं, मकान को देखते हैं, चांद-तारों को देखते हैं। तो कुछ न कुछ हमारी चेतना में ऑब्जेक्ट होता है, कोई विषय होता है, कोई वस्तु होती है। स्वभावतः पूछा है कि ध्यान किसका? जागरण किसके प्रति?
एक बात समझ लेंः जब तक किसी के प्रति आप जागे हैं, तब तक आप संसार में हैं; जब तक कोई ऑब्जेक्ट मौजूद है चेतना में, तब तक आप अपने से बाहर हैं। जिस क्षण चेतना अकेली रह गई और वहां कोई ऑब्जेक्ट, कोई विषय, कोई वस्तु न रही, कोई नाम, कोई शब्द, कोई रूप न रहा, कोई भी न रहा, चेतना अकेली रह गई, कंटेंटलेस, विषय-वस्तु से रहित और शून्य, अकेली, उस क्षण--उस क्षण आप अपने में हैं।
निश्चित ही, अगर हम एक दीया जलाएं तो उस दीये के प्रकाश में आसपास के दरख्त दिखाई पड़ेंगे। लेकिन क्या दरख्तों के दिखाई पड़ने के अतिरिक्त दीये का अपना होना नहीं है? अगर दीये का अपना होना न हो तो दरख्त भी कैसे प्रकाशित होंगे? प्रकाश अलग है उन दरख्तों से जो प्रकाशित हो रहे हैं। मैं आपको देख रहा हूं, आपसे अलग हूं, मेरे भीतर अपनी चेतना है। अगर इस चेतना के शुद्ध स्वरूप को मुझे अनुभव करना है, तो मुझे अपनी चेतना को सारे विषयों से अलग, शांत और निस्पंद कर लेना होगा। उस घड़ी मैं स्वयं को जानूंगा। जब तक कोई और मौजूद है तब तक मैं उसे जानूंगा।
विज्ञान किसी और को जानता है, धर्म स्वयं को। विज्ञान ऑब्जेक्टिव खोज है--वस्तु की, पदार्थ की, पर की, पराए की, बाहर की। धर्म उसकी खोज है जो स्व

है, स्वयं है, भीतर है, वह जो सब्जेक्टिविटी है, वह जो आत्मिकता है, वह जो आंतरिकता है। और दो ही दिशाएं हैं मनुष्य के सामने। भूगोल तो कहती है दस दिशाएं हैं, लेकिन मनुष्य के सामने वस्तुतः दो दिशाएं हैं। दस दिशाओं की बात तो झूठी है। एक दिशा है बाहर की तरफ, एक दिशा है भीतर की तरफ। और कोई दिशा नहीं है। एक खोज है बाहर की दुनिया में, एक खोज है भीतर की दुनिया में।
बाहर की दुनिया में हम सारे लोग खोजते हैं और जीवन उलझता से उलझता चला जाता है। हम तो समाप्त हो जाते हैं, खोज वहीं की वहीं रह जाती है। क्योंकि एक बुनियादी बात हम भूल गए कि जिस आदमी ने स्वयं को नहीं खोजा है उसकी कोई भी खोज सार्थक नहीं हो सकती। क्योंकि जिसको स्वयं का ही कोई बोध नहीं है उसे और ज्ञान कैसे हो सकता है? जो अपने भीतर अंधेरे से भरा है, सारे जगत में भी रोशनी हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, वह जहां जाएगा अपने अंधेरे को साथ ले जाएगा। अंधेरा उसके भीतर है, तो वह जहां भी जाएगा, अंधेरा उसके रास्तों को घेर लेगा।
इसीलिए तो विज्ञान इतनी खोज करता है, लेकिन परिणाम अच्छे नहीं आते हैं। क्योंकि आदमी के भीतर अंधकार है और बाहर विज्ञान बड़ी ताकतें इकट्ठी कर लेता है, वे अज्ञानी आदमी के हाथ में पड़ जाती हैं। उनसे फल शुभ नहीं आता, अशुभ आता है। आदमी को मारने के उपाय निकलते हैं उनसे, हत्या करने के, हिंसा करने के तीव्र उपाय निकलते हैं। निकलेंगे ही। बाहर की कोई खोज सार्थक नहीं है जब तक भीतर आलोकित न हो।
यह जो ध्यान है यह भीतर की तरफ गमन है। क्रमशः उस स्थिति में पहुंच जाना है जहां मैं जान सकूं कि मेरे केंद्र पर, मेरे व्यक्तित्व के बीच मध्य में कौन चेतना बैठी है, क्या है वह? उसका मेरे सामने पूरा उदघाटन हो जाए।
निश्चित ही, वहां तक जाने के लिए सब छोड़ देना होगा। सब छोड़ देने से मेरा मतलब कोई घर-द्वार छोड़ कर भाग जाने से नहीं है। सब छोड़ने से मेरा मतलब कोई मित्र, परिजन, प्रियजन छोड़ कर भाग जाने से नहीं है। सब छोड़ने से मेरा मतलब हैः चेतना को धीरे-धीरे ऑब्जेक्टलेस, वस्तु से रहित, विचार से शून्य और रिक्त करने से है।
भीतर एक भीड़ घिरी है। चौबीस घंटे चेतना किसी न किसी चीज पर अटकी हुई है। उस अटकाव की वजह से वह स्वयं को नहीं जान पाती। अगर कोई अटकाव न रह जाए तो फिर क्या होगा? तब एक ही रास्ता रह जाएगा कि चेतना स्वयं को जाने। चेतना जब तक पर को जानती है तब तक स्वयं को जानने से वंचित हो जाती है। जब वह सब पर से खाली हो जाती है, फिर क्या होगा?
फिर तो एक क्रांति हो जाएगी भीतर, फिर तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाएगी।
तब यह होगा कि चेतना स्वयं को जानेगी। जानना उसका धर्म है, ज्ञान उसका स्वभाव है। जब तक वह बाहर जानती रहती है, तो भीतर नहीं जान पाती। जब बाहर के जानने से वह थोड़ा विराम लेती है, उपराम होती है, तो स्वयं को जान पाती है।
आत्म-ज्ञान का अर्थ किसी चीज पर ध्यान करना नहीं है, वरन ध्यान से सब चीजों को विदा कर देना है। जब चेतना की धारा शुद्ध रह जाती है और उसमें कोई नहीं रह जाता मौजूद, तब चेतना स्वयं को जानती है, स्वयं से परिचित होती है, स्वयं में प्रतिष्ठित होती है।
मैं समझता हूं मेरी बात ख्याल में आई होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह ध्यान का अंतर्गमन है। यह जो चेतना का भीतर की तरफ लौटना है, यह जो चेतना का अंतर्गामी पथ है, यही जीवन की वृत्तियों के ट्रांसफार्मेशन का, उनके परिवर्तन का माध्यम है, उपाय है, द्वार है।
कल मैंने आपसे कहा था--कैसे चित्त की जो वृत्तियां हैं वे परिवर्तित हों? क्रोध कैसे क्षमा बन जाए? घृणा कैसे प्रेम बन जाए? हिंसा कैसे करुणा बन जाए? कैसे यह हो?

दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि भीतर तो क्रोध रहे, ऊपर से हम क्षमा को ओढ़ लें। यह एकदम सरल और आसान रास्ता है। भीतर घृणा रहे, ऊपर से हम प्रेम को ओढ़ लें। वस्त्रों की भांति हम इनको ओढ़ लें। भीतर तो कठोरता रहे, ऊपर से हम करुणा ओढ़ लें। यह कठिन नहीं है। ठीक-ठीक अनुशासन दिया जाए जीवन को, नैतिक शिक्षा दी जाए, संस्कार दिए जाएं, भय दिए जाएं, प्रलोभन दिए जाएं, हो जाता है; इज्जत दी जाए, आदर दिया जाए, हो जाता है। ऊपर से चीजें ओढ़ लेना कठिन नहीं है।
लेकिन जो आदमी ऊपर से ओढ़ने में लग जाता है उसका जीवन नष्ट हो जाता है। क्योंकि भीतर वह वही का वही रहता है। ऊपर सारा ढोंग हो जाता है, भीतर वही का वही होता है। वह जीता नहीं, वह करीब-करीब एक्टिंग में होता है, अभिनय में होता है।
सारा अभिनय है उसका ऊपर। इसे कोई भी सोचेगा तो दिखाई पड़ेगा, कोई भी भीतर थोड़ी खोज करेगा तो समझ में आएगा कि सब धोखा है, वंचना है, डिसेप्शन है। यह मैं क्या? ... जिनके प्रति आपका कोई आदर नहीं होता, उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं। आदर को ओढ़ा हुआ है। जिनके प्रति आपको कोई प्रेम नहीं, उनके साथ प्रेम की गहरी से गहरी बातें कर रहे हैं। सब झूठा है। और अगर इस तरह ओढ़ते चले गए, ओढ़ते चले गए, तो पर्तों में खो जाइएगा, आपको पता ही नहीं रहेगा कि आपकी वास्तविकता क्या थी?
लेकिन अब तक तो सभ्यता ने यही सिखाया है कि अच्छे-अच्छे वस्त्र ओढ़ लो। भीतर कुछ भी हो उसकी फिक्र छोड़ो, बाहर से अच्छे आदमी बन जाओ। आचरण अच्छा हो, आत्मा से हमें क्या लेना-देना है! इस आचरण ने पाखंड पैदा किया है, सारी दुनिया में पाखंडी व्यक्तित्व पैदा हो गए हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और। और तब फिर दुख होगा, क्योंकि खुद के भीतर ही लड़ाई शुरू हो गई, हमारे भीतर ही संघर्ष शुरू हो गया। हमारा बाहर का ही व्यक्तित्व भीतर की आत्मा से चौबीस घंटे लड़ेगा, चौबीस घंटे लड़ेगा। लड़ाई स्वाभाविक है।
यह दमन हुआ, जिसकी मैंने कल आपसे रात बात की, यह सप्रेशन हुआ, भीतर वेग दबा लिए गए। यह ट्रांसफार्मेशन नहीं है, यह परिवर्तन नहीं है, यह जीवन का ऊर्ध्वगमन नहीं है। यह तो जीवन का एक कांफ्लिक्ट में पड़ जाना है, एक द्वंद्व में पड़ जाना है। इसका एक ही परिणाम हो सकता है कि आदमी टूटे और नष्ट हो जाए। और हम सब इसी तरह टूट-टूट कर खंडहर हो गए हैं। लड़ते हैं चौबीस घंटे, खुद के खिलाफ ही लड़ रहे हैं। अपने ही दोनों हाथों को लड़ाइएगा तो कोई जीतेगा फिर? कोई भी नहीं जीतेगा। एक परिणाम होगाः दोनों हाथों के लड़ने में आपकी ही ताकत दोनों तरफ से खर्च होगी। आप ही टूटते चले जाएंगे। आखिर में आप एक खाली खंडहर मात्र रह जाएंगे। बुढ़ापे तक आदमी खंडहर हो जाता है। होना तो उलटा चाहिए। होना तो यह चाहिए कि जीवन भीतर गहरे से गहरा, घने से घना हो जाए, इंटेंस से इंटेंस हो जाए। क्योंकि मतलब यह हुआ कि इतने दिन जीए, तो बच्चा जितना समृद्ध था, बूढ़ा उससे ज्यादा समृद्ध होना चाहिए।
लेकिन दिखता उलटा है। बूढ़े से भी पूछो तो वह कहता है, बचपन में दिन बड़े अच्छे थे। इसका मतलब? बाकी खोए दिन! जिंदगी गई व्यर्थ! बचपन की इतनी प्रशंसा उसी दुनिया में हो रही है जिसमें कि बूढ़े धीरे-धीरे खंडहर होते जाते हैं, तो पीछे की याद आती है कि बचपन बहुत अच्छा था। यह क्या मूर्खता है? अगर बचपन अच्छा था तो जिंदगी उलटी चली। मतलब हम ऊपर नहीं चले, नीचे गिरे। हमने खोया, पाया नहीं।
लेकिन दुनिया भर में कविताएं हैं जो बचपन की तारीफ करती हैं--कि बचपन बड़ा अदभुत था। होना तो यह चाहिए कि बुढ़ापा अदभुत हो। तब तो विकास हुआ, सम्यक विकास हुआ, आगे गए। अगर बचपन अदभुत था तब तो बड़ी मूढ़ता हो गई, यह तो बड़ा पागलपन हो गया कि हम पहली सीढ़ी पर थे तब बहुत अदभुत था, अब ऊपर आ गए तो सब खत्म हो गया। तो यह चढ़ना हुआ या उतरना हुआ? बुढ़ापा चढ़ाव है या उतार है? आमतौर से उतार है। आमतौर से खोते जाते हैं, खोते जाते हैं। यह तो अजीब बात हो गई। यह तो जिंदगी व्यर्थ हो गई। इससे ज्यादा और फ्यूटिलिटी क्या हो सकती है? और व्यर्थता क्या हो सकती है? और तब फिर बुढ़ापा कुरूप हो जाए, दरिद्र हो जाए, दीन हो जाए, हीन हो जाए, तो आश्चर्य क्या?

नहीं, इसके पीछे कारण वही है कि हम व्यक्तित्व में ओढ़ते हैं। ओढ़ने से
सब झूठा होता जाता है। बच्चा ही सच्चा होता है बूढ़े की बजाय। कुछ ओढ़ा हुआ नहीं होता, सीधा और साफ होता है सब। अभी कोई आचरण नहीं होता है उसके ऊपर, अभी जो उसका अंतःकरण होता है वही होता है।
यह अंतःकरण विकसित होना चाहिए। बूढ़े के पास और भी समृद्ध अंतःकरण होना चाहिए, बड़ी गहरी आत्मा होनी चाहिए। तो बुढ़ापे से ज्यादा सुंदर और कुछ भी नहीं है फिर। और बुढ़ापे से ज्यादा आनंदपूर्ण कुछ भी नहीं है फिर। बुढ़ापा तो शिखर है जीवन का। वह तो क्रमशः-क्रमशः, धवल से धवल, शुभ्र से शुभ्र होता जाना चाहिए। लेकिन जीवन की विधि ही गलत है तो क्या होगा? विधि हैः ओढ़ो, ऊपर से ढांको अपने को, ऊपर से थोपते चले जाओ। थोपने का परिणाम तो बुरा होगा। बुरा यह होगा कि भीतर की असलियतें भूल जाएंगी, मिटेंगी थोड़े ही। भीतर की जो वास्तविकता है वह बनी रहेगी और हम अपने को धोखा--अपने को क्या धोखा, दूसरों को धोखा देते रहेंगे।
लेकिन जब मौत करीब आने लगेगी तो वस्त्र काम नहीं देंगे। तब दिखाई पड़ने लगेगा कि यह तो मौत करीब आ गई! और मौत तो सब आचरण छीन लेगी, सिर्फ आत्मा बचेगी। मौत सब वस्त्र छीन लेगी, मौत सब ओढ़ा हुआ छीन लेगी, तब जो बच रहेगा वह फिर घबड़ाने लगता है। मौत से जो डर है वह डर मौत का नहीं है, वह उन सब वस्त्रों के छिन जाने का है जिन्हें हमने जीवन भर सम्हाला और ओढ़ा। नहीं तो जिस आदमी ने जीवन में समृद्धि पाई हो आंतरिक, मौत उसके लिए आनंद की एक घड़ी है। मौत तो उसके लिए आनंद की घड़ी है।
चीन में ऐसा हुआ, च्वांगत्सु एक व्यक्ति था, उसकी पत्नी मर गई। राजा उसे आदर देता था, फकीर था च्वांगत्सु, तो उसके पास गया उसको संवेदना के दो शब्द कहने। जब वह पहुंचा तो वह देख कर हैरान हुआ। च्वांगत्सु एक झाड़ के नीचे बैठ कर खंजड़ी बजा रहा था। सुबह उसकी पत्नी मरी थी। राजा थोड़ा हैरान हुआ, उसने च्वांगत्सु से कहा कि यह तो बर्दाश्त के बाहर है। तुम दुख न मनाते इतना ही काफी था, लेकिन तुम खंजड़ी बजाओ और गीत गाओ। दुख न मनाते उतना ही काफी था, लेकिन तुम यह गीत गाओ और खंजड़ी बजाओ, यह तो कुछ समझ में नहीं आता है।
च्वांगत्सु बोला, जिसको विदा दी है उसने इस विदा से कुछ पाया है, खोया नहीं। तो खुशी मनाऊं कि रोऊं? और फिर जिसके साथ इतने दिन रहा हूं उसे आंसुओं के साथ विदा करना क्या शुभ होगा? उचित है कि मेरे गीत की छाया में ही उसकी विदा हो। उसके आगे के मंगल-पथ पर यही उचित होगा कि मेरे गीत उसके साथ जाएं बजाय मेरे आंसुओं के और मेरे रोने के। और च्वांगत्सु ने कहा, स्मरण रखो, जब मैं मरूं तो जरूर तुम गीत गाना। क्योंकि मैं तो प्रतीक्षा कर रहा हूं उस क्षण की जब मैं विदा होऊंगा, कब मेरी तैयारी पूरी होगी और कब मैं विदा होऊं। क्योंकि स्कूल से विदाई का वक्त दुख का थोड़े ही होता है। प्रशिक्षण था, पूरा हुआ, विदा आ गई।
जीवन तो एक प्रशिक्षण है, एक बहुत गहरे अर्थों में, बहुत गहरी अनुभूतियों का। जब परिपक्व होकर कोई विदा होता है तो प्रसन्नता से विदा होता है। जब असफल होकर कोई विदा होता है तो दुख से विदा होता है। वह दुख असफलता का है, विदाई का नहीं है। वह जीवन की व्यर्थता का है, अर्थहीनता का है। अगर कहीं कोई सार्थकता पा ली हो तो मृत्यु तो सुख है, मृत्यु तो आनंद है। मृत्यु से ज्यादा बड़ा सखा और मित्र कौन है? लेकिन चूंकि सब गलत है और सब गलत इकट्ठा होता जाता है जीवन भर, एक्युमुलेटेड होता चला जाता है, तो मौत एकदम गलत दिखाई पड़ती है। जीवन भर का गलत मौत के वक्त ही सामने आता है। अगर जीवन सुंदर रहा हो, शांत रहा हो और आनंद से भरा हुआ रहा हो, तो मृत्यु एक घनी अनुभूति होगी। सारे जीवन का आनंद मृत्यु के समक्ष सामने आ जाएगा। जो हम जीवन में करते हैं वह मृत्यु के साथ हमारे सामने खड़ा हो जाता है। और हम गलत करते हैं। गलत यह करते हैं कि हम थोपते हैं ऊपर से। थोपना परिवर्तन नहीं है।
फिर क्या हो?

तो मेरा पहला निवेदन तो यह है कि क्रोध को बदलने की चिंता न करें, घृणा
को बदलने की चिंता न करें। क्योंकि बदलने की चिंता से ही थोपने का उपाय सामने आ जाता है। तो फिर करें क्या?
इतना ही जानें कि जीवन जब बहिर्गामी होता है, चेतना जब बाहर की तरफ बहती है, तो उसके लक्षण हैं--क्रोध, घृणा, हिंसा। ये बहिर्गामी चेतना के अनिवार्य लक्षण हैं। ये चेतना के लक्षण हैं, ये चेतना को बाहर बहाने के कारण नहीं हैं, चेतना को बाहर ले जाने के कारण नहीं हैं। चेतना चूंकि बाहर है इसलिए ये लक्षण प्रकट होते हैं। अगर चेतना भीतर लौटने लगे तो दूसरे लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। घृणा की जगह प्रेम प्रकट होने लगता है, क्रूरता की जगह करुणा प्रकट होने लगती है। वे भीतर जाती चेतना के लक्षण हैं।
बहिर्गामी चेतना के लक्षण हैं ये सब; अंतर्गामी चेतना के लक्षण दूसरे हैं। वे केवल खबरें हैं कि अब चेतना भीतर जाने लगी है।
इसलिए इसकी बिल्कुल फिक्र छोड़ दें कि क्रोध मिटे। इससे तो केवल इतना संकेत लें कि मेरी चेतना बाहर बहती है इसलिए क्रोध है। इसलिए मैं चेतना को भीतर लाऊं। क्रोध की फिक्र छोड़ दें, क्रोध तो लक्षण है।
एक आदमी बीमार पड़ा है, उसका हाथ गरम है। तो वैद्य उसका हाथ देखता है।
अगर नीमहकीम हो, तो वह कहेगा, हाथ गरम है, जरूर गर्मी के कारण इसको बुखार आ गया है। तो इसको खूब ठंडा करो, पानी में डुबाओ, ठंडा करो, ठंडा करो, सब ठीक हो जाएगा। गर्मी के कारण बुखार आ गया है।
नहीं, बुखार के कारण गर्मी है, गर्मी के कारण बुखार नहीं है। गर्मी तो सूचना है, लक्षण है, इंडिकेशन है। गर्मी बीमारी नहीं है, गर्मी तो मित्र है। अगर बुखार भीतर हो और शरीर की गर्मी न बढ़े तो आदमी मर जाएगा। प्रकृति फौरन खबर देती है कि भीतर बुखार है, भीतर कोई बीमारी है। शरीर पर ताप आ जाता है, ताप खबर देता है, सूचना उसने कर दी--कि मित्र, सम्हल जाओ! भीतर कुछ गड़बड़ है! शरीर को गर्म करके प्रकृति ने खबर भेज दी। यह गर्मी बीमारी नहीं है, यह बीमारी की खबर है, सूचना है। अगर इसका ही इलाज करने लगे तो मरीज मरेगा, बच नहीं सकता। इसका इलाज नहीं करना है, इसको तो समझ लेना है कि ताप बढ़ गया, खबर मिल गई कि भीतर कोई बीमारी है। अब बीमारी दूसरी बात है।
ऐसे ही क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है, ये सूचक हैं, ये सूचनाएं हैं,
ये खबर देते हैं कि चेतना बहिर्गामी है। इससे ज्यादा कुछ भी इनका अर्थ नहीं है। चेतना बाहर की तरफ बह रही है, ये इसकी खबर देते हैं। इनसे सचेत हो जाना चाहिए कि मेरी चेतना बाहर की तरफ बह रही है। अगर बहुत क्रोध है, बहुत काम है, तो ये तो मित्र हैं, ये तो सूचक हैं, ये तो खबर दे रहे हैं, ये शत्रु थोड़े ही हैं। इन्होंने तो खबर दी है आपको, आपके ऊपर कृपा की है। अगर ये खबर न देते तो आप डूब ही जाते, आपको पता भी नहीं चलता कि चेतना कहां बह रही है। मकान पर हम एक पंखी लगा देते हैं पक्षी की। हवा जहां होती है, पंखी वहीं मुड़ जाती है। कोई आदमी पंखी को कस कर बांध दे एक ही तरफ कि हम तो पूरब की तरफ ही हवा चाहते हैं, तो पंखी को पूरब की तरफ कस कर बांध दे। तो इससे क्या पूरब की तरफ हवा हो जाएगी? इससे पंखी भर पूरब की तरफ हो जाएगी, हवा तो पश्चिम की तरफ बहती है तो बहती रहेगी। लेकिन एक खतरा हो जाएगा, अब यह पंखी खबर भी नहीं दे सकेगी कि हवा किस तरफ बह रही है।
तो जो लोग क्रोध को दबा कर बांध देते हैं और ऊपर से क्षमा को ओढ़ लेते हैं उनकी पंखी बंद हो गई, अब वह सूचना भी नहीं देगी कि किस तरफ हवा है। अब वे मरे, अब उपद्रव निश्चित है उनके जीवन में। क्योंकि वह तो सूचक थी, उसका कोई कसूर नहीं था कि वह बताती थी कि पश्चिम को हवा बह रही है। पश्चिम को हवा बहती थी तो पश्चिम को बताती थी, पूरब को बहेगी तो पूरब को बताने लगेगी। उसका तो काम था कि वह बता दे कि हवा कहां बह रही है।
तब चेतना बहिर्गामी होती है तो क्रोध, काम, मोह, लोभ सूचनाएं देते हैं
कि सम्हल जाएं, बाहर की तरफ बहे जा रहे हैं। इनको नहीं बदलना है, चेतना की धारा को भीतर ले जाना है। चेतना की धारा जैसे-जैसे भीतर जाएगी, आप पाएंगे कि क्रोध क्षीण हुआ, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि काम क्षीण हुआ, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि मोह क्षीण हुआ। क्षीण होने लगें तो समझना कि हवाएं पूरब की तरफ

बहने लगीं, पंखी घूम रही है। जिस दिन क्षीण हो जाएं, समझ लेना कि हवाएं भीतर पहुंच गई हैं। अब न क्रोध उठता है, न मोह उठता है।
लेकिन अगर दबा लिया तो झूठ हो जाएगा। दबाने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। पंखी बांध देने से हवाएं वहां नहीं बहने लगती हैं। हां, हवाएं वहां बहने लगें, पंखी वहां बताने लगती है।
ट्रांसफार्मेशन, परिवर्तन होता है, किया नहीं जाता। आप कर नहीं सकते क्रोध के साथ कुछ भी, आप कर सकते हैं चेतना के साथ कुछ। और जब चेतना परिवर्तित होगी तो क्रोध विलीन हो जाएगा।
लोग कहते हैं, महावीर ने अहिंसा साधी।
मैं कहता हूं, बिल्कुल ही झूठ कहते हैं। महावीर ने आत्मा साधी, अहिंसा आई।
लोग कहते हैं, अहिंसा परम धर्म है।
बिल्कुल झूठी बात कहते हैं। आत्मा परम धर्म है, अहिंसा तो लक्षण है।
जो आत्मा को साध लेता है, अहिंसा उसके पीछे चली आती है। कोई भी, कहीं भी साध ले, अहिंसा पीछे चली आएगी, प्रेम पीछे चला आएगा, करुणा पीछे चली आएगी, नाम कुछ भी रख लें। ये तो खबरें हैं! जब किसी आदमी में अहिंसा का प्रकाश होने लगे तो जानना, प्रेम किसी में प्रकट होने लगे तो जानना कि हवाएं भीतर बहने लगी हैं।
लेकिन अगर कोई आदमी जबरदस्ती प्रेम प्रकट करने लगे, तो खतरा हो गया, उसके भीतर असली प्रेम के पैदा होने की संभावना हमेशा के लिए समाप्त हो गई। इसलिए जीवन में चरित्र को ओढ़ने की कोशिश मत करना। जैसे हम सहज हैं उसको जानना और पहचानना। और उसकी पीड़ा को अनुभव करना, उसके दुख को अनुभव करना। क्रोध को बदलना मत, क्रोध के दुख और पीड़ा को अनुभव करना। वह दुख और पीड़ा कहेगी कि चेतना बाहर बह रही है। वह दुख और पीड़ा तुम्हें राजी करेगी कि भीतर चलो। वह पीड़ा तुम्हें परेशान करेगी कि भीतर आओ।
लेकिन हम होशियार हैं, हम क्रोध को दबाने में लग जाते हैं। और उसका जो मौलिक काम था वह व्यर्थ हो जाता है। वह जो खबर देने की बात थी वह खो जाती है। और तब जीवन धीरे-धीरे नीचे उतरता है, ऊपर नहीं जाता।
ऊर्ध्वगमन के लिए--यह अंतिम बात कहता हूं, फिर कुछ और प्रश्न हैं वे रात लूंगा--ऊर्ध्वगमन के लिए अंतर्गमन मार्ग है। ऊर्ध्वगमन के लिए अंतर्गमन मार्ग है, ऊपर जाने के लिए भीतर जाना मार्ग है। नीचे जाने के लिए बाहर जाना मार्ग है। नीचे अगर जा रहे हैं तो नीचे से सीधे ऊपर नहीं जा सकते हैं। नीचे जा रहे हैं, यह इस बात की खबर है कि बाहर चेतना जा रही है। जो चेतना बाहर जाती है वह नीचे की तरफ जाती है। वह पानी की तरह है बाहर की तरफ जाने वाली चेतना, वह नीचे उतरती है। जो चेतना भीतर की तरफ जाती है वह ऊपर की तरफ जाती है, वह आग की तरह है, जैसे अग्नि की लपटें ऊपर की तरफ उठती हैं। इसलिए अग्नि जो है वह प्रतीक है ऊर्ध्वगमन का और जल जो है वह प्रतीक है अधोगमन का, नीचे जाने का। बाहर जाने वाली चेतना नीचे जाती है, भीतर जाने वाली चेतना ऊपर जाती है। ऊपर जाना है तो नीचे से ऊपर जाने का सीधा कोई रास्ता नहीं है। ऊपर जाना है तो बाहर से भीतर जाना पड़ता है।
इस सूत्र पर थोड़ा विचार करेंगे तो ख्याल में आ सकेगा।
मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

समाधि कमल
बारहवां प्रवचन

शास्त्र, धर्म और मंदिर

किसी ने पूछा है कि मैं कहता हूंः शास्त्र-ग्रंथ और धर्म-मंदिर व्यर्थ हैं। यह कैसे? शास्त्र-ग्रंथों से तो तत्व का ज्ञान मिलता है और मंदिर की भगवान की मूर्ति देख कर सम्यक दर्शन की प्राप्ति होती है।

संभवतः मैंने जो इतनी बातें कहीं, जिन्होंने भी पूछा है उन्हें सुनाई नहीं पड़ी होंगी।
मैंने यह कहा कि पदार्थ का ज्ञान बाहर से मिल सकता है, क्योंकि पदार्थ बाहर है। जो बाहर है उसका ज्ञान बाहर से मिल सकता है। कोई आत्म-ज्ञान से गणित और इंजीनियरिंग और केमिस्ट्री और फिजिक्स का ज्ञान नहीं हो जाएगा और न ही भूगोल के रहस्यों का पता चल जाएगा। जो बाहर है उसे बाहर खोजना होगा। विज्ञान उस काम को करता है, इसलिए विज्ञान के शास्त्र होते हैं। विज्ञान एक शास्त्र है। विज्ञान के शास्त्र होते हैं, बिना शास्त्रों के विज्ञान का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। केमिस्ट्री सीखनी हो, फिजिक्स या गणित सीखना हो, तो शास्त्र से सीखना पड़ेगा। क्योंकि विज्ञान के विषय भी बाहर हैं और उसका ज्ञान भी बाहर है।
इसलिए अगर मैं ठीक से कहूं तो विज्ञान के ज्ञान को मैं ज्ञान ही नहीं कहता हूं, वह इनफार्मेशन है; वह सूचना है, नॉलेज नहीं है। विज्ञान इनफार्मेशन है, सूचनाएं है। सूचनाएं बाहर से मिल सकती हैं।
धर्म सूचना नहीं है, अनुभव है, अनुभूति है। अनुभूति बाहर से नहीं मिल सकती। कोई प्रेम के संबंध में कितने ही शास्त्र पढ़े, क्या प्रेम का उसे ज्ञान हो जाएगा? क्या यह संभव है कि प्रेम का उसे ज्ञान हो जाए? सौंदर्य के संबंध में कोई कितने ही शास्त्र पढ़े, क्या उसे सौंदर्य का ज्ञान हो जाएगा? नहीं, संभावना इसी बात की है कि सौंदर्य का जो थोड़ा सा बोध भी होगा, शास्त्र पढ़ने पर वह भी नष्ट हो जाएगा। प्रेम की अगर थोड़ी सी कोई किरण दिखाई भी पड़ती होगी, तो शब्दों में वह भी भटक जाएगी।
रवींद्रनाथ ने अपना एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मैं क्रोशे के एक ग्रंथ को पढ़ता था, एस्थेटिक्स पर, सौंदर्यशास्त्र पर। अदभुत ग्रंथ है। सौंदर्य क्या है, इसी पर सारी चर्चा और विचार है। रात देर तक वे पढ़ते रहे, पढ़ते रहे, फिर थक गए। और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि शास्त्र जब नहीं पढ़ा था, यह सौंदर्यशास्त्र, तो थोड़ा-बहुत सौंदर्य का पता भी था, अब तो वह भी गड़बड़ हो गया। अब तो कोई पूछे सौंदर्य क्या है, तो कठिन हो गई बात।
जी ई मूर नाम के एक विचारक ने एक किताब लिखी है नीतिशास्त्र पर। दो- ढाई सौ पृष्ठों की किताब पढ़ने के बाद यह बताना कठिन है कि शुभ क्या है? गुड क्या है? नीति क्या है? सब गड़बड़ा जाता है।
रवींद्रनाथ तो हैरान हो गए, उन्होंने दीया बुझा दिया, शास्त्र बंद किया। थक गए थे, खिड़की पर जाकर खड़े हो गए। ऊपर चांद था, आकाश में थोड़ी सी बदलियां तैर रही थीं। वे हैरान हुए कि मैं कैसा पागल हूं, सौंदर्य बाहर खड़ा है द्वार के और मैं शास्त्र पढ़ रहा हूं! और जितनी देर मैं शास्त्र में अटका रहा, उतनी देर बाहर जो सौंदर्य था उससे वंचित हो गया।
जीवन की जो अनुभूतियां हैं उन्हें बाहर से पाने का उपाय नहीं है, उन्हें भीतर से जगाना पड़ता है। भीतर से वे जगें, यह दृष्टि में आ जाए, इसलिए मैंने कहा कि शास्त्र आत्म-ज्ञान को या सत्य के ज्ञान को नहीं दे सकते हैं। और अगर किसी को यह भ्रम हो कि वे देते हैं, तो जितने पंडित हुए हैं, जो शास्त्रों की बाल की खाल निकालते रहते हैं, उन सबको आत्म-ज्ञान कभी का प्राप्त हो गया होगा। तब तो फिर बड़ी आसान बात है। विद्यालय हैं, सिखाया जाता है धर्मशास्त्र, लोग सीख लेते हैं, आत्म-ज्ञानी हो जाएंगे। आखिर शास्त्र तो सभी पढ़ सकते हैं, कठिनाई क्या है? फिर आत्म-ज्ञान हो क्यों नहीं जाता? शास्त्र तो सभी पढ़ते हैं, फिर आत्म-ज्ञान क्यों नहीं हो जाता?

बड़ा मजा यह है--शास्त्र पढ़ने के कारण उन्हें झूठे ज्ञान का बोध हो जाता है, जिसका मैंने पहले दिन आपसे विचार किया। वह झूठा ज्ञान उनके वास्तविक ज्ञान की प्यास में बाधा हो जाता है। और फिर इन शास्त्रों में कौन सत्य है, यह आप कैसे जानते हैं?
मुसलमान घर में पैदा हुए हैं तो मुसलमान शास्त्र सत्य है और जैन घर में पैदा हुए हैं तो जैनशास्त्र और हिंदू घर में पैदा हुए हैं तो हिंदूशास्त्र। पैदा होना ही सच्चे होने का सुबूत है! और पैदा होने से क्या फर्क पड़ता है? एक जैन बच्चे को मुसलमान के घर में रखो, एक मुसलमान बच्चे को ईसाई के घर में रखो, वह ईसाई हो जाएगा, मुसलमान घर में बच्चा मुसलमान हो जाएगा, जैन घर में बच्चा जैन हो जाएगा। यह तो प्रोपेगेंडा है जन्म के बाद, यह तो प्रचार है बच्चे के आसपास कि यही शास्त्र सत्य है, तो वह वही दोहराने लगता है बड़े होकर कि यही शास्त्र सत्य है।
यह बुद्धि का लक्षण थोड़े ही है, यह तो अबुद्धि का लक्षण है। यह तो कोई
भी चीज बार-बार दोहराई जाए तो उसे सत्य मालूम होने लगती है।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि किसी भी असत्य को बार-बार दोहराया जाए, वह थोड़े दिनों में सत्य हो जाता है। और यह ठीक लिखा है। सत्य होने का और मतलब ही क्या है आमतौर से? किसी बात को खूब प्रचारित किया जाए, खूब प्रचारित किया जाए, तो सत्य मालूम होने लगती है।
लेकिन यह कोई सत्य थोड़े ही है। सत्य का प्रचार से तो पता ही नहीं चल सकता। बल्कि सब प्रचार जब मन से हटा दिए जाएं, सब पक्षपात छोड़ दिए जाएं... शास्त्र क्या हैं? पक्षपात हैं। जैन का अपना पक्षपात है, हिंदू का अपना, मुसलमान का अपना। सबकी अपनी प्रिज्युडिस है, वही उनका शास्त्र है। उसी को पकड़े बैठे हैं, उसी को...
जब तक आप किसी धारणा को सत्य के संबंध में पकड़ कर बैठ जाते हैं तो फिर सत्य को कैसे जानिएगा? सत्य को जानने के लिए सब धारणाएं छोड़ कर, मन को निष्पक्ष, खाली और शांत करके जाना होगा, तब तो सत्य जाना जा सकता है। जो जैसा है वह जाना जा सकता है, अगर हम अपनी कोई धारणा वहां न ले जाएं। लेकिन अगर हम अपनी कोई धारणा ले जाएं, तो मनुष्य की मन की कल्पना की शक्ति बहुत प्रखर है, वह जो भी कल्पना करे उसी को देख सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है।
अगर एक हिंदू भक्त को एक कमरे में बंद कर दिया जाए, तो वह रात को कृष्ण
को देखता रहेगा। वहीं राम का भक्त बंद कर दिया जाए, तो रात को धनुर्धारी राम को देखता रहेगा। वहीं एक क्रिश्चियन को बंद कर दिया जाए, तो वह सूली पर लटके हुए क्राइस्ट के दर्शन करता रहेगा। और तीनों में से किसी दूसरे को दूसरे का भगवान बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा उस कमरे में। और वे तीनों लड़ते रहेंगे कि हमारा सच्चा है, क्योंकि हमारा दिखाई पड़ रहा है। दूसरा भी यह कहेगा, हमारा सच्चा है, हमको तो अनुभव हो रहा है।
ये सब कल्पनाओं के प्रक्षेपण हैं, ये इमेजिनेशन हैं। ये कोई सत्य के अनुभव नहीं हैं। और मनुष्य की कल्पना अदभुत है। कल्पना से कुछ भी अनुभव किया जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। जहां सारी कल्पना शांत हो जाती है और कोई अनुभव होता है, वही सत्य है। बहुत सी कल्पनाएं हम अनुभव कर सकते हैं। कवि हैं, भक्त हैं, बहुत सी कल्पनाएं हैं, उनको अनुभव कर लेते हैं। वे कोई सत्य नहीं हैं। लेकिन उन्हें प्रतीत होगा कि यह सत्य है। और वही प्रतीति उनके लिए खतरा हो जाती है।
कल्पना से बचना हो तो सबसे पहले तो पक्षपाती मन नहीं चाहिए। सारा पक्षपात मन से छोड़ देना जरूरी है।
यह मैं नहीं कह रहा हूं कि शास्त्र असत्य है किसी का। मैं यह कह रहा हूं कि शास्त्र को पकड़ने वाला मन असत्य है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि महावीर ने जो कहा, बुद्ध ने जो कहा, कृष्ण ने जो कहा, क्राइस्ट ने जो कहा, वह असत्य है। इससे मुझे क्या लेना-देना? नहीं, उनको जो पकड़ लेता है वह असत्य में स्थापित हो जाता है, वह पक्षपात से भर जाता है। अगर सच में ही वही जानना है जो महावीर ने कहा है तो महावीर की वाणी से मुक्त हो जाओ, तो किसी दिन उसी अनुभव की उपलब्धि होगी जो महावीर को हुई थी। महावीर कौन सा

शास्त्र लेकर जंगल गए थे, इसकी कोई खबर है? कौन से शास्त्र लेकर वे जंगल गए थे? कौन सी पोथियां अपने सिर पर ले गए थे रख कर? या बुद्ध कौन सा बस्ता ले गए थे जिसमें अपनी किताबें साथ ले गए हों, जब वे जंगल गए थे? या क्राइस्ट जब अकेले पहाड़ पर थे या मोहम्मद जब अकेले पहाड़ पर थे तो कौन सा शास्त्र ले गए थे कुछ पता है?
किसी शास्त्र को नहीं ले गए थे। शास्त्र तो छोड़ गए थे पीछे। सब तरह खाली होकर वहां गए थे। मन में जो और कचरा रह गया होगा उसको भी वहां जाकर खाली कर दिया था। मन जब बिल्कुल शून्य और शांत हो गया था, उसमें कोई विचार, कोई धारणा, कोई सिद्धांत नहीं रह गए थे, कोई शास्त्र नहीं रह गया था, उस निर्विचार, निर्विकल्प, उस शांत चित्त स्थिति में सत्य को उन्होंने जाना था। जब भी किसी ने सत्य को जाना है तो सब शब्दों से मुक्त होकर जाना है। और आप कहते हैं, शास्त्र में सत्य है। तो उसका मतलब क्या होगा? उसका मतलब होगाः शब्द को पकड़ लो, शास्त्र को मस्तिष्क में भर लो। फिर तो मस्तिष्क में कचरा इकट्ठा हो जाएगा, भीड़ इकट्ठी हो जाएगी शब्दों की, फिर सत्य को कैसे जानिएगा?
नहीं, शास्त्र सत्य तक कभी किसी को ले नहीं गए हैं। हां, सिद्धांत तक
ले जाते हैं, मत तक ले जाते हैं, ओपीनियन तक ले जाते हैं, विवाद पर ले जाते हैं, वाद पर ले जाते हैं, इज्म पर ले जाते हैं, सत्य पर नहीं ले जाते। ले ही नहीं जा सकते, क्योंकि सत्य है भीतर और शास्त्र है बाहर। बाहर से भीतर लाना पड़ेगा शास्त्र को और सत्य को लाना है तो भीतर से बाहर लाना पड़ेगा। जैसा मैं अक्सर कहता हूं कि कोई चाहे तो अपने घर में एक हौज बना कर पानी भर ले, तो हौज में पानी बाहर से लाना पड़ता है। और कोई चाहे तो गड्ढा खोदे, जमीन खोदे, पत्थर-मिट्टी बाहर निकाले, फिर कुआं बन जाता है, फिर पानी भीतर से आता है। हौज का पानी पराया पानी है। जिंदा पानी नहीं है, मुर्दा पानी है, थोड़े दिन में सड़ जाएगा। उसके मूलस्रोत से कोई संबंध नहीं हैं, उधार है, थोड़े दिन में उस पर मच्छर और कीड़े इकट्ठे होंगे और गंदगी हो जाएगी।
पंडित का मस्तिष्क भी ऐसे ही उधार होता है, इसीलिए तो गंदा हो जाता है। इसलिए दुनिया में पंडितों ने जितने उपद्रव किए हैं, बड़े से बड़े पापियों ने नहीं किए हैं और न करवाए हैं। यह कौन लड़ाता है मस्जिद और मंदिर को? यह कौन लड़ाता है हिंदू और जैन को, मुसलमान और ईसाई को, मुसलमान और हिंदू को? कौन लड़ाता है? पंडित! ये सब पंडित के मस्तिष्क से निकले हुए फितूर हैं।
शैतान ने बहुत दिन पहले ही पंडितों को राजी कर लिया है। और उसने बड़ी होशियारी की, अपने पंडितों को भगवान का पुजारी बना दिया है। इसलिए मामला बहुत आसानी से चल रहा है शैतान का, क्योंकि पहचान में ही नहीं आता। मंदिर तो भगवान का है, पुजारी शैतान के हैं। और जब तक दुनिया पुजारियों से मुक्त नहीं होगी, दुनिया में धर्म नहीं हो सकता। क्योंकि पुजारी धर्म की हत्या करते रहे हैं। वे शास्त्र के तो समर्थक हैं, सत्य के वे समर्थक नहीं हैं। क्योंकि सत्य आएगा तो न मंदिर टिक सकते हैं, न मस्जिद, न यह पूजा, न यह धंधा, न यह सब पाखंड, यह कुछ भी नहीं टिक सकता, दुनिया बहुत और तरह की होगी। इसलिए वे कहेंगे कि शास्त्र में सब कुछ है, शास्त्र ही सत्य है। और फिर इसको प्रचारित करते हैं, प्रचारित करते हैं, तो छोटे-छोटे बच्चों के मस्तिष्क में बिठाल देते हैं, वे भी उसको दोहराने लगते हैं।
दोहराना जो है एक तरह की कंडीशनिंग है। छोटे से बच्चे को कुछ भी सिखाइए, तो वह सीख जाता है। सीख जाता है, उसी को दोहराने लगता है। उसको सिखा दीजिए कि ईश्वर है, तो वह कहने लगता है ईश्वर है। उसको सिखा दीजिए कि ईश्वर नहीं है, तो वह कहने लगता है ईश्वर नहीं है। लेकिन यह कोई ज्ञान है? वहां रूस में वे सिखाते हैं कि कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं। वहां के बच्चे यही कहते हैं कि कोई आत्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं। उनको ज्ञान हो गया?
आपको ज्ञान हो गया है? आपको सिखाया गया हैः ईश्वर है, आत्मा है, फलां है, ढिकां है। आप भी उसको ही दोहराए चले जा रहे हैं। दोहराने वाली बुद्धि

कोई प्रतिभा नहीं है, जड़ता का लक्षण है, ईडियाटिक है। दोहराने वाली बुद्धि, जो सिखा दिया उसको दोहराए चले जा रहे हैं। इनकार करिए उससे, तो कुछ खोज होगी। उसको अस्वीकार करिए कि मैं क्यों दोहराऊं? मैं कोई मशीन हूं जो दूसरों को दोहराऊं? जो मुझे सिखा दिया गया उसको मैं रिपीट करता रहूं? मैं उसको इनकार करता हूं। मैं अपनी खोज करूंगा। मैं अपने जीवन को लेकर आया हूं, तो मैं अपने जीवन के अर्थ खोजूंगा। कौन मुझे सिखाने को है? किसको हक है इस बात को सिखाने का?
लेकिन हम सिखा देते हैं। सीख लेता है मन और दोहराने लगता है। बड़ी खूबियां हैं, तरकीबें हैं। जब हम कुछ बात सिखा देते हैं तो वह स्मृति में बैठ जाती है, मेमोरी का हिस्सा हो जाती है। फिर जब जिंदगी में प्रश्न आते हैं तो मेमोरी से उत्तर आ जाते हैं, हम समझते हैं कि ये उत्तर असली हैं। ये उत्तर नकली हैं!
एक जगह मैं गया, वहां बच्चों को वे धर्म-शिक्षा देते हैं, तो उन्होंने सिखा दिया है कि आत्मा है, ईश्वर है। मैंने उनसे पूछा, ईश्वर है? उन्होंने सबने हाथ हिलाया कि हां, ईश्वर है।
कहां है?
उन्होंने कहा, ऊपर है।
आत्मा है?
उन्होंने कहा, है।
मैंने पूछा, कहां है?
उन्होंने कहा कि यहां भीतर है।
तो मैंने एक बच्चे से पूछा, हृदय कहां है?
उसने कहा, यह तो हमें बताया नहीं। यह तो हमें बताया ही नहीं गया, यह तो हमारा पाठ ही नहीं है।
यह बच्चे को सिखा दिया--आत्मा कहां है। सीख गया बच्चा। रोज-रोज दोहराया, परीक्षा दिलवाई, पुरस्कार दिए, मिठाई खिलाई, वह सीखता गया। वह सीख गया। जब बूढ़ा हो जाएगा तब तक भी इसी सिखावन को दोहराता रहेगा। जब भी जिंदगी में सवाल उठेगा--आत्मा है? उसका हाथ मशीन की तरह इधर चला जाएगा और कहेगा, हां, यहां आत्मा है। यह मूर्खता हो गई, यह तो जड़ता हो गई।
पावलफ हुआ एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, उसने कंडीशनिंग पर बहुत से प्रयोग किए। कैसे चित्त संस्कारित हो जाता है और सब गड़बड़ हो जाता है।
कुत्ते को वह रोटी खिलाता था। तो रोटी रखते से ही कुत्ता लार टपकाने लगता था। तो वह रोटी देने के साथ-साथ रोज घंटी भी बजाता था। रोटी देता, कुत्ते को रोटी रखता, तो कुत्ते की लार टपकने लगती, साथ में घंटी भी बजती। पंद्रह दिन तक यही क्रम थाः घंटी बजती, रोटी देता। सोलहवें दिन रोटी तो नहीं दी, घंटी बजाई। लेकिन घंटी बजते से ही कुत्ते की जीभ से लार टपकने लगी।
अब घंटी से लार का कोई संबंध नहीं है। घंटी से लार का कोई भी संबंध नहीं है। किसी कुत्ते के सामने घंटी बजाइए तो क्या लार टपकेगी? नहीं टपकेगी। लेकिन उसको सिखा दिया गया। पंद्रह दिन में रोटी के साथ लार टपकती थी, रोटी के साथ घंटी बजती थी, तीनों चीजें संयुक्त हो गईं। सोलहवें दिन घंटी बजाई, तो रोटी तो वहां नहीं थी, लेकिन लार टपकने लगी। यह शिक्षा हुई। सब शिक्षा इसी तरह की है। अब यह कुत्ता धोखे में पड़ गया। अब इसको समझ में नहीं पड़ रहा कि यह लार क्यों टपक रही है? लेकिन लार टपकने लगी।
आप जब मंदिर के सामने से निकलते हैं और ऐसा हाथ जोड़ लेते हैं, तो आपको पता नहीं, यह भी लार टपकने से भिन्न नहीं है। घंटी पर लार टपक रही है। यह आपको सिखा दिया गया है कि यह मंदिर है, यहां भगवानजी रहते हैं--बचपन से ही-- इधर हाथ जोड़ो! पिता ने भी जोड़ा, मां ने भी जोड़ा। आपको भी लगा कि जब मां-बाप, चूंकि बड़े मालूम होते हैं छोटे से बच्चे को कि बहुत महान हैं, बहुत ज्ञानी हैं, बहुत समझदार, बड़े शक्तिशाली, क्योंकि उसके कान उमेठते हैं, चांटा मारते हैं। उनको बड़े शक्तिशाली मानता है वह। जब ये हाथ जोड़ रहे हैं, वह भी हाथ जोड़ता है। नहीं जोड़ता तो एक चांटा भी पड़ता है, शिक्षा भी पड़ती है। जोड़ता है तो तारीफ होती है कि बच्चा हमारा बहुत अच्छा है, अभी से बड़ा

धार्मिक है, मंदिर जाता है, प्रशंसा होती है। बस लार के साथ घंटी जुड़ने लगी। वह बड़ा हो जाएगा, मंदिर के सामने से निकलेगा, हाथ जुड़ जाएंगे।

यह कुछ भी नहीं है। यह सिखा दिया गया स्मृति को, इससे जड़ता पैदा हो गई, इससे कोई बोध पैदा नहीं हुआ। जिस दिन होश आ जाए, उसे इस तरह की सब कंडीशनिंग से इनकार कर देना चाहिए।
मुझे एक सज्जन मिले। वे बोले, मैं क्या करूं, मैं नहीं भी जोड़ना चाहूं
तो मंदिर के सामने से अगर बिना जोड़े निकल जाऊं तो मुझे डर लगता है कि कोई हानि न हो जाए! तो ऐसा हो जाता है कि मैं...
मेरी बात उन्होंने एक दिन मान ली और मंदिर से बिना हाथ जोड़े निकल गए होंगे। शाम को ही आए, बोले, मैं तो बहुत घबड़ा रहा हूं कि पता नहीं क्या होगा, क्या नहीं होगा! आज मैं बिना ही हाथ जोड़े निकल गया।
तो मैंने कहा, इससे तो बेहतर था तुम जोड़ ही लेते। अब यह तो और ज्यादा परेशानी हो गई। इसका मतलब तुम दिन भर हाथ जोड़ते रहे।
यह जड़ता हो गई। अब चित्त भय खाने लगा कि कहीं नहीं जोड़े तो भगवान नाराज न हो जाएं। जब भगवान खुश होते हैं तो नाराज भी होते ही होंगे। जब स्तुति से प्रसन्न होते हैं तो निंदा से नाराज भी होते होंगे। तो घबड़ाहट आदमी को स्वाभाविक है। ये सब भगवान भूत की तरह आदमी के पीछे पड़े हुए हैं भय के कारण। यह कोई आपकी अनुभूति नहीं है, यह आपकी कोई समझ नहीं है, यह कोई अंडरस्टैंडिंग नहीं है, यह आपने कहीं जाना नहीं है। बस ये तो भय की वजह से आपके पीछे लग गए हैं और आपका पीछा कर रहे हैं। वैसे ही आदमी के पीछे बहुत भूत लगे हैं और भगवान लगे हुए हैं। कई तरह की मुसीबतें उसके पीछे लगी हैं, वह उनको पाले हुए है, पाले हुए है... और फिर शांत होना चाहता है, फिर सत्य को जानना चाहता है। कैसे होगा यह? इतने भयभीत लोग कुछ भी नहीं जान सकते। थोड़ी सी फियरलेसनेस चाहिए, थोड़ा साहस चाहिए। थोड़ा तोड़ना चाहिए, देखना चाहिए कि जड़ता क्या है? मगर नहीं, दिखाई नहीं पड़ता।
अभी उसमें लिखा है कि मूर्ति के दर्शन करने से भगवान का सम्यक ज्ञान
हो जाता है।
हुआ? मूर्तियां तो बहुत हैं। हुआ दर्शन करने से सम्यक ज्ञान?
और यह भगवान की ही मूर्ति है, यह कैसे पता चल गया? क्योंकि वही मूर्ति,
एक दूसरा आपका पड़ोसी है वह कहता है, भगवान-वगवान की नहीं है। उसको तो लगता है कि इसको तोड़ दें तो धर्म होता है। तो फिर? उसी मूर्ति को एक आदमी तोड़ दे तो वह सोचता है कि जन्नत मिलेगी, स्वर्ग मिलेगा। और एक आदमी उसी के दर्शन किए खड़ा है और सोच रहा है कि सम्यक ज्ञान हो जाएगा इनके दर्शन से। और कारीगर जिसने मूर्ति बनाई है, वह जानता है कि पत्थर है और हमने खोदा है और पैसे लिए हैं। लेकिन आपको ख्याल नहीं आ सकता है, क्योंकि वर्षों की शिक्षा है पीछे इस बात की कि ये भगवान हैं। कौन अब इसमें झंझट करे! जो इसको कहेगा कि मुझे शक होता है, वही नासमझ समझा जाएगा।
एक दफा ऐसा हुआ कि एक राजा के दरबार में एक बहुत खुशामदी आदमी था, बहुत स्तुतिकार था। और सभी राजाओं के दरबारों में रहे हैं। तो वह कुछ भी राजा को समझाता रहता था और पैसे लेता रहता था। एक दिन उसने कहा कि महाराज, आपके पास जो ये वस्त्र हैं, ये आप जैसे सम्राट के योग्य नहीं। मैं इंद्र की पोशाक आपके लिए ला सकता हूं।
तो राजा ने कहा, यह तो बिल्कुल ही ठीक है। कितना खर्च होगा?
उसने कहा कि पांच हजार रुपये तो खर्च होगा। पांच हजार रुपये लाने ले जाने में, क्योंकि दो लोक तक जाना।
तो कौन जाएगा?
उसने कहा, इसकी आप फिक्र न करें, मैंने एक आदमी खोज लिया है जो जाता है चमत्कार के बल से। तो पांच हजार आने-जाने का खर्च होगा, पांच हजार वस्त्रों के दाम हो जाएंगे।
राजा ने कहा, ये दस हजार रुपये लो। क्योंकि मैं इतना छोटा सम्राट तो नहीं कि साधारण कपड़े पहनूं, मुझे इंद्र की पोशाक चाहिए।

और दरबारियों ने कहा कि यह बिल्कुल निपट गंवारी की बात है, यह कभी सुना नहीं गया, इंद्र की पोशाक! लेकिन अब क्या कहते, ठीक है, अब अगर यह आदमी कहता है तो। उसने कहा, पंद्रह दिन बाद मैं हाजिर हो जाऊंगा। पंद्रह दिन बाद वह आया और बोला, बहुत मुश्किल है, वहां भी रिश्वत चलने लगी। वे पांच हजार में देने को राजी नहीं होते। दस हजार लग जाएंगे।
और खबर तो पहुंच ही गई होगी रिश्वत की, वे कोई नासमझ तो नहीं हैं देवता, कि इधर आदमी इतना मजा कर रहा है और वे वहां नासमझी करते रहें, वे भी रिश्वत लेने लगे होंगे। तो राजा को भी जंचा कि गलती तो कुछ है नहीं, जब यहां रिश्वत चलती है तो वहां भी चलती होगी। तो उसने पांच हजार और दिए। कितने दिन लगेंगे?
उसने कहा, और पंद्रह दिन लग जाएंगे।
दरबारी तो समझते ही थे कि यह धोखा देगा। यह फिर गड़बड़ कर रहा है। पता नहीं बाद में कहने लगे कि वह आदमी लौटा ही नहीं, मर गया या क्या हुआ। लेकिन अब क्या कह सकते थे?
लेकिन पंद्रह दिन बाद हैरान हुए, जब वह पेटी ही लेकर आ गया तो सब हैरान हुए। जब वह पेटी ही लेकर दरबार में आ गया तो सब हैरान हुए कि यह तो ले ही आया। उसने आकर ताला खोला और उसने कहा कि एक शर्त फकीर ने बतलाई है इस पोशाक के साथ। क्योंकि यह देवलोक की पोशाक है, यह पृथ्वी पर सभी को दिखाई नहीं पड़ेगी, यह सिर्फ उन लोगों को ही दिखाई पड़ेगी जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। क्योंकि यह तो देवलोक की पोशाक है, सबको दिखाई नहीं पड़ सकती है। राजा ने कहा, यह तो बात ठीक ही है, देवलोक की पोशाक! पार्थिव जगत! सबको कैसे दिखाई पड़ेगी यह? ये तो अदृश्य वस्त्र हैं! लेकिन हां, उनको दिखाई पड़ेगी जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं।
राजा से उसने कहा कि अब मैं निकालता हूं वस्त्र, आप अपने वस्त्र निकालें।
राजा ने अपना कोट निकाला, उसने वहां से ऐसे हाथ किया और कहा, यह कोट लीजिए।
वह किसी को दिखाई तो पड़ा नहीं। कुछ था भी नहीं तो दिखाई क्या पड़ता। राजा ने भी कहा कि अगर मैं यह कहूं कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता तो व्यर्थ ही गड़बड़ हो जाएगी, लोग समझेंगे कि इनके बाप गड़बड़ रहे। दरबारियों ने भी कहा कि अब कौन इस झंझट में पड़े। किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा, लेकिन सब कहने लगे कि वाह-वाह, कितना सुंदर कोट है!
राजा ने पहना, वह डरा बहुत, क्योंकि कोट उतर गया उसका, वह उघाड़ा हो गया,
और कोट जो पहना वह तो दिखाई पड़ता नहीं था। लेकिन जब सब दरबारी कहने लगे कि बहुत सुंदर, अदभुत, ऐसा तो कभी देखा नहीं! तो उसने भी सोचा कि अब मैं ही गलती क्यों करूं खुद कह कर। जब इन सबको दिखाई पड़ रहा है तो जरूर मेरे बाप में कुछ गलती, गड़बड़ रही है, नहीं तो इन सबको कैसे...
बाकी ने भी यही सोचा। स्वाभाविक था, सीधा लाजिकल है, सीधा तर्क है। सबको यह लगा कि जब सबको दिखाई पड़ रहा है तो मैं व्यर्थ ही झंझट में पड़ जाऊं और अपनी बदनामी करवाऊं, क्या फायदा! मुझे तो दिखाई नहीं पड़ रहा, लेकिन कहूं कैसे?
उसने धीरे-धीरे वस्त्र सब उतरवा लिए, राजा बिल्कुल नंगा हो गया और एक-
एक झूठे वस्त्र दे दिए, वे राजा ने पहन लिए। अब उसे बड़ी घबड़ाहट हुई। सारे गांव में खबर पहुंच गई कि राजा नंगा हो गया है, लेकिन दरबारी सब कहते हैं कि कपड़े पहने हुए है।
राजा का जुलूस निकला। अब सड़कों पर भीड़ है, लोग खड़े हैं, देख रहे हैं कि राजा नंगा है, लेकिन कौन कहे? यह कौन कहे कि यह नंगा है, क्योंकि जो यह कहे वह फजीहत में पड़ जाए, वह मुसीबत में पड़ जाए। सब लोग कहने लगेंः वाह! तुम्हारे पिता जरूर तुम्हारे पिता नहीं रहे, गड़बड़ है कुछ मामला। पूरी बस्ती में घूम आया। एक छोटा सा बच्चा बीच में आया और वह बोला कि मैं बड़ा हैरान हूं, यह राजा तो बिल्कुल नंगा है!
लोगों ने कहा कि चुप, यह कहना मत।
वह लड़का बोला, लेकिन हद्द हो गई, ये सब लोग देख रहे हैं राजा नंगा है!

उसने कहा, दुनिया देख रही हो, तू मत बोल, उसके बाप ने कहा। तुझे बोलने
की जरूरत नहीं है, तू शांत रह।
यह कथा हंसने जैसी नहीं है, करीब-करीब जिंदगी में ऐसा ही हो गया है, धर्म का मामला करीब-करीब ऐसा ही हो गया है। पत्थर की मूर्तियां रखी हैं कि ये भगवान हैं। और सब कह रहे हैं कि हां। अगर कोई बच्चा कभी कहे तो उसको हम डांट देंगे--चुप! तू झंझट में क्यों पड़ता है?
फिर ये रामचंद्रजी खड़े हुए हैं, ये कृष्णजी खड़े हुए हैं, ये क्राइस्ट खड़े हुए हैं। ये सब मूर्तियां बनी हैं, बच्चों के खिलौने लगाए हुए हैं, गुड्डा-गुड्डी बनाए हुए हैं, और भगवान हैं और इनको देखने से ज्ञान हो जाएगा! तो दुनिया में अब तक सबको ज्ञान हो गया होता।
आंखें होते हुए अंधे हम बने हुए हैं। आंखें होते हुए देखने की हमारी इच्छा नहीं है। इतने भय से डर गए हैं। इतना भय है कि हम क्यों? जरूर हम ही गड़बड़ होंगे अगर हम कुछ कहेंगे।
लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, जो विचारशील है वह अनिवार्य रूप से विद्रोही होगा। जिसके भीतर विचार है वह कहेगा कि नहीं, मुझे तो पत्थर दिखाई पड़ता है, भगवान दिखाई नहीं पड़ते। क्षमा करें, मुझे वस्त्र नहीं दिखाई पड़ते, मुझे तो राजा नंगे दिखाई पड़ते हैं। और जब तक इतना साहस न हो कि भीड़ ने जो प्रचारित किया है और भीड़ जिस धारा में बही जा रही है उससे आप अलग खड़े न हो सकें, तब तक सत्य के जगत में आपका कोई संबंध नहीं हो सकता।
अगर भीड़ का ही संबंध सत्य से होता तो दुनिया अब तक कितनी सुंदर और अच्छी नहीं हो गई होती! भीड़ गलत है, समाज गलत है। व्यक्तियों ने तो सत्य जाना है, अब तक समाज ने कोई सत्य नहीं जाना। समाज बुनियादी रूप से गलत आधारों पर दौड़ रहा है। कभी इक्के-दुक्के व्यक्ति जरूर सत्य को उपलब्ध होते हैं। लेकिन वे वे ही लोग होते हैं जो राजपथ को छोड़ देते हैं और पगडंडी पर चलते हैं। जो राजपथ से हट जाते हैं और कहते हैं, भीड़ जहां जा रही है वहां नहीं, हम कुछ अपना रास्ता खोजेंगे। वे ही लोग जान पाते हैं, वे ही लोग पहचान पाते हैं।
लेकिन जो भीड़ से प्रभावित है और भीड़ के साथ बहा जाता है, वह कहीं भी नहीं पहुंचेगा। बस उसको एक ही आश्वासन है कि सभी लोग वहां जा रहे हैं इसलिए मैं भी जा रहा हूं। तो जब सभी जा रहे हैं तो ठीक ही जा रहे होंगे, तो मैं क्यों गलती करूं? मैं क्यों गड़बड़ करूं?
तो जाइए, बहे जाइए। इस सारी दुनिया का, समाज का, भीड़ का जो सागर है, इसमें बहे जाइए। इसमें आप मिटेंगे, कहीं पहुंच नहीं सकते हैं।
धर्म वैयक्तिक खोज है, सामूहिक उपक्रम नहीं। समूह के साथ बहे जाने का नाम धर्म नहीं है, व्यक्तिगत खोज है धर्म, निजी खोज है धर्म। और बड़े साहस की और बड़े अभय की जरूरत है। नहीं तो यह नहीं हो सकता।
तो थोड़ा आंख खोल कर विचार करिए तो आपको दिखाई पड़ेगा कि यह सब प्रचार है। मगर हम देखते भी नहीं। हम यह भी नहीं देखते कि यह प्रचार... हजारों तरह के प्रचार हैं दुनिया में, फिर भी हमको दिखाई नहीं पड़ता कि जो जिस प्रचार के चक्कर में है वह उसको सत्य मानता है। दूसरा दूसरे प्रोपेगेंडा के चक्कर में है तो उसको सत्य मानता है। कोई लक्स टायलेट को सत्य मानता है कि उसी से सुंदर होते हैं, कोई हमाम साबुन को सत्य मानता है कि उसी से सुंदर होते हैं, कोई तीसरे साबुन को सत्य मानता है।
कोई एक मूर्ति को भगवान मानता है, कोई दूसरी मूर्ति को, कोई तीसरी। यह
सब प्रचार है और प्रोपेगेंडा है। इसमें कोई खोज नहीं है, कोई इंक्वायरी नहीं है हमारे मन के भीतर कि हम खोजने गए हों।
आपने खोज की है कि जैन धर्म जो कहता है वह सत्य है?
नहीं, खोज नहीं की। आपके पिता कहते थे, आपके गुरु कहते थे, आपके साधु कहते थे, इसलिए आप भी कहते हैं। आपकी कोई व्यक्तिगत खोज है? आपने कोई अपने व्यक्तिगत रूप से कोई अनुसंधान किया? कहीं आप गए? नहीं, आप उधारी पर बैठे हुए हैं। तो फिर कोई भी मूढ़ताएं समझाई जा सकती हैं और चलाई जा सकती हैं। दुनिया में जिस दिन लोग इन मूढ़ताओं के प्रति सचेत होंगे, दुनिया में
एक ही धर्म बचेगा, बहुत धर्म नहीं बच सकते हैं। बहुत धर्मों की कोई वजह

नहीं है, कोई जरूरत नहीं है। बहुत धर्म इसीलिए हैं कि हम प्रचार से पीड़ित हैं और प्रचार की जकड़ में हैं, इसलिए बहुत धर्म हैं। गणित एक है, फिजिक्स एक है।...
मनुष्य की सृष्टि जहां नहीं है, मनुष्य से पूर्व जो मौजूद है और मनुष्य के बाद भी जो मौजूद रहेगा, मेरे जन्म के पहले जो था और मेरी मृत्यु के बाद भी जो रहेगा, उसको जिस दिन मैं जानूंगा और खोजूंगा, उस दिन तो धर्म का और सत्य का अनुभव होगा। जो मैंने ही बना लिया है, उससे धर्म के और सत्य के अनुभव का कोई संबंध नहीं। और जब तक निर्णायक रूप से इन संबंधों के संबंध में हमारी मनःस्थिति स्पष्ट नहीं होगी तब तक दुनिया में धर्म नहीं हो सकता।
हां, धर्म बने रहेंगे बहुत प्रकार के और बहुत तरह की बीमारियां फैलाते रहेंगे, मनुष्य को मनुष्य से तोड़ते रहेंगे। विश्वास मनुष्यों को तोड़ता है। शास्त्र मनुष्यों को तोड़ते हैं और लड़ाते हैं। हालांकि वे प्रेम की बातें भला करते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
भीतर है कुछ, उस पर आग्रह है, उस पर जोर है, इसलिए मैंने कहा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि उन शास्त्रों में जो कहा है, जिस दिन आप अनुभव को उपलब्ध होंगे, उस दिन पाएंगे कि वे शास्त्र गलत हैं। नहीं, जिस दिन आप अनुभव को उपलब्ध होंगे, आप पाएंगे कि उनमें जो कहा है वह भी सत्य है। लेकिन जिस दिन आप अपने सत्य को जान लेंगे उसी दिन तो उनके सत्य को भी परख पाएंगे, उस दिन आपको दिखाई पड़ेगा।
महावीर ने कहा है, आत्मा सत्य है, आत्मा धर्म है, आत्मा को ही पा लेना
सब कुछ है। और बुद्ध ने कहा है, आत्मा को मानना अज्ञान है, आत्मा को मानना अधर्म है, अनात्मा को पा लेना सब कुछ है। अब ये दोनों बिल्कुल विरोधी बातें हैं अगर शास्त्र पढ़ेंगे तो। तो एक बौद्ध है, वह कहेगा कि ये जैन अज्ञान में हैं। और एक जैन है, वह बौद्धों से कहेगा, ये अज्ञान में कहते हैं कि अनात्मा सत्य है, आत्मा का न होना सत्य है।
बुद्ध कहते हैं आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है और महावीर कहते हैं आत्मा को जानने से बड़ा ज्ञान नहीं है। तो अब तो दो शास्त्र हो गए, दो सिद्धांत हो गए, दो वाद हो गए, ये लड़ेंगे।
लेकिन जो जान लेगा वह हैरान होकर पाएगा कि बुद्ध जिसको अनात्मा कहते हैं, महावीर उसी को आत्मा कहते हैं और उन दोनों में कोई भी फर्क नहीं है। वे दोनों विरोधी शब्द एक ही तरफ इशारा करते हैं। जैसे कि हम एक गिलास में पानी भर कर रख दें आधा गिलास। और एक आदमी कहे, गिलास आधा खाली है। और एक आदमी कहे, गिलास आधा भरा है। और शास्त्र बन जाएं दो और लड़ाई शुरू हो जाए। और एक कहे कि आधा खाली होना ही सत्य है। और एक कहे कि आधा भरा होना ही सत्य है। और दूसरा गलत है, क्योंकि दूसरा बिल्कुल विरोधी शब्द उपयोग कर रहा है। लेकिन जो जाने और गिलास को पहचाने और देखे, वह कहेगा कि ठीक है, समझ गया। सत्य सत्य है, शास्त्र सत्य नहीं है। बहुत रूपों में कहा जा सकता है, बहुत शब्द दिए जा सकते हैं, क्योंकि रूप और शब्द हमारी सूझ और समझ के परिणाम हैं, सत्य की अनुभूति के अनिवार्य हिस्से नहीं हैं। हिंदुस्तान में हम और शब्द देते हैं, चीन में और शब्द देते हैं, जेरुसलम में और शब्द देते हैं। जिसको महावीर ने मोक्ष कहा, बुद्ध ने निर्वाण कहा, उसको क्राइस्ट कैसे मोक्ष कह सकते थे? मोक्ष जैसी उनकी भाषा में कोई चीज नहीं, निर्वाण जैसी कोई कल्पना नहीं उनकी कौम के पास। उन्होंने कहा, किंगडम ऑफ गॉड, ईश्वर का राज्य।
हमारे लिए गड़बड़ हो गया। क्योंकि जैनी कहेगा, ईश्वर तो है ही नहीं, ईश्वर का राज्य क्या होगा? तो यह किंगडम ऑफ गॉड तो गड़बड़ बात है।
लेकिन जो मतलब मोक्ष का है, जो मतलब निर्वाण का है, वही मतलब किंगडम ऑफ गॉड का है। उसमें कोई फर्क नहीं है। जहां मनुष्य का सब राज्य समाप्त हो जाता है, वहां जो शेष रह गया उसको कहते हैं किंगडम ऑफ गॉड। जहां मनुष्य के निर्माण का सारा राज्य समाप्त हो जाता है, वहां जो शेष है, वहां जो अनंत और अनादि शेष है, उसको वे कह रहे हैं किंगडम ऑफ गॉड। लेकिन उनके पास यहूदी

टर्मिनालॉजी थी, उनके पास यहूदी शब्द थे। मजबूरी थी, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं थी, तो उन्होंने उनका उपयोग किया।
दुनिया में शब्दों का झगड़ा है। और शास्त्रों में शब्द हैं और अज्ञानी शास्त्र को पकड़ेगा तो शब्दों से जकड़ जाएगा। इसलिए मैं कहता हूंः सत्य को जानो, शास्त्र सत्य हो जाएंगे; लेकिन शास्त्र को पकड़ लो, जीवन पूरा का पूरा असत्य हो जाएगा। शास्त्र को जिसने पकड़ा उसका जीवन गया। सत्य तो मिलेगा ही नहीं, शास्त्र को भी नहीं जान पाएगा। लेकिन जिसने सत्य को खोजा वह सत्य को तो पाएगा ही, साथ ही साथ शास्त्रों में जो है उसको भी जान लेगा।
सोचने की और विचारने की कोशिश करना कि मैं जो कह रहा हूं वह क्या है? मूर्ति तो छूट जाएगी जो भगवान को खोजेगा, क्योंकि वह पत्थर को मूर्ति नहीं मान सकता। लेकिन जिस दिन भगवान को खोज लेगा, भगवान के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा, पत्थर में भी वही होगा। मूर्ति को जिसने पकड़ा वह तो पत्थर पर अटक जाएगा, लेकिन जिसने सब छोड़ा और भगवान को खोजा, पत्थर भी एक दिन भगवान हो जाएगा। कोई फिर फर्क नहीं रह जाएगा। अभी तो फर्क है। अभी जो पत्थर सीढ़ी का है उसको तो नमस्कार नहीं करते हैं; लेकिन जो पत्थर मूर्ति का है उसको नमस्कार करते हैं। और कल हट जाए मूर्ति वहां से तो वह भी पत्थर हो जाएगी और सीढ़ी पर लगा दी जाएगी। लेकिन जिसको भगवान का अनुभव होगा उसके लिए सभी पत्थरों में वही हो जाएगा।
एक फकीर हुआ। एक नास्तिक था उस गांव में। उसको बहुत लोगों ने समझाया,
वह नहीं समझा। तो उन्होंने कहा कि पास के गांव में एक फकीर है, तुम वहां जाओ। वही तुम्हें समझा सकता है, अब और तुम्हें कोई नहीं समझा सकता।
उस नास्तिक ने कहा कि ठीक है, वहां भी मैं जाता हूं। नास्तिक बड़े गुरूर से भरा हुआ था, उसके पास दलीलें थीं। और नास्तिक के पास हमेशा दलीलें रही हैं, दलीलों में कमी नहीं है। वह दलीलें लेकर गया। पहुंचा, सुबह कोई आठ बजते थे, जाकर मंदिर में गया जहां वह फकीर रहता था, साधु रहता था। देख कर हैरान हो गया, शंकर का मंदिर था और वह जो साधु नाम के सज्जन थे, शंकर की पिंडी पर पैर रखे हुए विश्राम कर रहे थे, सो रहे थे। उसे तो बहुत हैरानी हो गई, उसने कहा कि नास्तिक तो मैं जरूर हूं, लेकिन अभी पैर मैं भी शंकर की पिंडी को नहीं लगा सकता। पता नहीं कौन सी झंझट खड़ी हो जाए? पता नहीं ये शंकर इसका क्या बदला लें? हों ही कहीं, क्या पता? दलीलें तो ठीक हैं, लेकिन अगर कहीं हुए तो वे तो मुसीबत बाद में डालेंगे, तो पैर तो मैं भी नहीं लगा सकता। लेकिन यह साधु अजीब है! और यह मुझे क्या समझाएगा, यह तो परम नास्तिक मालूम होता है। और यह भी कैसा साधु है, ब्रह्ममुहूर्त कब का निकल गया और यह अभी आठ बज रहे हैं और सो रहा है? क्योंकि साधु तो ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं!
इसलिए साधु होना बहुत आसान है। ब्रह्ममुहूर्त में उठिए, साधु हो गए।
यह तो सीधा सा गणित है, इसमें कठिनाई क्या?
वह बहुत हैरान हुआ। लेकिन बैठ गया। बोला, इसके पास भेजा है! लेकिन थोड़ी देर बाद वह साधु उठा तो उसने पूछा कि महाराज, मैंने तो सुना था कि साधु ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं और आप अभी सो रहे हैं और सूरज आकाश में खूब चढ़ चुका!
वह साधु हंसने लगा और बोला, हमने भी बहुत खोजा कि ब्रह्ममुहूर्त कौन
सा है, इसका पता चल जाए। फिर हमको यही पता चला कि जब हमारी नींद खुल जाए, ब्रह्म का जब जागरण हो जाए, वही ब्रह्ममुहूर्त है। तो जब हम उठते हैं उसी को ब्रह्ममुहूर्त मान लेते हैं। और तो हमारी समझ में नहीं आया कि ब्रह्ममुहूर्त कौन सा है? बहुत खोजा, लेकिन कुछ पक्का पता नहीं चला। फिर हमने यही सोचा कि भीतर तो ब्रह्म है, जब वह खुलती है उनकी नींद तो समझो ब्रह्ममुहूर्त है। और नींद खुल रही है तो वह मुहूर्त ब्रह्म। तो जब हमारी नींद खुलती है तब हम ब्रह्ममुहूर्त मानते हैं।
उसने कहा कि ठीक है। अब इनसे क्या बकवास की जाए! कहा, और यह क्या कर रहे हैं कि आप भगवान की मूर्ति पर पैर रखे हुए हैं?
उसने कहा कि पहले हम भी ऐसा ही सोचते थे। लेकिन जब भगवान को जाना तो मुसीबत हो गई कि अब पैर कहां रखें? कहीं भी पैर रखें वहीं भगवान है। कहीं

भी पैर रखें वहीं भगवान है, तो कहीं तो रखेंगे ही! तो यह बताने को लोगों को कि जहां भी पैर रखें वहीं भगवान है, इसलिए जहां-जहां लोग भगवान मानते हैं वहीं-वहीं हम पैर रखते हैं, ताकि लोगों को पता चल जाए कि कहीं भी पैर रखो वहीं भगवान है।
वह बोला कि ठीक है, अब आपसे तो कोई रास्ता न रहा, बाकी हम तो हैं नास्तिक और हम विवाद करने आए थे।
उसने कहा, फिर भी रुको, कुछ खाना-वाना हम बनाएंगे तो तुम खाकर ही जाना,
अब आ गए हो।
तो वह गांव से भिक्षा मांग कर लाया और उसने बाटियां बनाईं। और जब वह बाटियां बना रहा था, एक कुत्ता उसकी बाटी लेकर भाग गया। तो वह घी की हंडी लेकर उसके पीछे भागा। वह नास्तिक हैरान हुआ कि दिखता है यह दुष्ट उसकी बाटी छुड़ा कर लौटेगा। तो वह नास्तिक भी पीछे गया। लेकिन उसने कुत्ते को आखिर जाकर पकड़ ही लिया उस फकीर ने और उससे कहा कि देखो राम, बिना घी की बाटी न तो हमको पसंद है और हम सोचते हैं तुमको भी पसंद न होगी, इसलिए पहले इस बाटी को घी में डुबा लेने दो और फिर खाना। उस कुत्ते से कहा, देखो राम, हमको बिना घी की बाटी पसंद नहीं तो तुमको भी न होगी। तो कृपा करके इतना करो। तो उसने उस कुत्ते के मुंह से बाटी निकाली, अपने घी के बर्तन में उसको डुबाई, वापस कुत्ते के मुंह में लगाई और कहा, राम, अब जाओ।
उस नास्तिक ने उसके पैर छुए और कहा, मैं जाता हूं, अब मुझे कुछ सीखना नहीं आपसे। क्योंकि मैं तो हैरान हो गया, भगवान की मूर्ति पर पैर टेकते हो और कुत्ते से राम कहते हो!
जो जानता है वह यही करेगा। क्योंकि जिसे दिखाई पड़ेगा परमात्मा, उसे फिर कुत्ते में भी दिखाई पड़ेगा, पत्थर में भी, मकान में भी, सब तरफ वही दिखाई पड़ेगा, उसके अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ सकता है। लेकिन आपको दिखाई पड़ता है मंदिर में, तो जरूर गड़बड़ है। आपको दिखाई पड़ता है मूर्ति में, तो जरूर गड़बड़ है। मूर्ति में तो भगवान नहीं है, लेकिन जिस दिन भगवान का अनुभव होगा उस दिन मूर्ति भी भगवान के बाहर नहीं रहेगी। वह तो समष्टि का अनुभव है। लेकिन इन क्षुद्रताओं में जो उलझ जाता है वह समष्टि तक नहीं उठ पाता है, नहीं उठ सकता है।
क्षुद्रताएं छोड़ें, जागें विराट के प्रति, जागें विराट के प्रति, असीम के प्रति, तब तो धर्म का अनुभव होगा, तब तो भगवान की या सत्य की--या कोई भी नाम दे दें--उसकी प्रतीति होगी।

एक और छोटा सा प्रश्न है और बहुत बढ़िया हैः एक उलझन है कि मेरे मन में चोरी करने का भाव हो उठता है, खर्च की कमी रहती है इसलिए मुझसे चोरी हो जाती है। इस बात का कृपया उपाय बतलाएं कि इस चोरी से कैसे मुक्त हुआ जाए?

बड़ी ईमानदारी की बात पूछी है, इसलिए बहुत अच्छी है। क्योंकि लोग भगवान की बातें पूछते हैं, पुनर्जन्म की बातें पूछते हैं। यह तो कोई पूछता ही नहीं कि मैं चोर हूं। जो आदमी यह पूछता है उसकी जिंदगी में कुछ हो सकता है। उसकी जिंदगी का प्रश्न सच्चा है और सीधा है। उसे कोई चीज खटक रही है जिंदगी में, वह उस पर विचार कर रहा है। लेकिन दूसरे लोग तो विचार कर रहे हैं--आत्मा अमर है या नहीं? और भगवान है तो किस शास्त्र में है?
ये सब झूठे प्रश्न हैं। ये वास्तविक प्रश्न नहीं हैं। वास्तविक प्रश्न तो जिंदगी के होते हैं--कि मेरे भीतर बेईमानी है, मेरे भीतर क्रोध है, मुझे चोरी हो आती है, मैं क्या करूं?
तो मैंने दोपहर जो कहा है, अगर उसे समझा होगा, तो इस प्रश्न का उत्तर मिल जाना चाहिए।
चोरी तो रहेगी। जब तक चेतना बाहर की तरफ गति करती है, चोरी रहेगी। यह
मत सोचना कि जो जेलों में बंद हैं वे ही चोर हैं। जो पकड़ जाते हैं वे बंद हैं, जो नहीं पकड़ते वे बाहर हैं। इस ख्याल में मत रहना कि जो भीतर जेल के बंद हैं वे ही चोर हैं। जो पकड़ जाते हैं वे बंद हैं बेचारे; वे जरा कमजोर चोर हैं या नासमझ चोर हैं; होशियार नहीं हैं, बहुत चालाक नहीं हैं। जो

चालाक हैं, होशियार हैं, वे बाहर हैं। जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे मजिस्ट्रेट हैं। जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे पुरोहित हैं, जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे साधु हैं। चोर सब हैं, क्योंकि जिसकी चेतना बाहर की तरफ बह रही है वह बिना चोरी किए बच नहीं सकता।
एक दफा ऐसा हुआ कि सिकंदर के पास हिंदुस्तान से लौटते वक्त उसके फौजी पड़ाव में एक डाकू ने डाका डाल दिया। रात फौजें सोई थीं, वह सामान चुरा कर ले गया। सिकंदर बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, हद्द हो गई। सुबह वह डाकू पकड़ कर लाया गया। सिकंदर ने कहा कि तुम कैसे बदतमीज हो! कैसे अनैतिक व्यक्ति हो! उस डाकू ने कहा कि नहीं, ऐसा व्यवहार न करें। जैसा एक बड़ा भाई छोटे भाई
के साथ व्यवहार करता है वैसा व्यवहार करें।
सिकंदर ने कहा, तू मेरा छोटा भाई कैसे?
उसने कहा, तुम बड़े डाकू हो, तुम्हें दुनिया मानती है। हम छोटे डाकू हैं, हमें मानती नहीं। हम जरा कमजोर हैं, शक्तिहीन हैं, हम छोटे-मोटे डाके डालते हैं। तुम बड़े डाके डालते हो, तुम बादशाह हो। तुम भी वही करते हो, हम भी वही करते हैं।
आपके बड़े से बड़े राजा भी चोरी करते रहे हैं। चोरी न करें तो राजा कैसे
हो जाएंगे? हां, उनकी चोरी स्वीकृत है, क्योंकि वे बड़े चोर हैं और ताकतवर चोर हैं। इसलिए वे हड़प लेते हैं तो उसको जीत कहा जाता है। वे जमीन बढ़ा लेते हैं तो उसको राज्य कहा जाता है। आप बगल वाले की जमीन दबाएंगे तो चोर समझे जाएंगे; आप बगल वाले की जेब में हाथ डालेंगे तो चोर समझे जाएंगे। और सब राजा आपकी जेबों में हाथ डाले रहे, नहीं तो उनके पास आता कहां से? वे बड़े चोर हैं, वे स्वीकृत चोर हैं, समाज उनको मान्यता देता है। और क्यों? क्योंकि समाज उनसे डरता है। वे जो चाहते हैं मनवा लेते हैं।
नेपोलियन ने कहा है कि जो मैं कह दूं वही कानून है।
तो ठीक कहा है, जो ताकतवर कह दे वह कानून है। दुनिया में दो तरह के चोर रहे--ताकतवर और कम ताकतवर। कम ताकतवर सजा भोगते हैं, ताकतवर अपनी चोरी का पुण्य यहीं लूटते हैं, मजा करते हैं। और उन ताकतवरों ने बड़ी होशियारी की बातें की हैं कि उन्होंने पुरोहितों को भी मना लिया है। क्योंकि उनकी चोरी में भागीदार ये भी हैं, पुरोहित भी उनकी चोरी में भागीदार हैं, तो इनको भी मना लिया है। इनसे वे यह कहते हैं कि जिनके पास नहीं है वे पिछले जन्मों के पाप का फल भोग रहे हैं और हमारे पास है तो हम पिछले जन्मों के पुण्य का फल भोग रहे हैं।
जब कि असलियत यह है कि या तो उनके बापों के पाप का फल है उनकी संपत्ति
या उनके और बापों के या उनके खुद के। बिना पाप के संपत्ति इकट्ठी होनी कठिन है, बिना चोरी के संपत्ति इकट्ठी नहीं होती। संपत्ति मात्र चोरी है। यह असंभव है। लेकिन जिनके पास संपत्ति है वे यह व्यवस्था करते हैं कि हमारी संपत्ति खो न जाए, चोरी न चली जाए। तो वे पुरोहितों को कहते हैं, लोगों को समझाओ कि चोरी बहुत बुरी चीज है, चोरी बहुत पाप है। ताकि जिनके पास नहीं है वे दूर रहें, डरे हुए रहें। पुलिस है, अदालत है, सब है। लेकिन फिर भी डर है कि फिर भी आदमी चोरी करने को राजी हो जाए। इसलिए बचपन से उसके भीतर कांशियंस पैदा करता है समाज--कि देखो, चोरी बहुत बुरी चीज है। चोरी बहुत बुरी चीज है, मतलब जिनके पास संपत्ति है उनसे मत लेना।
लेकिन उनके पास संपत्ति कैसे आ गई? उनके पास संपत्ति कैसे आ गई? उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए यह भी व्यवस्था कर रखी है कि चोरी मत करना। यह संपत्ति का जो केंद्रीकरण है उसने ही "चोरी न करना" इसको प्रचारित किया हुआ है। लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि शोषण मत करना। अभी तक दुनिया के किसी धर्मग्रंथ में यह नहीं लिखा है कि शोषण करना पाप है। लिखा है चोरी करना पाप है। शोषण करना पाप नहीं है। जब कि शोषण के कारण ही चोरी पैदा होती है। नहीं तो चोरी पैदा क्यों होगी? अगर दुनिया में शोषण नहीं होगा, चोरी नहीं होगी।
कनफ्यूशियस हुआ चीन में। उसकी अदालत में एक मुकदमा आया। अदालत में मुकदमा यह था कि एक आदमी ने चोरी की थी। उस पर मुकदमा था, चोरी पकड़ गई थी, संपत्ति भी पकड़ गई थी। कनफ्यूशियस ने फैसला दिया--ढाई हजार साल पहले फैसला

दिया, अदभुत फैसला दिया, मैं भी उसकी जगह होता तो वही फैसला देता, हालांकि अभी तक दुनिया उससे राजी नहीं कि उसने ठीक किया--उसने छह महीने की सजा साहूकार को दे दी और छह महीने की सजा चोर को दे दी।
साहूकार हैरान हुआ कि तुम्हारा दिमाग खराब है? मेरी संपत्ति चोरी जाए
और मुझे सजा! यह कौन से कानून में लिखा हुआ है?
उसने कहा कि तुम्हारे पास इतनी संपत्ति इकट्ठा होना ही चोरी का बुनियादी कारण है। इस गांव में तुम्हारे पास इतनी संपत्ति इकट्ठी हो गई है कि बाकी लोग भी चोरी नहीं कर रहे हैं, यही आश्चर्य की बात है।
जीवन की धारा एकदम गलत है, एकदम गलत है, उसमें सब चोरी कर रहे हैं। इसलिए जिसको यह ख्याल आ गया है कि मुझसे चोरी हो रही है, मैं क्या करूं? उसके भीतर एक चिंतन तो पैदा हुआ है। कुछ हो सकता है। लेकिन चोरी की बहुत फिक्र न करें, चोरी से तो वह नहीं बच सकेगा। मान्य चोरी करेगा, अमान्य चोरी करेगा, चोरी से तो नहीं बच सकेगा, जब तक कि उसकी चेतना-धारा बाहर की तरफ बहती है।
तो मैंने दोपहर जो बात की है उससे इसे जोड़ लेना। चेतना की धारा भीतर
की तरफ बहे तो चोरी बंद होती है। चोरी बंद होती है। उसके बिना चोरी बंद नहीं हो सकती। दुनिया में अगर कभी भी चोरी समाप्त होगी तो वह तभी जब अधिक जीवन अंतर्गामी होंगे। बहिर्गामी होंगे, चोरी बंद नहीं हो सकती। हां, छोटी चोरियां पकड़ी जाती रहेंगी, बड़ी चोरियां सम्मानित होती रहेंगी। बड़े चोर इतिहास बनाएंगे, छोटे चोर कारागृहों में बंद होंगे। यह होगा, लेकिन चोरी बंद नहीं होगी। चाहे समाजवाद आ जाए तो भी चोरी बंद नहीं होगी। चोरी की शक्लें बदल जाएंगी। शक्लें दूसरी हो जाएंगी, लेकिन चोरी होगी। हिंदुस्तान में गरीब है, अमीर है। समाजवादी मुल्कों में सामान्य जनता
है और सरकार में प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ है। वह उनका शोषण कर रहा है, वह उनकी चोरी कर रहा है। सब चल रहा है। उससे बचा नहीं जा सकता। जब तक कि बहुत गहरे अर्थों में अधिकतम आत्माएं अंतर्गामी न हों, जीवन में चोरी होगी। चोरी से तभी कोई बच सकता है जब उसके जीवन में अपरिग्रह पैदा हो। परिग्रह चोरी है। और अपरिग्रह तभी पैदा होगा जब उसे आत्मबोध हो। इसके पीछे एक कारण है, जब तक हमें भीतर संपदा न मिले तब तक हम बाहर संपत्ति को खोजेंगे। वह भीतर की संपत्ति को इस तरह सब्स्टीट्यूट करेंगे। भीतर तो खाली हैं, भीतर कोई संपत्ति नहीं, तो बाहर संपत्ति को इकट्ठा करेंगे। उस संपत्ति को इकट्ठा करके किसी तरह कमी पूरी कर लेंगे। भीतर तो खाली हैं, भीतर तो कोई संपदा नहीं, तो बाहर संपदा इकट्ठी होती है। जब किसी व्यक्ति को भीतर संपदा मिलने लगती है तो बाहर की संपदा पर से अपने आप हाथ छूट जाते हैं। भीतर जब संपदा मिलती है तो कोई पागल बाहर संपदा इकट्ठा करेगा।
एक आदमी जा रहा हो और उसके हाथ में कंकड़-पत्थर रखे हों और आप उसको बता दें कि ये सामने हीरे पड़े हैं, तो क्या उसको याद भी रहेगा कि कंकड़-पत्थर कहां गए?
वे तत्क्षण कंकड़-पत्थर छूट जाएंगे और हीरों पर मुट्ठी बंध जाएगी। उसे त्याग नहीं करना पड़ेगा कंकड़-पत्थरों का, वे छूट ही जाएंगे।
चोरी तभी बंद हो सकती है जब और गहरी संपदा भीतर उपलब्ध होनी शुरू हो जाए। परिग्रह तभी छूट सकता है जब भीतर आत्मिक जीवन और आत्मिक आनंद पर हाथ पड़ने शुरू हो जाएं। तो यहां छूट जाएगा, कंकड़-पत्थरों को कौन पकड़ेगा? महावीर ने कोई त्याग करके कोई बड़ा काम नहीं किया, या बुद्ध ने या किसी ने भी। यह त्याग-व्याग नहीं है, यह कंकड़-पत्थर का छूट जाना है। भीतर कुछ मिला है अदभुत, अब उसके लिए हाथ खाली चाहिए, तो बाहर सब छूट गया।
जब तक अपरिग्रह न हो... परिग्रह हो, तो फिर परिग्रह में तो चोरी होगी। उसके नाम अलग हो सकते हैं। एक सम्मत चोरी हो सकती है, समाज के द्वारा स्वीकृत; और एक समाज के द्वारा अस्वीकृत चोरी हो सकती है। वह दूसरी बात है, उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन यह मैं कहूं कि जब तक अपरिग्रह न भीतर हो तब तक चोरी होगी। और जब तक चोरी होगी तब तक दुनिया में शोषण जारी रहेगा। और जब तक शोषण जारी रहेगा तब तक मनुष्य के जीवन में कोई ऐसा समाज पैदा नहीं हो सकता जो सुंदर हो, स्वस्थ हो, शांत हो, सुखी हो, समान हो,

स्वतंत्र हो। नहीं हो सकता। और अपरिग्रह आता है आत्मिक गति से। जितना- जितना व्यक्ति आत्मा में प्रविष्ट होता है, उतना-उतना अपरिग्रह आता है। मैं आपसे बाहर की संपत्ति छोड़ने को नहीं कहता हूं, मैं आपसे भीतर की संपत्ति उपलब्ध करने को कहता हूं। बाहर की संपत्ति तो जाएगी अपने आप, उसे छोड़ने की कोई कठिनाई नहीं है। और अगर बाहर संपत्ति पर पकड़ ढीली हो जाए तो दुनिया में एक दूसरी तरह का मानव-समाज निर्मित हो सकता है। इसलिए चिंता न करें कि चोरी है। चिंता करें इस बात की कि मेरी दिशा बाहर की तरफ है। चोरी तो चलने दें, वह चलेगी इधर-उधर, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन भीतर जागें और भीतर की तरफ गति करें। और जिस दिन भीतर की तरफ गति हो जाए उस दिन आप पाएंगे कि चोरी तो गई। चोरी जाएगी।
एक मित्र मेरे पास आते थे। वे मुझसे कहे, मैं शराब पीता हूं। मैं कैसे ध्यान करूं?
मैंने कहा, इसका क्या संबंध, शराब पीने से और ध्यान करने से! खूब शराब पीओ और ध्यान भी करो।
वे बोले, लेकिन कोई भी... वे तो थोड़े हैरान हो गए और बोले, यह कैसे हो सकता है कि मैं शराब भी पीयूं और ध्यान भी करूं?
मैंने कहा, अगर यह नहीं हो सकता तब तो फिर रास्ता ही समाप्त हो गया। यह
तो ऐसे ही हुआ, एक बीमार आदमी कहे कि मैं तो बीमार हूं तो मैं इलाज कैसे करूं? मैं तो बीमार हूं, मैं इलाज कैसे करूं? तो हम उससे कहेंगे, बीमार हो तो रहो, लेकिन इलाज तो करो।
शराब पीते हो, पीओ। मेरी दृष्टि में, मैंने उनसे कहा, शराब इसीलिए पीते हो कि भीतर शांत नहीं हो। भीतर अशांत हो इसलिए शराब पीते हो, ताकि भूल जाओ अपने को। जब ध्यान भीतर शांति लाएगा तो शराब पीने के बुनियादी कारण टूट जाएंगे।
आना शुरू किया। वे कुछ दिन ध्यान करते थे। कोई तीन महीने बाद उन्होंने आकर मुझसे कहा, आपने तो मुझे सच में धोखा दे दिया, शराब तो गई। मैंने कहा, मुझे उससे क्या लेना-देना, रहे या जाए। उससे कोई संबंध नहीं है।
आपकी चोरी से कोई संबंध नहीं है। संबंध है इस बात से कि भीतर आप गति करें, थोड़ा ध्यान में गहरे हों। जाएगी, चोरी जाएगी, शराब जाएगी, बेईमानी जाएगी, उसे छोड़ना नहीं है, वह जाएगी। और जब जाए तभी शुभ है। छोड़ा हुआ झूठा होगा, वह भीतर बनी रहेगी, नये रास्ते पकड़ लेगी, नये ढंग से आने लगेगी, अपरिचित रास्ते पकड़ लेगी, परिचित रास्ते छोड़ देगी। मन बहुत होशियार है, बहुत कनिंग है। आप एक तरफ से छोड़ेंगे, वह दूसरी तरफ से शुरू कर देगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। फर्क पड़ता है अंतर्गमन से। और अंतर्गमन ही केंद्रीय तत्व है जीवन-साधना में।
और प्रश्न हैं, उनकी मैं कल बात करूंगा। अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। तो मैं समझा तो चुका हूं, कुछ थोड़े से नये मित्र होंगे, उनको दो बात कह दूं।
रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने का ध्यान है, यहां तो हम प्रयोग कर रहे हैं, रात को लौट कर कमरे पर उसे दोहराएं। क्योंकि यहां तो जमीन है, कंकड़-पत्थर हैं, लेट भी नहीं सकते, तकलीफ भी है। इतने लोग भी हैं, उनको भूल भी नहीं सकते। तो कमरे पर जाकर उसे दोहराएं। यहां तो सिर्फ हम प्रयोग कर रहे हैं कि आपको ख्याल में आ जाए कि क्या करना है। लेट जाना है, सारे शरीर को ढीला छोड़ देना है। ढीला छोड़ने के सुझाव मैं दूंगा, उसके हिसाब से फिर छोड़ते जाना है। फिर श्वास शांत कर लेनी है, शांत छोड़ देनी है, उसके भी सुझाव दूंगा। फिर मन शांत होने के सुझाव दूंगा। अंत में कहूंगा कि दस मिनट के लिए सब शांत हो गया। उस शांति में सोए हुए भीतर जागे रहें, जैसा सुबह जागे रहते हैं उसी भांति।
तो बहनें यहां ऊपर जाएं और सारे भाई नीचे आ जाएं।

समाधि कमल
तेरहवां प्रवचन

अभाव का बोध

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीते दो दिनों में सुबह की चर्चाओं में दो बिंदुओं पर हमने विचार कियाः अज्ञान का बोध और रहस्य का बोध।
अज्ञान का बोध न हो तो ज्ञान ही बाधा बन जाता है और रहस्य का बोध न हो
तो व्यक्ति अपने में ही सीमित हो जाता है। और जो विराट ब्रह्म विस्तीर्ण है चारों ओर, उससे उसके संपर्क-सूत्र शिथिल हो जाते हैं, उससे उसकी जड़ें टूट जाती हैं। और जो व्यक्ति अपने में ही केंद्रित हो जाता है वह स्वभावतः पीड़ा और दुख में पड़ जाता है और चिंता में पड़ जाता है।
इन दो तत्वों के संबंध में विचार किया। मनुष्य सर्वसत्ता से इन दो दीवालों के कारण टूटा है। टूट की वजह से उसके भीतर कौन सी घटना घटी है और वह घटना कैसे विसर्जित होगी, उसकी चर्चा मैं आज करना चाहता हूं। क्यों मनुष्य अपने को ज्ञान से भरना चाहता है? क्यों मनुष्य प्रकृति के रहस्य से दूर हट गया और टूट गया? कोई सुनिश्चित कारण पीछे होंगे। अकारण यह नहीं हुआ है। उन कारणों पर थोड़ा सा विचार करेंगे, और कैसे वापस मनुष्य अपने थोथे अहंकार से मुक्त हो सकता है और जीवन से संबंधित, उसका भी।
मनुष्य के जीवन में, चाहे वह ज्ञान का संग्रह करता हो, चाहे धन का संग्रह करता हो, चाहे यश का संग्रह करता हो, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेने जैसी है कि मनुष्य जीवन भर संग्रह करता है, इकट्ठा करता है। यह दूसरी बात है कि वह क्या इकट्ठा करता है। दिशाएं अलग होंगी। कोई धन इकट्ठा करता होगा, कोई यश इकट्ठा करता होगा, कोई ज्ञान इकट्ठा करता होगा, कोई कला और कौशल इकट्ठा करता होगा, लेकिन एक बात केंद्रीय है कि मनुष्य जीवन भर इकट्ठा करता है, संग्रह करता है।
संग्रह क्यों करता है? क्यों यह प्रगाढ़ वेग है भीतर कि मैं इकट्ठा करूं? संग्रह करूं? क्यों? अगर इसे न समझा जा सके तो जीवन में कोई आधारभूत परिवर्तन संभव नहीं है। क्योंकि यह हो सकता है कि एक संग्रह को वह छोड़ दे, तो वह दूसरा संग्रह शुरू कर देगा, क्योंकि संग्रह का मूल वेग उसकी दृष्टि में नहीं है। अगर वह धन छोड़ना शुरू कर दे तो छोड़ सकता है, तो वह त्याग इकट्ठा करना शुरू कर देगा। त्याग भी इकट्ठा किया जाता है।
यह आश्चर्यजनक है! क्योंकि हम कहेंगे कि त्याग कैसे इकट्ठा किया जाता है? धन तो समझ में आता है इकट्ठा हो सकता है, लेकिन त्याग? त्याग भी इकट्ठा हो सकता है। उसका भी हिसाब होता है कि मैंने कितने उपवास किए, उसकी भी गणना होती है। मैंने कितना तप किया, मैंने कितनी प्रार्थना की, मैंने कितना कष्ट सहा--मैंने कितना त्याग किया। जहां गणित है, वहां संग्रह है। जहां कैलकुलेशन है, वहां संग्रह है। यह सबका हिसाब है कि मैंने कितना किया। मेरे पास कितना धन है, इसका भी हिसाब होता है। मेरे पास कितना त्याग है, इसका भी हिसाब होता है। मैं बड़ा त्यागी हूं या छोटा त्यागी हूं, इसका भी हिसाब होता है।
यह जो मनुष्य का मन है, अगर बिना संग्रह की मूल प्रवृत्ति को समझे, छोड़ने लगे, तो बड़ी विरोधी घटना घटती है--वह छोड़ने का भी संग्रह करने लगता है, छोड़ने का भी हिसाब रखने लगता है। वह भी उसकी संपत्ति बनने लगती है, त्याग भी संपत्ति बन जाती है।
ज्ञान तो स्पष्टतः संगृहीत होता है। लेकिन क्यों हम संग्रह करना चाहते हैं? मेरे देखे--और आप भी विचार करेंगे तो यह समझ में आएगा--मनुष्य के भीतर कोई अनिवार्य शून्यता है; मनुष्य के भीतर एंप्टीनेस है, कोई खालीपन है, कोई अभाव है; मनुष्य के भीतर कुछ बिल्कुल रिक्त है। उस रिक्त से घबड़ाहट है, भय है। वह जो शून्य है भीतर उससे डर मालूम होता है। उसको हम भरना चाहते हैं। उसको हम किसी न किसी रूप से भर देना चाहते हैं। उसके भीतर कुछ संगृहीत कर लेना चाहते हैं, ताकि शून्य से छुटकारा हो जाए, ताकि रिक्त भीतर जो खाली जगह है वह भर जाए।

शून्य का भय है जो मनुष्य को संग्रह में ले जाता है। ना-कुछ, नथिंगनेस
का भय है, भीतर तो कुछ भी नहीं है, एकदम शून्य है वहां। है कुछ? वहां तो टोटल नथिंगनेस है, वहां तो एकदम सन्नाटा है और शून्य है और सब रिक्त है, वहां तो एकदम अभाव है। उस अभाव से घबड़ाहट होती है, उस अभाव से भय होता है, उस भय से आदमी भागता है। विपरीत दिशा में भागता है। भीतर सब खाली है तो बाहर सब भांति भर जाए, इसकी चेष्टा में लग जाता है। संग्रह की वृत्ति भीतर के अभाव से पलायन है, एस्केप है। वह जो भीतर सब खाली-खाली है उससे डर लगता है। लेकिन खाली होने से डर क्यों लगता है? यह भय क्या है? अगर आप नोबडी हैं, ना-कुछ हैं, तो भय क्या है?
जरूर कोई भय होगा। हर आदमी समबडी होना चाहता है, कोई नोबडी होने को राजी नहीं, ना-कुछ होने को कोई तैयार नहीं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ होना चाहता है। वह कह सके कि मैं कुछ हूं। सारी राजनीति इससे पैदा होती है कि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। धन की दौड़ इससे पैदा होती है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। मैं कुछ हूं! त्याग की दौड़ इसलिए पैदा हो सकती है कि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। ज्ञान इसलिए इकट्ठा होता है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। संन्यास तक इसलिए लिया जा सकता है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। तुम कुछ भी नहीं और मैं कुछ हूं! लेकिन यह क्यों? यह मैं क्यों कहना चाहता हूं? यह क्यों मेरे भीतर ख्याल उठता है कि मैं कुछ हूं? यह दौड़ कहां से पैदा होती है?
भीतर मैं ना-कुछ हूं, भीतर मैं कुछ भी नहीं हूं। देखें, खोजें--भीतर आप क्या हैं? भीतर तो कोई भी कुछ नहीं है। भीतर तो कोई विशेषण नहीं है, कोई विशेषता नहीं है। भीतर तो एक सन्नाटा है और खालीपन है। खालीपन से घबड़ाहट लगती है। भागते हैं उसको भरने को, कुछ संग्रह करते हैं। ज्ञान इकट्ठा करते हैं, धन इकट्ठा करते हैं, यश इकट्ठा करते हैं। और जितना भागते हैं उतना ही, जितना इकट्ठा करने लगते हैं उतनी ही कठिनाई बढ़ती चली जाती है। क्योंकि लाख उपाय करें, भीतर वह जो ओरिजिनल एंप्टीनेस है, वह जो मौलिक और प्रकृतिगत अभाव है, उसे भरा नहीं जा सकता है, वह हमारा स्वभाव है, उसे भरने का कोई उपाय नहीं, कोई मार्ग नहीं।
अभाव जो है वह हमारा स्वभाव है। भीतर जो बिल्कुल रिक्त है स्थान, वही हमारा स्वभाव है। इसलिए उसे हम कितने ही भरने की कोशिश करें, उसे भरा नहीं जा सकता। और इसीलिए तो बाद में सब कुछ भर कर भी पता चलता है कि हम खाली हैं। तब पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। जीवन व्यर्थ गया दौड़ में, संग्रह में, और संग्रह से कुछ भरा नहीं। संग्रह एक तरफ पड़ा रहता है, भीतर का खालीपन दूसरी तरफ खड़ा रहता है। दोनों का कहीं कोई मेल नहीं होता।
असल में क्यों भागने की वृत्ति होती है उस अभाव से? अभाव से इसलिए भागने की वृत्ति होती है कि उस अभाव में व्यक्ति नहीं टिक सकता है, उस अभाव में व्यक्ति तो मिट जाएगा, अहंकार मिट जाएगा, मैं मिट जाएगा। और मैं से बड़ा लगाव है, मैं को बचा लेना चाहते हैं, उसे मरने नहीं देना चाहते हैं। डर है कि कहीं मैं मिट न जाऊं। वह जो भीतर अभाव है उसमें मौत मालूम होती है। अगर वहां गए तो मिटे, वहां तो मैं नहीं बचेगा। मैं जो राजनीतिज्ञ हूं, मैं जो राजा हूं, मैं जो राष्ट्रपति हूं, मैं जो फलां हूं, ढिकां हूं, वह नहीं वहां बचेगा। वहां तो सन्नाटा है और खाली शून्य है। उस शून्य में मैं नहीं बचूंगा, तो मैं अपने को बचाने की कोशिश में लगा हूं। इस बचाने की कोशिश से सारी दौड़ पैदा होती है जीवन की। और दौड़ का अंतिम फल असफलता हो सकती है। कितना ही हम दौड़ें, जो हमारे भीतर है उससे दौड़ कर हम जाएंगे कहां? उससे भाग कर हम जाएंगे कहां? वह हमेशा हमारे साथ है। हम जहां भी जाएंगे वह हमारे साथ है।
एक आदमी चपरासी है और वह राष्ट्रपति हो जाए, भीतर जो खालीपन चपरासी होते वक्त था वही राष्ट्रपति के साथ भी रहेगा। कुर्सी बड़ी हो जाएगी, आकाश में बैठने लगेगा, लेकिन भीतर जो खालीपन था वह उसके साथ रहेगा। तब वह पाएगा कि राष्ट्रपति होने से भी कुछ नहीं होता, अब मुझे तो सारी दुनिया को, सारी दुनिया का प्रमुख हो जाना चाहिए। कोई राष्ट्रसंघ बने, उसका मैं प्रमुख हो जाऊं। सारे दुनिया के राज्य इकट्ठे हो जाएं, उसका मैं प्रमुख हो जाऊं। वह

वहां भी पहुंच कर पाएगा कि नहीं, यह कुछ नहीं होता, वह भीतर का खालीपन साथ चला जाता है।
कितना ही हम इकट्ठा करें, आखिर में पाया जाता है कि भीतर हम पहले खाली थे, अब भी हम खाली हैं। तब घबड़ाहट पैदा होती है, तब फ्रस्ट्रेशन पैदा होता है, चिंता पैदा होती है, अशांति पैदा होती है कि यह क्या हुआ? भराव तो आया नहीं, गड्ढा खाली था और गड्ढा खाली है। क्या हो?
जीवन का सारा दुख इसलिए है कि भरने के सब प्रयास अंततः असफल हो जाते हैं। किसी के प्रेम से अपने को भरते हैं, किसी की मैत्री से भरते हैं, किसी परिवार से अपने को भरते हैं, लेकिन आखिर में कोई भराव नहीं आता। और तब हम गुस्से में उन पर चिल्लाते हैं जिनसे हमने प्रेम किया और भराव नहीं आया। तब हम उन पर नाराज होते हैं कि तुमने जरूर कुछ गड़बड़ की है।
लेकिन गड़बड़ उनकी नहीं है, कसूर किसी और का नहीं है, भीतर कुछ ऐसा शून्य
है कि वह भरा ही नहीं जा सकता। इसलिए प्रेम जिसको करते हैं उस पर बाद में नाराज होते हैं, क्रोध करते हैं, और यह सोचते हैं कि उससे हमने प्रेम किया, उसने प्रेम नहीं दिया, इसलिए भीतर दुख हो रहा है। दुख इसलिए नहीं हो रहा। उसने प्रेम दिया हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, उसका प्रेम भीतर के खालीपन को जाकर भर नहीं सकता है। वह खालीपन वहीं का वहीं पड़ा रहेगा। तब हम नाराज होते हैं कि शायद मेरे पास कम रुपये हैं इसलिए नहीं भर पा रहा हूं, जिनके पास ज्यादा रुपये हैं उनका भर गया होगा। तो हम ज्यादा रुपये की दौड़ में लगते हैं। उतने रुपये मिल जाते हैं, फिर भी हम पाते हैं कि नहीं भरा। वह खाली है और खाली है। और दौड़ चलती रहती है और आदमी भीतर खाली बना रहता है। इस अनिवार्य सत्य को, इस तथ्य को बहुत स्पष्ट रूप से देखना जरूरी है
कि किसी भी भांति भीतर के खालीपन को न कभी भरा जा सका है और न भरा जा सकता है। हजारों लोग दौड़े हैं, हम कोई नये लोग नहीं हैं जो दौड़ रहे हैं, हमसे पहले करोड़ों-अरबों लोग दौड़े हैं और उन्होंने भरने की कोशिश की है और असफल हुए हैं। और अंतिम कथा असफलता की है। हम भी दौड़ रहे हैं। दौड़ वही है पुरानी। आदमी बदलते जाते हैं, दौड़ वही है। भरने की दौड़ है। भीतर एक भय है कि अगर मैंने अपने को किसी चीज से नहीं भरा तो मैं तो ना-कुछ हो जाऊंगा। लेकिन क्या कोई कभी अपने को भर सका है? क्या मनुष्य-जाति के अनुभव में
यह घटना कभी घटी है कि किसी ने अपने को भरा हो?
एक बार ऐसा हुआ... किसी पुराण में यह लिखा हुआ नहीं है, पता नहीं पुराणकार कैसे चूक गए इस घटना को लिखने से... लेकिन एक बार ऐसा हुआ कि सारी मनुष्य-जाति से भगवान बहुत परेशान हो गया उनकी दौड़ को देख कर, उसने सुबह-सुबह ही घोषणा की कि आज मैं तुम्हारे सब दुखों का अंत कर दूंगा। सांझ तक जिसका जो दुख हो वह अपनी एक-एक गठरियों में उसको बांध ले। जिसका जो दुख हो! कोई दुख छोड़ने का कारण नहीं, कोई चिंता, सब उसमें बांध ले और रात सूरज ढलने के बाद गांव के बाहर जाकर उस गठरी को फेंक आए। जो-जो दुख उसमें बांध लिए जाएंगे वे समाप्त हो जाएंगे। और लौटते वक्त सूरज उगने के पहले उसी गठरी में जो-जो सुख उसे चाहिए हों उनको बांध ले और वापस लौट आए। घर पहुंचते ही वे सुख उसको उपलब्ध हो जाएंगे। कल्पना से ही बांधना था, एक-एक दुख को रखते जाना था गठरी में, फिर गठरी बांध कर ले जाना था। बाहर झड़ा कर गठरी को फिर वैसे ही कल्पना से सुख रख कर वापस लौट आना था।
शाम से ही लोग लग गए। दिन में कई को तो विश्वास हुआ, किसी को अविश्वास हुआ, लेकिन सांझ होते-होते सबको विश्वास आ गया। मरते-मरते सभी आदमी धार्मिक हो जाते हैं, विश्वासी हो जाते हैं। जिंदगी में जब जरा सुबह-सुबह जोश था, किसी ने कहा कि अफवाह है, किसी ने कहा कि पता नहीं यह सच है कि झूठ है, किसी ने कहा कि हम तो ईश्वर को मानते नहीं। लेकिन सुख को तो सभी मानते हैं। इसलिए सांझ होते-होते सभी को लगा कि कहीं ऐसा न हो कि हम चूक जाएं। सांझ अंतिम घोषणा हुई कि यह पहला ही मौका है मनुष्य-जाति के लिए और अंतिम भी, जो चूका वह सदा को चूक जाएगा, इसलिए सारे लोग दुख बांध लें। आखिर-आखिर पूरी मनुष्य-जाति ने सांझ होते-होते सबने अपने दुख बांध लिए। कोई दुख छोड़ा नहीं। कौन छोड़ता!

सारे दुख बांध कर लोग निकले। गांव का गरीब से गरीब आदमी भी उतनी ही बड़ी गठरी लिए हुए था जितना गांव का राजा भी। तब लोग बड़े हैरान हुए! यह क्या मामला है? गरीब सोचता था, दरिद्र सोचता था, दुख मेरे पास हैं, पीड़ाएं मेरे पास हैं। लेकिन गांव का राजा भी जब अपने सिर पर गठरी लेकर निकला और सारे लोग चौंक कर देखने लगे--गठरियां करीब-करीब सभी की बराबर थीं। किसी की गठरी छोटी-बड़ी नहीं थी, तो वे बहुत हैरान हुए! उनको एक चौंकने की बात अनुभव हुई कि यह तो बड़ी चौंकाने वाली बात हो गई! हम झोपड़े में थे इसलिए दुख में थे। यह महल में था, यह आदमी कैसे दुख में था?
यह जान कर आप हैरान होंगे, अज्ञान में दुख की गठरी सबके ऊपर बराबर है।
और यह असंभव है कि किसी के ऊपर छोटी हो और किसी के ऊपर ज्यादा हो। यह असंभव है। सबके ऊपर गठरी बराबर है। लेकिन अपनी गठरी दिखाई पड़ती है, दूसरे की गठरी दिखाई नहीं पड़ती। इसलिए लगता है कि मैं ही बोझ से दबा जा रहा हूं और मरा जा रहा हूं, बाकी सब लोग कितनी मौज में और आनंद में हैं। और हर आदमी से पूछ लें, यही कहेगा कि मैं ही मरा जा रहा हूं, बाकी दुनिया कितने आनंद में है। मुझे न मालूम क्या हो गया है! मेरे भाग्य खराब, मेरे कर्म खराब, मेरे पिछले जन्म खराब। फिर वह एक्सप्लेनेशंस खोजता है। और कोई न कोई नासमझ मिल जाते हैं समझाने वाले कि तुम इसलिए दुखी हो कि तुमने पीछे कुछ गड़बड़ किया, उसके पीछे कुछ किया। यानी यह बताने वाले लोग मिल जाते हैं कि जरूर तुम्हारी गठरी बड़ी है और दूसरों की छोटी है। लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, किसी की गठरी छोटी और किसी की बड़ी नहीं, अज्ञान में सबके ऊपर बराबर गठरियां हैं। हो ही नहीं सकता कि छोटी-बड़ी हों। क्योंकि अज्ञान बराबर है, अज्ञान छोटा और बड़ा नहीं होता। अज्ञान होता है तो पूरा होता है, नहीं होता है तो पूरा नहीं होता। छोटा और बड़ा अज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होती कि एक आदमी कम अज्ञानी और दूसरा आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सब मूढ़ता है। अज्ञान ऐसा खंड-खंड नहीं होता कि छोटा अज्ञान, ज्यादा अज्ञान, ये बड़े अज्ञानी, वे और बड़े अज्ञानी, ऐसा नहीं है। अज्ञान में जो है वह एक से ही अज्ञान में है। अज्ञान के खंड और टुकड़े नहीं होते।
और न ज्ञान के खंड और टुकड़े होते हैं। तो कोई छोटे ज्ञानी और बड़े ज्ञानी भी दुनिया में नहीं होते, कि महावीर छोटे ज्ञानी कि बुद्ध बड़े ज्ञानी। ऐसे बेवकूफ भी हैं जो इसका हिसाब लगाते हैं। ऐसी किताबें मेरे सामने भेजी गईं जिनमें हिसाब लगाया गया है कि सबसे ऊपर कौन पहुंचा। फिर उसके बाद कौन, फिर उसके बाद कौन, फिर उसके बाद कौन। ज्ञान में भी खंड नहीं होते, अज्ञान में भी खंड नहीं होते। या तो अज्ञान, या ज्ञान। और जहां अज्ञान है वहां दुख का बोझ समान है। और जहां ज्ञान है वहां आनंद की स्फुरणा समान है। वहां भी कोई फर्क नहीं।

उस दिन सुबह लोग चौंके और घबड़ाए जब देखा कि गठरियां बराबर हैं। यह पहला ही मौका था कि दूसरों की गठरियां भी दिखाई पड़ीं। अपनी गठरी का तो हमेशा बोझ था। पूरा गांव, पूरी मनुष्य-जाति का ही मामला था। सब लोग जाने लगे। तभी एक गांव में यह अफवाह भी उड़ी कि एक बूढ़ा फकीर नहीं जा रहा है। वह एक ही आदमी था पूरी मनुष्य-जाति में। दिमाग खराब रहा होगा उसका। राजा भी जा रहा है, दरिद्र से दरिद्र जा रहा है, धनी से धनी जा रहा है, तो क्या पागल हो गया! वह गांव के बाहर रहता था। जाती हुई मनुष्य-जाति के हर आदमी ने उससे कहा, पागल हुए हो! अभी भी वक्त है, जितना भी थोड़ा-बहुत बांध सको बांधो और आ जाओ, बाद में पछताओगे। अगर झूठ भी हुई अफवाह तो हर्जा क्या है? गांव के बाहर टहलना हो जाएगा, थोड़ा स्वास्थ्य को लाभ भी हो जाएगा। इससे हर्जा क्या हो जाएगा? आ जाओ, कोई फिक्र न करो, जितना बांध सको! वक्त ज्यादा नहीं, क्योंकि हम तो दिन भर से बांध रहे थे, तुमको वक्त तो अब थोड़ा ही है, सूरज डूबने को है, लेकिन जो भी बांध सको बांध लो और आ जाओ।
वह फकीर बैठा रहा और हंसता रहा। लोगों ने समझा कि दिमाग खराब है। इतनी सारी दुनिया जो कर रही है, यह अकेला आदमी छोड़ रहा है। लोग चले गए। समझा सकते थे, समझाया। कोई नाराज भी हुआ, किसी ने गुस्से में भी कहा कि गलती कर रहे हो, बाद में पछताओगे, फिर मौका भी नहीं है दूसरा चुनाव का, चूके तो

चूके। लेकिन वह फकीर हंसता रहा और बैठा रहा और उसने कहा कि लौटते में भी मिलते जाना। लोगों ने कहा कि ठीक।
लोग गए। बारह बजे रात के सबने अपनी गठरियां खाली कर दीं। अब दूसरी दौड़ शुरू हुई। सब सुख बांधने लगे। आधी रात से सुबह तक का वक्त था, कौन कितना बांध ले, कौन कितना बांध ले! कोई चूक न जाए, क्योंकि चूक गया तो हमेशा के लिए, कोई भूल न जाए। तो लोग अपनी-अपनी धुन में हैं। किसी को किसी की फिक्र नहीं है, कौन क्या बांध रहा है। लोग अपना-अपना बांधने में हैं। फुर्सत किसको कि एक क्षण किसी से बात कर ले! क्योंकि उतनी देर में न मालूम कितना बांधने से चूक जाए। सुबह करीब आ रही है। समय था थोड़ा, सुख थे बहुत, बहुत मुश्किल पड़ गई, लेकिन किसी तरह बांधा। यह भी डर था कि कोई ज्यादा न बांध ले, कोई कम न बांध ले। यह भी घबड़ाहट थी बीच-बीच में आंख उठा कर देखते भी जाते थे कि दूसरों की गठरियों का क्या हाल है। लेकिन सब लगे हुए थे अपना-अपना बांधने में। सुबह सूरज होते-होते वे सब वापस लौटे, देख कर हैरान हो गए, किसी की गठरी छोटी नहीं, किसी की बड़ी नहीं! बहुत परेशान हुए कि क्या सभी लोगों ने बराबर-बराबर सुख बांध लिए?
असल में, जहां अज्ञान है वहां समान वासनाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। समान इच्छाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। समान आकांक्षाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। करीब-करीब गठरियां बराबर थीं। बड़े चौंके, बड़े हैरान हुए! सब दुखी भी हुए कि हमने इतनी कोशिश की, फिर भी ज्यादा न बांध पाए! ये सारे लोग उतने ही बांध लिए, मामला क्या है? किसी ने किसी से पूछा भी नहीं, फिर भी सबने वही बांध लिया। लौटे, फकीर बैठा हुआ था अपने द्वार पर। लौटे तो उसने कहा कि बड़े उदास दिखाई पड़ते हो, लोगों से कहा।
लोगों ने कहा कि दौड़-धूप में थक गए।
हम तो सोचते थे तुम इतनी खुशियां लेकर आ रहे हो तो बड़े खुश आओगे, उसने कहा।
कोई खास खुशी की बात नहीं, लोगों ने कहा, क्योंकि उतनी खुशियां पड़ोसी
भी ला रहे हैं। मामला सब खराब हो गया।
गठरी हमारी बड़ी होती तो कुछ खुशी भी हो सकती थी। यह तो मामला ही गड़बड़ है। सारे लोग उतना ही बांधे हुए चले आ रहे हैं। चित्त खिन्न हो गया है, कोई अर्थ न रहा बांधने का, दौड़ का। क्योंकि खुशी इसमें है कि पड़ोसी छोटा पड़ जाए, खुशी इसमें नहीं है कि खुशी मेरे भीतर हो। वे सब दुखी लौट रहे थे सुबह। एक तो रात भर की थकान, दिन भर का बांधना, फिर ढोना, फिर रात भर का बांधना, सुबह जब हुई तो सूरज... वे सब थके और उदास और रोते लौट रहे थे।
फकीर हंसने लगा, उसने कहा, इसीलिए तो मैंने कहा था कि लौटते में मुझसे मिलते जाना। और एकाध दिन फिर अगर समय मिले तो फिर मिलने आ जाना।
वे लोग अपने घरों में लौटे, कोई खास प्रसन्न न था। सुख आ गए थे--छोटे झोपड़ों की जगह बड़े मकान बन गए, घर आए तो देख कर चौकन्ने हो गए, जहां कंकड़-पत्थर पड़े थे वहां हीरे-जवाहरात थे, जहां छोटे झोपड़े थे वहां बड़े महल थे-- लेकिन सबके ही ऐसे हो गए थे, इसलिए कोई खास खुशी भी न थी। भीतर अपने घरों में चले गए, उसी तरह जिस तरह अपने झोपड़ों में जाते थे, कोई फर्क नहीं पड़ा था। क्योंकि सभी के एक साथ बड़े हो गए थे इसलिए बड़े होने का कोई अर्थ नहीं रहा था। अनुपात वही था। घर जाकर सोचा था अब तो कोई दुख न होगा, लेकिन बहुत हैरान हुए, जो-जो सुख आए थे वे अपने साथ नये दुख ले आए थे जिनकी उन्होंने कल्पना न की थी।
दुख अलग थोड़े ही होता है सुख से, कि आप दुख को छोड़ आएं और सुख को ले आएं। वह तो सुख की छाया है, वह तो उसके पीछे खड़ा है, वह तो उसी सिक्के का दूसरा पहलू है।
तो वे जो-जो सुख ले आए थे, उनके साथ-साथ उन्हीं सुखों की चिंताएं और उन्हीं सुखों के छायारूप दुख ले आए थे। रात वे उतने ही बेचैन सोए जितने हमेशा सोते थे। क्योंकि दुख अब नये थे, परेशानियां, चिंताएं अब नई थीं। तब तो वे बहुत हैरान हुए और उन्होंने सोचा, क्या वह फकीर ही आदमी ठीक किया जो न गया और न आया! आने-जाने के श्रम से भी बचा। जाते वक्त भी हंस रहा था, लौटते वक्त भी हंस रहा था।

दूसरे दिन बहुत से लोग उससे मिलने गए और कहा कि हम तो बड़े हैरान हो गए हैं।
उसने कहा, तुमने व्यर्थ ही मेहनत की। क्योंकि जो आदमी दुख छोड़ना चाहता है और सुख पाना चाहता है, वह सुख तो पा ही नहीं सकता और दुख को छोड़ भी नहीं सकता। इन दो में से जो एक को भी बचा लेना चाहता है, वह दूसरे को भी बचा लेगा। दूसरा जाएगा कहां? ये दोनों तोड़े नहीं जा सकते, संयुक्त हैं। और तुम्हें कोई खुशी मिली?
उन्होंने कहा, खुशी तो कुछ पता नहीं चलती। नये दुख आ गए हैं। नई पीड़ाएं, नई परेशानियां आ गई हैं। फिर उन्होंने पूछा, तुम भी हमें बताओ कि तुमने क्यों न बांधा?
उसने कहा, न तो मेरे पास चादर थी जिसमें मैं बांधता। पहली तो दिक्कत यही थी कि चादर नहीं थी जिसमें मैं बांधता। फिर चादर भी तुमसे मैं मांग ले सकता था, क्योंकि तुम सभी उस वक्त दानी हो जाते। क्योंकि भारी सुख आ रहे थे, तुम्हें कोई चिंता भी नहीं होती। एक चादर तो कोई भी मुझे दे देता। लेकिन उसमें क्या बांधता, यह भी दिक्कत थी। मेरे पास दुख भी नहीं थे बांधने को। फिर अगर खाली गठरी ही लेकर चला चलता तुम्हारे साथ, तो वहां से लौटते में क्या बांधता, मुझे कोई सुख की आकांक्षा नहीं है, मैं आनंद में प्रतिष्ठित हूं।
जो आदमी आनंद में है वह सुख नहीं चाहता है। जो आदमी दुख में है वही सुख चाहता है। और जो दुख में है वह कितना ही सुख चाहे, सुख मिल नहीं सकता, सुख के साथ दुख वापस लौट आते हैं। ऐसे दौड़ चलती है--दुखों को छोड़ने की, सुखों को लाने की, संग्रह की, गठरियां बांधने की। दौड़ते हैं, दौड़ते हैं, दौड़ते हैं और थकते हैं एक दिन और पाते हैं कि कुछ हुआ नहीं। किसलिए? वह भीतर है एक अभाव गहरा। दुख यह नहीं है कि बाहर अभाव है, दुख यह नहीं है कि बाहर चीजें कम हैं, दुख यह है कि भीतर संपूर्ण अभाव है।
इस तथ्य के प्रति जागना जरूरी है। जो मनुष्य इस तथ्य के प्रति जागता
है कि मैं भीतर की एंप्टीनेस को, खालीपन को भरने की कोशिश में लगा हूं, उसे यह सोच लेना चाहिए कि क्या खालीपन कभी भरा जा सकता है? और ऐसा खालीपन जो भीतर है और भरने की ऐसी चेष्टा जो बाहर है! बाहर इकट्ठा करूंगा तो भीतर कैसे जाएगा? क्या एक भी वस्तु आज तक मनुष्य के भीतर जा सकी है?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इंजेक्शन किसी के शरीर में लगा दिया और दवा भीतर डाल दी। वह भी भीतर नहीं है। जहां तक वस्तु जा सके, समझ लेना वहां तक भीतर नहीं आया, वहां तक सब बाहर है। क्योंकि वस्तु बाहर है, वह जहां तक जा सके शरीर के भीतर, समझ लेना वहां तक बाहर है अभी।
मनुष्य के भीतर कुछ भी नहीं जा सका है। भीतर का अर्थ ही यह होता है जहां कुछ भी न जा सके। वह एनटाइटी जो आत्यंतिक रूप से आंतरिक है, उसमें कुछ भी बाहर से नहीं जा सकता। वही आत्मा है। उसको ही भरने की बाहर से कोशिश असफल हो जाती है।
फिर क्या हो? फिर क्या रास्ता है? ऊब जाते हैं लोग, घबड़ा जाते हैं लोग, फिर धन छोड़ते हैं, दुकान छोड़ते हैं, मकान छोड़ते हैं, साधु हो जाते हैं, संन्यासी हो जाते हैं। घबड़ा गए जीवन से, संसार से, इसकी निंदा करने लगे, कंडेमनेशन करने लगे कि यह गलत है, व्यर्थ है, इसमें दुख ही दुख है। तो हम तो अब मोक्ष की खोज में जाते हैं, ईश्वर की खोज में जाते हैं। वे फिर ईश्वर से और मोक्ष से अपने को भरने की कोशिश में लग जाते हैं। भराव का काम जारी रहता है। पहले वे धन से भरते थे, अब वे मोक्ष से भरते हैं--कि मोक्ष कैसे मिल जाए? ईश्वर कैसे मिल जाए? सत्य कैसे मिल जाए? मुक्त कैसे हो जाऊं? बंधन कैसे टूट जाएं? दुख से कैसे अलग हो जाऊं? लेकिन बुनियादी बात कायम है--वे जैसे हैं भीतर, उसके साथ वैसे ही होने को अभी भी राजी नहीं हैं। जो भीतर वह रिक्तता है, जो एंप्टीनेस है, उसके साथ वहीं होने को वे अभी भी राजी नहीं हैं। अभी भी वे मोक्ष जाना चाहते हैं, अभी भी वे स्वर्ग जाना चाहते हैं, अभी भी वे देवता होना चाहते हैं या कुछ और होना चाहते हैं। अभी भी वे कुछ होना चाहते हैं। अभी बिकमिंग जारी है। अभी होने की दौड़ जारी है। पहले धन

चाहते थे, अब मोक्ष चाहते हैं। धन की चाह मोक्ष बन गई, लेकिन चाह मौजूद है, डिजायर मौजूद है।
संसारी और संन्यासी, दोनों के भीतर चाह मौजूद है। और जहां चाह है वहां संसार है, जहां चाह है वहां संसार है। वे भी दौड़ते हैं, वे भी परेशान होते हैं, उनको भी कुछ मिलता नहीं, उनको भी कुछ मिल सकता नहीं। फर्क कोई भी नहीं पड़ा है। आप इधर धन को खोजते थे, वे उधर दूर के धन को खोजने लगे हैं। लेकिन भीतर के धन से न तो आप राजी थे, न वे राजी हैं।
मोक्ष खोजा नहीं जा सकता। वह आदमी जो अपने होने से, वह जो है, भीतर वह
जो अभाव है, उस अभाव के साथ सहमत हो जाता है, उस अभाव में जीने को राजी हो जाता है, उस अभाव को ही होने को राजी हो जाता है, वह आदमी उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो भी उससे दौड़ रहा है--चाहे वह दौड़ कोई भी हो, पूरब में हो कि पश्चिम में हो, उससे फर्क नहीं पड़ता--वह अपने से भाग रहा है। तो मैं आज की सुबह आपसे अंतिम रूप से यह कहना चाहता हूं कि भीतर जो अभाव है उससे भागें नहीं, भागने वाला कहीं भी नहीं पहुंचता है। उस अभाव में प्रवेश करें। भागने के लिए बाहर जाना पड़ता है अभाव से, प्रवेश के लिए भीतर जाना पड़ेगा अभाव में। उस नथिंगनेस में प्रवेश करें जो भीतर है। भागें नहीं, उसमें प्रवेश करें, रुकें, ठहरें और उसमें जाएं। और अपने नोबडी होने से जो सहमत हो जाता है, ना-कुछ होने से, वह आदमी धार्मिक है। उसके अतिरिक्त कोई आदमी धार्मिक नहीं है। जो अपने ना-कुछ होने से सहमत हो जाता है... ।
एक फकीर हुआ चीन में, लाओत्से। अनेक-अनेक लोगों ने उस समय के राजा से कहा कि लाओत्से से मिलें। बहुत-बहुत एक्सट्राआर्डिनरी, बहुत अदभुत, बहुत असाधारण व्यक्ति है। तो राजा भी प्रभावित हो गया होगा। जब अनेक-अनेक लोगों ने कहा तो कौन प्रभावित नहीं हो जाता है? जब बहुत-बहुत लोगों ने कहा तो राजा भी प्रभावित हो गया, वह भी गया मिलने के लिए। मिलने के लिए गया तो हैरान हुआ! लाओत्से उस समय गड्ढा खोद रहा था अपने झोपड़े के बाहर। साधारण आदमी था, बिल्कुल साधारण, कोई असाधारण बात न थी।
राजा ने अपने मित्रों से कहा, यह आदमी तो बिल्कुल ही साधारण मालूम होता है। इसमें तो कुछ असाधारण नहीं दिखाई पड़ता। न तो इसके सिर के आसपास प्रकाश का गोल घेरा है, जैसा तीर्थंकरों, अवतारों के आसपास होता है।
कभी हुआ नहीं, लेकिन न हो तो उनको हम सोचेंगे कि छोटा आदमी होगा।
उसने कहा, यह तो कोई इसके आसपास कोई प्रकाश का वृत्त नहीं दिखाई पड़ता, मंडल नहीं दिखाई पड़ता। सीधा-सादा सा किसान दिखता है। न इसकी वेशभूषा में कुछ विशेषता है, न इसकी देह में, शरीर में कोई विशेषता है। यह बात क्या, तुम कहां ले आए मुझे? यह बातचीत भी बड़ी साधारण करता है। कह रहा है कि अब मौसम अच्छा आ गया, अब बीज बोने का वक्त हो गया। यह क्या बातें कर रहा है! कोई अध्यात्म, कोई आत्मा, कोई ब्रह्म!
उसके मित्रों ने कहा, इस आदमी की यही खूबी है कि यह बिल्कुल साधारण है। और ऐसा आदमी होता ही नहीं जमीन पर--बिल्कुल साधारण। इसकी यही एक्सट्राआर्डिनरीनेस है। इसकी यही असाधारणता है कि यह बिल्कुल साधारण आदमी है। साधारण से साधारण आदमी भी साधारण नहीं होता। यह बिल्कुल ही साधारण है, इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है।
उस राजा ने लाओत्से से पूछा कि तुम साधारण कैसे हुए?
उसने कहा, साधारण तो कोई हो नहीं सकता, क्योंकि होने की कोशिश करेगा
तो असाधारण हो जाएगा। यह तो बात ही गलत पूछते हो। अगर कोई साधारण होना चाहेगा तो असाधारण हो जाएगा। अगर कोई सिंपल होना चाहेगा तो कठिन हो जाएगा। सरल होना चाहेगा तो कठिन हो जाएगा, कठोर हो जाएगा। होने की चेष्टा ही तो गड़बड़ है। उसने कहा, मैंने तो सब होने की चेष्टा छोड़ दी। मैं समझा कि व्यर्थ है, जो हूं वही ठीक है। मिट्टी तो मिट्टी, पत्थर तो पत्थर, पत्ता तो पत्ता, जो हूं सो ठीक है। मैंने तो समझा कि दौड़ कर कोई कहीं पहुंचा नहीं, सो दौड़ छूट गई। साधारण मैं हुआ नहीं; असाधारण होने की व्यर्थता मुझे दिखाई पड़ी। बस बात खत्म हो गई।
कैसे यह घटना घटी?

तो उसने कहा, मैं एक जंगल गया था, कुछ मित्र भी मेरे साथ थे। वहां जाकर मैंने देखा कि अनेक-अनेक दरख्तों को बढ़ई काटते हैं। मजदूर लगे हैं, दरख्त काटे जा रहे हैं। बड़े सीधे दरख्त थे आकाश को छूने वाले, बड़े मोटे दरख्त थे बिल्कुल सीधे, सुंदर, वे सब काटे जा रहे थे। एक दरख्त बहुत बड़ा था, इतना बड़ा कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां ठहर सकती थीं, उसकी बड़ी घनी छाया थी। तो मैंने अपने मित्रों से कहा कि इस दरख्त को किसी ने नहीं काटा, यह क्या बात हो गई? सब दरख्त टूटे हैं, कटे हैं, काटे जा रहे हैं, मजदूर लगे हैं। इस दरख्त को कोई क्यों नहीं काटता?
तो मैंने उन बढ़इयों से जाकर पूछा कि इस दरख्त को क्यों नहीं काटते हो? उन्होंने कहा, यह दरख्त बिल्कुल साधारण है। यह किसी मतलब का ही नहीं,
यह बिल्कुल यूजलेस, वर्थलेस है। इसके पत्ते तक जानवर नहीं खाते, आदमी की तो बात दूर। इसकी लकड़ियां सब ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी हैं कि उनसे कोई फर्नीचर नहीं बनता, कोई द्वार-दरवाजे नहीं बनते। यह ऐसा गड़बड़ दरख्त है कि इसको जलाओ तो इतना धुआं फेंकता है कि आग निकलती नहीं, धुआं ही धुआं निकलता है। यह बिल्कुल ही बेकार है, यह बिल्कुल ही साधारण है, इसलिए इसको कोई नहीं काटता, सो यह बड़ा से बड़ा होता जा रहा है। और ये दरख्त जो सीधे हैं और जिन्होंने आकाश छूने की कोशिश की, इनको काटते हैं। इनसे खंभे बनते हैं, इनसे और फर्नीचर बनता है।
तो लाओत्से ने कहा, बस, उसी दिन मैं समझ गया कि अगर बढ़ना है तो साधारण
हो जाओ, नहीं तो काटे जाओगे। अगर कुछ होना है तो ना-कुछ हो जाओ, वर्थलेस, जिसका कोई मूल्य नहीं, कोई अर्थ नहीं, तुम्हें लोग भूल जाएंगे और तुम बढ़ोगे और तुम्हारे भीतर कुछ होगा विस्तार। और तुम्हारे नीचे हजारों बैलगाड़ियां ठहर सकेंगी और छाया ले सकेंगी।
उस व्यर्थ झाड़ के नीचे, जिसका कोई उपयोग नहीं, हजारों को छाया मिलने लगी। ये महावीर और बुद्ध व्यर्थ झाड़ हैं, जिनके नीचे हजारों को छाया मिली है। ये कोई एक्सट्राआर्डिनरी लोग नहीं हैं। ये कोई महान लोग नहीं हैं। अति साधारण जो हो गए, जिन्होंने सब महान होने की... क्योंकि महान होने की कोशिश मूर्खतापूर्ण है। बड़े होने की चेष्टा में छोटा आदमी बैठा हुआ है भीतर। जो छोटा है वही बड़ा होना चाहता है। ये राजी हो गए जो हैं उस बात से, छोड़ दी सारी फिक्र। जो हैं, सहमत हो गए। महावीर नंगे हैं तो नंगे से ही सहमत हो गए। काहे को कपड़ा ओढ़ें? काहे को ढांकें? सहमत हो गए इससे कि ठीक है, नंगा हूं तो नंगा ही सही। किससे छिपाऊंगा? अपने से तो छिपा नहीं सकता। कितने ही कपड़े पहनूं, मुझे तो पता ही है कि नंगा हूं। तो नंगे होने से ही राजी हो गए। जो है भीतर उससे राजी हो गए, भीतर के अभाव को स्वीकार कर लिया, तो एंबीशन चली गई। एंबीशन पैदा होती है, महत्वाकांक्षा पैदा होती है अभाव को स्वीकार न करने से, अस्वीकार करने से। फिर हम कुछ होना चाहते हैं, कुछ बनना चाहते हैं। यह जो कुछ बनने, होने की दौड़ है, वह इस बात की सूचना है कि भीतर हम अभाव से राजी नहीं होना चाहते जो हम हैं ना-कुछ।
तो लाओत्से ने कहा कि उस दिन तो मुझे सब राज खुल गया, तब से हम उसी दरख्त जैसे हो रहे। फिर हमने सब दौड़ छोड़ दी। न हमें मोक्ष पाना है, न हमको परमात्मा पाना है, न हमको कुछ और पाना है। हम तो हो गए अति साधारण। भूख लगती है, खाना खा लेते हैं; प्यास लगती है, पानी पी लेते हैं; नींद आ जाती है, सो जाते हैं; नींद खुल जाती है, उठ जाते हैं। यही हमारी जिंदगी है। अब हमें कुछ और पाना नहीं, कुछ करना नहीं। कोई हमारी भीतर चाह नहीं कि हम यह हो जाएं और वह हो जाएं, कोई बिकमिंग नहीं। और लाओत्से ने कहा, जिस दिन से हमने सब दौड़ छोड़ दी उस दिन से हम हैरान हो गए, जिसको पाने के लिए दौड़ते थे वह मिल गया वहीं जहां हम थे! दौड़ते थे इसलिए खोते थे, रुक गए इसलिए पा लिया है।
जो दौड़ता है वह खो देता है, जो रुक जाता है वह पा लेता है। तो अगर सच में ही जीवन में कुछ होना है तो एक ही द्वार हैः ना-कुछ हो जाएं। यह कुछ होने का ख्याल और पागलपन छोड़ दें, यह मैडनेस है। अभी जमीन पर पागलखानों में आप जाएं... और मुझे याद आ गई पागलखानों की, एक मित्र ने मुझे कल एक पत्र लाकर दिया और कहा कि उन्होंने एक सपना देखा कि मैं एक पागलखाने के बाहर

बैठा हुआ कुछ मित्रों को समझा रहा हूं। मैं उनके सपने में मौजूद हुआ और एक पागलखाने के बाहर बैठा हुआ हूं, कुछ को समझा रहा हूं। फिर वह पागलखाने का पहरेदार कुछ प्रभावित हो गया और उसने कहा कि बेहतर हो महाराज, भीतर ही आ जाइए। तो मैं उन सारे मित्रों को जिनको समझा रहा था लेकर भीतर चला गया। और वहां पागल भी इकट्ठे हो गए और उनको समझाने लगा। इसलिए मुझे याद आ गया पागलखाना। उनको सपना बड़ा अच्छा आया। सच तो यही है, पागलखाने के बाहर ही समझा रहे हैं, बल्कि ठीक ही समझिए कि भीतर ही समझा रहे हैं।
जहां मन जो है बहुत महत्वाकांक्षा से भरा है वहां आदमी पागल है, अस्वस्थ है। कुछ होने चाहने की जो दौड़ है वह अस्वस्थ है, ज्वरग्रस्त है। वही आदमी स्वस्थ है जो कुछ होना नहीं चाहता और जिसने अपने भीतर के ना-कुछ होने को स्वीकार कर लिया। यही ध्यान है, यही समाधि है। इस अभाव को, इस नथिंगनेस को भीतर राजी हो जाना कि ठीक है, मैं नहीं कुछ हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं, इस बोध को सहजता से उपलब्ध हो जाना, सब कुछ पा लेना है।
लेकिन इसे कैसे? क्या कोशिश करिएगा, प्रयास करिएगा, एफर्ट करिएगा कि मैं ना-कुछ हो जाऊं? फिर नहीं होगा मामला, फिर तो गड़बड़ हो गया, फिर तो आप कुछ होने लगे। नहीं, समझिए, सोचिए, देखिए कि दौड़ से कहीं कोई पहुंचता है? मैं कहीं पहुंचा? इतने दिन तो हम सब दौड़ लिए हैं, कहीं पहुंचे? इतना तो हमने संग्रह किया, कुछ भरा? अगर थोड़ा-बहुत भी भर गया हो तो विश्वास बढ़ेगा कि और ज्यादा संग्रह करेंगे तो और भर जाएगा। अगर बिल्कुल भी न भरा हो इतने संग्रह से, तब तो समझ जाइए कि जब इतने संग्रह से बिल्कुल भी नहीं भरा, रत्ती भर भी, तो फिर और कितने ही संग्रह से भी कैसे भरेगा? आखिर वह तो इसी की गणना आगे होती चली जाएगी।
अगर एक तराजू पर हम कोई वजन रखें और तराजू जरा भी हिल जाए, तो भी यह विश्वास पड़ता है कि और वजन रखेंगे तो एकदम तराजू जमीन से लग जाएगा। लेकिन हम वजन कितना ही रखें और तराजू बिल्कुल न हिले और वैसा ही बना रहे, तब तो ख्याल आना चाहिए कि शायद तराजू हिलने वाला नहीं है। तो हमने जब एक सेर रखा और नहीं हिला, तो दो सेर रखा तो नहीं हिला, तो हजार मन रखेंगे तो भी कैसे हिलेगा। क्योंकि हजार मन दो सेर की ही तो बढ़ी हुई संख्या है।
एंड्रू कारनेगी जब मरा तो एक अरब डालर छोड़ गया। लेकिन वह भी अतृप्त मरा, क्योंकि उसकी योजना दस की थी। वह भी हो सकता है, वह दस भी छोड़ सकता है। उसके बच्चों ने दस कर ही लिए होंगे। लेकिन वे भी अतृप्त मरेंगे, उनकी योजना सौ की हो गई होगी।
योजना इसलिए आगे बढ़ जाती है कि तराजू हिलता नहीं, हम जितना रख देते हैं, व्यर्थ हो जाता है। हम सोचते हैं, और ज्यादा रखें। लेकिन थोड़ी समझ हो तो यह दिखाई पड़ना चाहिए--तराजू जब इतना रखने से हिला भी नहीं, तो तराजू कितना भी रखने से हिलने वाला नहीं है।
यह बोध--भीतर के अभाव का बोध और बाहर के भरने की कोशिश की व्यर्थता का बोध जिस मनुष्य को जितना स्पष्ट होता चला जाता है, उतना ही उस मनुष्य के जीवन में अपने आप दौड़ क्षीण होती चली जाती है। तब वह जीता है, दौड़ता नहीं। तब वह होता है, होने की कोशिश नहीं करता। तब वह न धन चाहता है, न धर्म चाहता है। न वह संसार जीतना चाहता है, न मोक्ष जीतना चाहता है। वह कुछ पाने की उसकी इच्छा, धीरे-धीरे जैसे-जैसे वह समझता है कि पाना और इच्छा मूढ़तापूर्ण है, अपने आप यह अंडरस्टैंडिंग, यह समझ, यह अवेयरनेस, क्षीण करती जाती है। एक दिन वह पाता है कि वह खड़ा रह गया है और वहां कोई दौड़ नहीं, कोई चाह नहीं, वहां कोई होने की इच्छा नहीं, वहां भीतर के अभाव से वह सहमत हो गया।
एक बार ऐसा हुआ, एक आदमी रात अंधेरे में पहाड़ से निकलता था, पैर फिसल गया और गिर पड़ा। अंधेरी रात थी, तो उसने एक झाड़ी को जोर से पकड़ लिया। नीचे अंधेरा था, खड्ड था बड़ा, डर था कि हाथ छूटे कि मरा! तो पकड़े रहा, पकड़े रहा... लेकिन सर्द रात, अंधेरी रात, नीचे भयंकर खड्ड, अतल, कहां गिरेगा, हड्डी- पसली सब टूट जाएंगी, सब समाप्त हो जाएगा, मिट जाएगा... तो पकड़े है। लेकिन कितनी देर पकड़ेगा! हाथ जकड़ने लगे सर्दी के कारण, जड़ होने लगे। तब उसे लगने लगा कि आज तो सुबह होनी कठिन है, आज तो मरना ही पड़ेगा! लेकिन फिर भी कोशिश तो करूं, सुबह तो हो जाए किसी तरह। तो शायद कोई निकले, शायद कोई आ जाए, और

कोई बचने का उपाय हो जाए। सुबह हो जाए तो कम से कम मैं भी देख सकूं कि मामला क्या है? कहां हूं? कैसे उलझा हूं? इस अंधकार में न कोई दिखाई पड़ता है। चिल्लाया बहुत, लेकिन वहां कौन सुनता था! खुद की ही आवाजें पहाड़ी से गूंजती थीं और लौट आती थीं। वहां कोई था ही नहीं जो सुनता।
और करीब-करीब हम सबकी आवाजें पहाड़ी से गूंजती हैं और लौट आती हैं। कोई सुनने वाला नहीं किसी की। कोई है ही नहीं। अंधेरा है चारों तरफ, अटके हैं, पकड़े हैं, कहीं मर न जाएं।
लेकिन आधी रात होते-होते असंभव हो गया, हाथ जड़ हो गए, सरकने लगे, डाल छूटने लगी। ताकत इतनी देर जितने जोर से लगाई थी उतनी जल्दी खत्म हो गई। अब वह घबड़ाया कि मरने के सिवाय कोई उपाय न रहा। अब राम, कृष्ण, बुद्ध, जिसको मानता होगा उसका जप करने लगा। मुझे पता नहीं किसको मानता था। जरूर किसी को मानता ही रहा होगा। क्योंकि ऐसे आदमी कहां हैं जो किसी को न मानते हों! जो किसी को नहीं मानता वही स्वयं को जान पाता है। तो किसी न किसी को मानता होगा। तो जपने लगा होगा मंत्र-तंत्र, क्योंकि दुख में ये सब याद आते हैं। अब मौत करीब थी तो वह सब याद करने लगा कि हे बचाओ! हे चतुर्भुज भगवान! या कुछ और--कितने मुंह वाले, हाथ वाले--अब मुझे बचाओ! अब मुझे सहारा दो! चिल्लाने लगा होगा।
लेकिन अंधकार घुप्प, वहां कौन सुनने को है। आखिर हाथ उसके छूट गए! छूटते से समझा कि गया! लेकिन हैरान हो गया, हाथ छूटते से पाया कि वह जमीन पर खड़ा है! वहां कोई गड्ढा था ही नहीं, वह अंधेरे की वजह से गड्ढा मालूम हो रहा था। अंधेरे की वजह से! वहां कोई गड्ढा ही न था, वहां तो समतल जमीन थी। वह व्यर्थ ही इतना कष्ट उठाया। वह किसी भी क्षण छोड़ देता तो जमीन पर खड़ा हो जाता। और व्यर्थ उसने चतुर्भुज भगवान को भी कष्ट दिया। कहीं सो रहे होंगे, उनको भी दिक्कत हुई होगी, उनको भी चिल्लाया, उनको भी परेशान किया। नीचे जमीन थी, वहां कोई गड्ढ था ही नहीं। अंधकार के कारण गड्ढ दिखाई पड़ता था। अंधेरे के कारण भय था, भय के कारण गड्ढा था। गड्ढे में मरने का डर था इसलिए अटका था, जो भी हाथ में था उसी से अटका था। लेकिन ताकत क्षीण होगी एक क्षण और गिरना पड़ेगा। मौत तो हरेक को गड्ढे में गिरा देगी। कितना ही पकड़े रहें! और जो पकड़े रहेगा वह व्यर्थ दुख उठाता रहेगा। लेकिन जब मौत गड्ढे में गिरा ही देगी, तो जो जानते हैं वे खुद छोड़ देते हैं और गिर लेते हैं। और गिरते से ही पाते हैं कि वहां भूमि है।
जो मनुष्य अपने भीतर के अभाव में छलांग लेने का साहस करता है, सोच लेता है कि अगर मिटना ही है तो मृत्यु तो मिटा ही देगी, तो ठीक है अपने भीतर ही मिट जाएं, यह भी एक सौभाग्य होगा अपने हाथ से मिट जाना। मौत तो आती ही है, लेकिन वह हमारे ऊपर आती है, हमारा संकल्प नहीं होता वह, वह हमारा कृत्य नहीं होता। वह हमारी इच्छा नहीं होती, उसमें हम नहीं होते, वह हम पर आती है बाढ़ की तरह और हमको डुबाती और बहा ले जाती है। तो जब मौत ले ही जाने वाली है, तो जो जानते हैं वे इसके पहले कि मौत ले जाए, खुद अपने भीतर मौत को वरण करने को तैयार हो जाते हैं। छलांग लेते हैं भीतर के गड्ढ में। और जिन्होंने छलांग ली वे हैरान हो गए--वहां अभाव नहीं है, वहां आत्मा है। वह अज्ञान की वजह से, भय की वजह से अभाव मालूम होता है, खड्ड मालूम होता है। जिस भगवान को चिल्ला रहे थे बचाने के लिए, वहीं नीचे मौजूद था। अगर छोड़ दें तो वह भूमि है।
परमात्मा तो भूमि है। जब हम सब छोड़ देते हैं तो वही शेष रह जाता है। जो
सब छोड़ देने पर शेष रह जाता है वही आत्मा है, वही परमात्मा है। उसे चिल्लाने और पुकारने की जरूरत नहीं है। ये बचकानी बातों की कोई जरूरत नहीं है। और ऐसा कोई सुनने वाला कहीं बैठा हुआ नहीं है। अभाव में जीने को जो राजी हो जाता है वह आत्मा को उपलब्ध होता है, वह परमात्मा को उपलब्ध होता है। दो ही दिशाएं हैं--बाहर भरो या भीतर खाली हो जाओ।
तो आज सुबह की चर्चा में मैं यह कहना चाहता हूंः इस शून्य को, इस अभाव
के बोध को उपलब्ध हों। समझें, देखें, पहचानें, सोचें, विवेक का उपयोग करें। तो दिखाई पड़ेगाः अभाव से भागा नहीं जा सकता। तो फिर क्या विकल्प है? विकल्प है कि अभाव से सहमत हो जाऊं, ना-कुछ होने को राजी हो जाऊं। फिर, जो

ना-कुछ होने को कभी भी राजी हुआ है, वह सब कुछ को पा लेता है। यह शून्यता है, यह सरलता है, यह संन्यास है, यह है त्याग। भरने की कोशिश छोड़ देना त्याग है। यह है संन्यास, दौड़ने से रुक जाना संन्यास है। यह है धर्म, मंदिर में जाना नहीं है, अभाव में जाना।
और ये तीन सूत्र मैंने तीन दिन में आपसे कहे--अज्ञान का बोध, रहस्य का बोध, अभाव का बोध। अगर इन तीन सूत्रों पर किसी भी जीवन में कोई भी दृष्टि आ जाए तो क्रांति सुनिश्चित है। और उस क्रांति के बाद बिल्कुल एक नया मनुष्य उसके भीतर से जन्म ले लेगा, एक बिल्कुल दूसरा मनुष्य, एक बिल्कुल ही दूसरा मनुष्य--अति साधारण, अति सरल। लेकिन अति साधारण और अति सरल से असाधारण और न कोई है और न हो सकता है। और वैसे व्यक्तित्व के विरोध में कोई नहीं रह जाएगा। उसे काटने की, तोड़ने की कोई जरूरत और कारण नहीं रह जाता। वैसे व्यक्ति की छाया में अनेकों को छाया मिलेगी और आश्रय मिल सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर बहुत बड़ी संभावना लिए है--बहुत बड़ी संभावना, बहुत बड़ा वृक्ष जो विकसित हो सकता है। लेकिन महत्वाकांक्षा उसे विकसित नहीं होने देती, दौड़ उसे विकसित नहीं होने देती। जो सब भांति रुकता है, उस विकास को उपलब्ध होता है।
अंतिम रूप से यह कहता हूंः अगर जीवन में कुछ पाना है तो रुक जाएं, अगर कहीं पहुंचना है तो ठहर जाएं। ठहर जाना, रुक जाना, थिर हो जाना, भीतर सारी चीजों का नया उदघाटन, नया आविर्भाव शुरू हो जाता है। धार्मिक चेतना ऐसे ही पैदा होती है। धार्मिक चेतना का ऐसे ही जन्म होता है।
हमारे टीका लगाने वाले और जनेऊ पहनने वाले धार्मिक से मेरा मतलब नहीं है--कि एक आदमी जनेऊ पहने हुए है तो धार्मिक है, एक आदमी टीका लगाए हुए है तो धार्मिक है, एक आदमी चोटी रखे हुए है तो धार्मिक है। कैसी चाइल्डिश, बचकानी बातें हैं! इनसे कहीं कोई धार्मिक होता है? नहीं, धार्मिक होना बड़ी क्रांति है, बहुत बड़ी रेवोल्यूशन है, बहुत बड़ा आमूल परिवर्तन है व्यक्तित्व का। वह तो सब भांति बाहर से मुक्त होकर भीतर प्रवेश है।
अगर यह हो सके... यह हो सकता है। अगर यह एक व्यक्ति के जीवन में भी कभी हुआ है तो हरेक के जीवन में हो सकता है। तो मैं यह आशा करता हूं कि यह हो सकता है, यह होगा। उस दिशा में थोड़ी आंखें खोलनी जरूरी हैं।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। आज का ध्यान कल से और भी सरल हो जाना चाहिए।

समाधि कमल
चौदहवां प्रवचन

एकांत का मूल्य

मैं समझता हूं कि कोई और प्रश्न नहीं हैं। जो प्रश्न पूछे हैं, कुछ प्रश्न दोपहर भी किसी ने पूछे थे और एक-दो प्रश्न कल के भी बिना उत्तर के रह गए हैं।
प्रश्नों के संबंध में सबसे पहली बात तो यह जाननी जरूरी है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसके संबंध में किसी दूसरे से कोई भी उत्तर नहीं पाए जा सकते हैं। और जो भी उत्तर दूसरे से पाए जा सकते हैं वे भीतर जाकर न कोई समाधान बनते हैं और न मनुष्य की उलझन को हल कर पाते हैं। ठीक-ठीक जीवन के उत्तर तो खुद ही खोजने होते हैं। श्रम से, साधना से खुद ही उनके उत्तर पाने पड़ते हैं।
लेकिन फिर भी सोचने का ढंग, विचार करने का ढंग पूछने से उपलब्ध हो सकता है। मैं जिन प्रश्नों के उत्तर आपको दूं, मेरे उत्तर मान लेने आवश्यक नहीं हैं, ज्यादा अर्थ की बात यह होगी कि आप भी उन प्रश्नों पर नई-नई दृष्टियों से विचार करना शुरू करें। प्रश्न तो एक मौका है, उस मौके से मनुष्य विचार करने में पड़ जाता है। और अगर भीतर विचार पैदा हो जाए तो जीवन में ऐसी कोई समस्या, उलझन नहीं है, जो हल न की जा सके। किसी एक प्रश्न का उत्तर पा लेना महत्वपूर्ण नहीं है, वरन स्वयं के भीतर विचार की शक्ति का जग जाना महत्वपूर्ण है। तब फिर किन्हीं ही जीवन की समस्याओं के उत्तर व्यक्ति खुद ही पाने में समर्थ हो जाता है।
सबसे ज्यादा जरूरी बात यही है कि हम सोचना शुरू करें। मैंने जो कहा कि
आप प्रश्न पूछें वह इसीलिए। जो भी व्यक्ति विचार करेगा उसके मन में बहुत से प्रश्न उठने शुरू होंगे। जीवन बड़ी समस्या है और रोज सुबह से शाम तक हजारों प्रश्न उठते हैं। यदि हम उन प्रश्नों को वैसा ही मन में पड़ा रहने दें तो धीरे-धीरे मन उलझ जाता है और धीरे-धीरे मन की क्षमता रास्ते खोजने की कम हो जाती है। इसलिए बहुत उचित है कि पूछें--मित्रों से पूछें, गुरुजनों से पूछें, परिवार के वृद्धजनों से पूछें--और जहां से भी सीखने को मिल सके वहां से सीखें। सीखने के लिए हमेशा मन को खुला हुआ रखना चाहिए। चाहे कोई आदमी बूढ़ा भी हो जाए तो भी। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक जो आदमी सीखने को हमेशा तैयार होता है उसके जीवन में ज्ञान की संपदा इकट्ठी होती है। लेकिन बहुत लोग बहुत जल्दी ही सीखना बंद कर देते हैं। बहुत लोग बहुत जल्दी ही अपने मन के द्वार बंद कर लेते हैं, फिर कुछ भी नहीं सीखते हैं। ऐसे लोग समय के पहले ही मुर्दा हो जाते हैं। और जीवन में जितनी संपदा ज्ञान की, विचार की वे पा सकते थे, उससे भी वंचित रह जाते हैं।
यह भी जरूरी नहीं है कि अपने बड़ों से ही सीखो, छोटों से भी सीखा जा सकता है। सच तो यह है कि जीवन की कोई भी घटना शिक्षा हो सकती है। एक वृक्ष पर से सूखा गिरता हुआ पत्ता भी शिक्षा हो सकता है। छोटी-छोटी बातें भी शिक्षा हो सकती हैं। लेकिन आंख खुली हुई हो तो पूरा जीवन ही शिक्षालय हो जाता है। और आंख बंद हो, सीखने की प्रवृत्ति न हो, पूछने की वृत्ति न हो, इंक्वायरी न हो, खोज न हो, तो फिर जीवन के चारों तरफ कितनी ही बड़ी बातें घटती रहें, उनसे हम कुछ भी नहीं सीख पाते हैं। हमारा मन बंद ही रहा आता है। और जो मनुष्य जितना कम सीखता है, उस मनुष्य की अनुभूति उतनी ही छिछली, उथली और ऊपरी हो जाती है, गहरी नहीं हो पाती। जैसे जिस वृक्ष को ऊपर उठना हो उस वृक्ष को उतने ही गहरे तक अपनी जड़ें जमीन में फेंकनी पड़ती हैं। अगर वह जमीन में अपनी गहरी जड़ें न फेंके तो फिर ऊपर नहीं उठ सकता। जिस व्यक्ति को जीवन में जितना ऊपर उठना हो उतना ही उसे खोज की, चिंतन की, विचार की गहरी जड़ें फेंकनी जरूरी होती हैं। जो जितनी विचार की गहरी जड़ों को फेंकता है अपने जीवन में, उसके वृक्ष की उतनी ही ऊंची शाखाएं हो पाती हैं। नीचे की जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। अगर तुम वृक्ष को देखो, किसी भी वृक्ष को, तो ऊपर तो वृक्ष दिखाई पड़ता है, नीचे की जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। लेकिन जो नहीं दिखाई पड़तीं जड़ें उनमें ही वृक्ष के प्राण छिपे होते हैं, अदृश्य जड़ों में

ही वृक्ष के प्राण होते हैं। अगर अदृश्य जड़ों को कोई काट दे तो फिर वृक्ष छोटा ही रह जाएगा।
स्वामी रामतीर्थ थे, एक भारतीय संन्यासी थे, वे जापान गए। उन्होंने वहां तीन सौ, चार सौ और पांच सौ वर्ष पुराने देवदार के वृक्ष देखे, जिनकी ऊंचाई एक बित्ते से ज्यादा नहीं थी। वे बहुत हैरान हुए! पांच सौ वर्ष पुराना देवदार का वृक्ष और एक बित्ते की ऊंचाई का! उन्होंने पूछा, इसको किस रहस्य से तुमने छोटा रखा? यह कैसे इतना छोटा रहा पांच सौ वर्षों में? तो माली ने उन्हें बताया, गमले के नीचे से हम इसकी जड़ें हमेशा काटते रहते हैं! चूंकि जड़ें बड़ी नहीं हो सकतीं इसलिए वृक्ष ऊपर नहीं उठ सकता! इसलिए जड़ें तो दिखाई नहीं पड़ती हैं। वैसे ही मनुष्य की जो विचार की जड़ें हैं वे भी दिखाई नहीं पड़ती हैं। लेकिन उनमें ही मनुष्य के प्राणों के विकास की सारी संभावनाएं छिपी रहती हैं। अगर उनको ही तुमने विकसित नहीं किया तो तुम्हारा जीवन भी विकसित नहीं होगा। अगर उन पर तुमने ध्यान नहीं दिया तो तुम छोटे पौधे की भांति रह जाओगे। अगर जीवन में एक बड़ा पौधा बनना है, ऐसा पौधा जिसमें फल लगें, फूल लगें, जिसकी सुवास फैले, जिसकी छाया के तले दूसरे लोग विश्राम करें, अगर जीवन में ऐसा बड़ा पौधा बनना है तो विचार की जड़ों को बहुत-बहुत गहराई तक भेजना जरूरी है। कौन यह करेगा? अगर खुद ही हम खोज करेंगे तो यह होगा। पूछो! किसी भी मौके को--जब तुम पूछ सको, खोज सको-- खोओ मत! कोई छोटी-छोटी घटना भी जीवन में हो सकता है बहुत बड़े ज्ञान का भार लेकर आ रही हो, और हम न पूछें तो वह ज्ञान हमें नहीं मिल सकेगा।
एक फकीर हुआ। उससे बाद के जीवन में पूछा गया कि तुम्हारे कौन गुरु हैं?
तो उसने कहा, ऐसे तो मेरा पूरा जीवन ही गुरु रहा और जो भी आदमी रास्ते
पर मुझे मिला उससे ही मैंने कुछ सीखा। लेकिन सबसे पहले जिस आदमी से मैंने सीखा वह एक चोर था।
पूछने वाला बहुत हैरान हुआ। चोर से कोई क्या सीखेगा! लेकिन उस फकीर ने कहा कि मैं एक गांव में गया, आधी रात थी, कोई मुझे... दरवाजे सब बंद थे। एक आदमी रास्ते पर मिला, उसने कहा, अब तो दरवाजे बंद हैं, आप मेरे साथ ही आएं और ठहर जाएं। लेकिन मैं एक चोर हूं! हो सकता है, आप साधु हैं, मेरे घर ठहरना पसंद न करें। लेकिन उस साधु ने कहा, जब उस व्यक्ति ने कहा, मैं एक चोर हूं, तो मैं उसकी ईमानदारी और सच्चाई से प्रभावित हुआ। इतना सच्चा तो मैं भी नहीं हूं जितना वह चोर था। मैंने उसके पैर छुए और उसे प्रणाम किया और कहा कि तुम मेरे गुरु हुए, तुमसे मैंने एक बात सीखी। साधु होकर भी मैं इतना सच्चा नहीं हूं कि ठीक-ठीक कह सकूं कि मैं कौन हूं और क्या हूं, लेकिन तुमने एक चोर होकर भी यह स्पष्टता से कहा कि मैं चोर हूं। तो मैं तुमसे प्रभावित हुआ, तुमसे मैंने सच्चाई सीखी।
वह उस चोर के घर रात को गया। उसे सुला कर चोर ने कहा, क्षमा करें, अब तो मेरा धंधे का वक्त है तो मैं जाता हूं, आप विश्राम करें, मैं सुबह तीन या चार बजे के करीब लौटूंगा।
वह चोरी करने चला गया। वह रात कोई पांच बजे सुबह होते-होते लौटा। उस साधु ने पूछा, क्या चोरी सफल हुई? कुछ लाए?
उस चोर ने हंसते हुए कहा, आज तो नहीं, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे।
ऐसे वह साधु एक महीना उस चोर के घर रहा। रोज चोर सुबह लौटता, वह साधु पूछता, कुछ लाए? वह कहता, आज तो नहीं, लेकिन कल, कल जरूर लेकर आएंगे। फिर वह साधु चला आया।
उसने बाद में बताया कि जब मैं भगवान को खोजने लगा और रोज-रोज असफल होने लगा; शांत होने की चेष्टा करता था, लेकिन नहीं हो पाता था; मन से विचारों को दूर करने का प्रयास करता था, लेकिन विचार दूर नहीं होते थे; भगवान को खोजता था, लेकिन भगवान नहीं मिलता था; तब मैं थक जाता, निराश हो जाता और सोचता कि सब कुछ छोड़ दूं! तब मुझे उस चोर की याद आती जो रोज रात को कहता था, अगर आज नहीं मिला तो कल तो जरूर मिल जाएगा। तब फिर मैं सोचता कि एक साधारण सा चोर भी जब कल पर इतना विश्वास रखता है, इतनी आशा रखता है, इतना

साहस रखता है, तो मैं परमात्मा को खोजने निकला हूं, मुझे भी इतनी जल्दी निराश नहीं होना चाहिए। मैं भी सोचता कि आज नहीं तो कल जरूर मिल जाएगा। फिर एक दिन परमात्मा की अनुभूति मुझे हुई और तब मैंने सबसे पहले उस चोर को प्रणाम किया, जहां मैं था वहीं से--कि तुम मेरे गुरु हो और तुमसे मैंने यह आशा सीखी, यह हिम्मत सीखी, यह साहस सीखा और निराशा से मैं बचा। अब यह चोर से एक आदमी सीख सकता है तो जिंदगी में सीखने की बात तो सब तरफ से सीखी जा सकती है। केवल वे ही लोग जो अपने मस्तिष्क की दीवालों को बंद कर लेते हैं, सीखने से वंचित हो जाते हैं। विद्यालय में ही विद्या नहीं मिलती, शिक्षालयों में ही सब ज्ञान नहीं मिल जाता है, असली ज्ञान तो जीवन में मिलता है। लेकिन अगर तुम पूछो नहीं, खोजो नहीं, आंखें खोल कर देखो नहीं, तो ज्ञान की वर्षा ऐसे नहीं होती जैसे पानी बरसता है--कि वह अपने आप तुम्हारे ऊपर बरस जाएगा और तुम्हें मिल जाएगा। उसे तो खोजना होगा, प्रयास करना होगा। और जो प्रयास करता है...
एक वैज्ञानिक ने एक अदभुत काम किया इधर। कैक्टस का एक पौधा, जिसमें कांटे ही कांटे होते हैं और जिसमें कभी बिना कांटे की कोई शाखा नहीं होती, एक अमरीकन वैज्ञानिक उस पौधे को बहुत प्रेम करता रहा। लोगों ने तो समझा कि पागल है, क्योंकि पौधे को प्रेम करना! अरे आदमी को ही प्रेम करने वाले को बाकी लोग पागल समझते हैं, तो पौधे को प्रेम करने वाले को तो कौन समझदार समझेगा! उसके घर के लोगों ने भी समझा कि दिमाग खराब हो गया है। वह सुबह से उठता तो वह पौधा ही पौधा था। उसी को प्रेम करता, उससे बातें भी करता। तब तो और पागलपन हो गया। वृक्ष से तो बातें हो कैसे सकती हैं?
उस वैज्ञानिक ने जब यह घोषणा की कि मैं एक वृक्ष से बातें शुरू किया हूं और मुझे आशा है कि मैं सफल हो जाऊंगा। तो सारे अमरीका में उसकी हंसी उड़ी, सारे अखबारों में उसकी फोटो छपी कि यह आदमी पागल हो गया। कहीं कोई वृक्ष से बातें किया है कभी? लेकिन वह अदभुत पागल आदमी था कि अपने काम में लगा रहा। इस कैक्टस के पौधे से, जिसमें कांटे ही कांटे होते हैं, वह रोज सुबह बैठ कर घंटे भर बातें करता, उससे प्रेम करता, उस पर पानी सींचता, जितने हृदय के भाव होते उसको बताता। वृक्ष तो चुप रहता, वृक्ष क्या बोलेगा, वृक्ष तो कभी बोला ही नहीं है, इसलिए एकतरफा ही बातें होतीं, वह वैज्ञानिक खुद ही उस पौधे से कुछ कहता रहता।
उसकी पत्नी भी परेशान हो गई, उसके बच्चे भी हैरान हुए। उन्होंने कहा,
यह क्या पागलपन किया? बदनामी होगी। इससे कोई फल आने वाला है!
लेकिन उसने कहा कि मैं प्रतीक्षा करूंगा। और उस पौधे से उसने क्या कहा? उस पौधे से सारी बातें करता, जैसे कोई मित्रों से करता है। और अंत में एक बात रोज उससे कह देता। उससे कह देता कि मैं तो तुमसे कह रहा हूं, पता नहीं मेरी भाषा तुम समझते हो या नहीं समझते हो, पता नहीं तुम तक मेरी बातें पहुंचेंगी या नहीं पहुंचेंगी, लेकिन अगर मेरा प्रेम तुम तक पहुंच जाए तो तुम किसी इशारे से जाहिर तो कर ही सकते हो कि मेरा प्रेम तुम तक पहुंच गया। तो मैं तुम्हें बताता हूं, तुम यह इशारा कर देना तो मैं समझ जाऊंगा। और उसने क्या कहा? उसने यह कहा कि तुम्हारे इस पौधे में--कांटों वाला पौधा है कैक्टस का, उसमें कांटे ही कांटे हैं--अगर एक ऐसी शाखा निकल आए जिसमें कांटे न हों, तो मैं समझ जाऊंगा कि मेरी बातें तुम तक पहुंचीं।
उस पौधे में कभी बिना कांटे की कोई शाखा नहीं निकली, यह तो असंभव ही था। लेकिन सात साल तक वह यह कहता रहा। और तुम हैरान हो जाओगे, एक दिन ऐसा आया कि उस पौधे में एक शाखा निकली जिसमें कांटे नहीं थे। तब तो सारा अमरीका स्वीकार किया, सारी दुनिया ने स्वीकृति दी कि जरूर मनुष्य की प्रेम की वह आवाज उस पौधे के प्राणों तक भी पहुंची, अन्यथा वह शाखा कैसे निकलती जिसमें कांटे नहीं हैं? सारी शाखाएं कांटों वाली, एक शाखा बिना कांटे की भी निकल आई। पौधा भी, अगर सतत उसके साथ प्रेम किया गया, उत्तर दिया उसने।
तो अगर तुम जिंदगी से पूछो--पत्थरों से, पौधों से, आदमियों से, आकाश से, तारों से--तो सब तरफ से उत्तर मिलेंगे। लेकिन तुम पूछो ही नहीं, तो उत्तरों की वर्षा नहीं होती, ज्ञान कहीं बरसता नहीं किसी के ऊपर। उसे तो लाना पड़ता

है, उसे तो खोजना पड़ता है। और खोजने के लिए सबसे बड़ी जो बात है वह हृदय के द्वार खुले हुए होने चाहिए। वे बंद नहीं होने चाहिए। दुनिया की तरफ से दरवाजे बंद नहीं होने चाहिए, बिल्कुल खुला हुआ मन होना चाहिए। और जो भी आए चारों तरफ से, निरंतर सजग रूप से, होशपूर्वक उसे समझने, सोचने और विचारने की दृष्टि बनी रहनी चाहिए।

एक दो बातें पूछी हैंः मन से कुछ विचार निकाल डालना है, किंतु वह विचार बारंबार हृदय में जबरदस्ती उठता है। उसको कैसे निकाल डालें?

होता है, किसी विचार को हम अपने मन से बाहर निकालना चाहते हैं। हो सकता है विचार प्रीतिकर न हो, दुखद हो, चिंता लाता हो, उदासी लाता हो, घृणा का विचार हो, हिंसा का विचार हो। कोई ऐसा विचार हो जिसे हम अपने मन से बाहर कर देना चाहते हैं, कोई ऐसी स्मृति हो पीड़ा से भरी हुई, अपमान की कोई स्थिति हो, दुख की कोई घटना हो, हम उसे भूल जाना चाहते हैं, विस्मरण करना चाहते हैं, मन से हटाना चाहते हैं। लेकिन जितना उसे हटाते हैं, वह और हमारे पास आती है। जितना हम उसे दूर फेंकते हैं, वह और लौट-लौट कर हमारे पास आ जाती है। तो यह पूछा है कि यह कैसे हो? कैसे उसे अलग किया जाए?
मन की प्रकृति को समझना जरूरी है, तभी कुछ किया जा सकता है। मन की प्रकृति का पहला नियम यह है कि अगर किसी चीज को भूल जाना है तो उसे भूलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। क्योंकि भूलने की कोशिश के ही कारण बार-बार उसकी याद बनी रहती है। तुम जब भी उसे भूलना चाहो तभी उसको फिर याद करना पड़ता है। और भूलने की तो कोशिश होती है, लेकिन पीछे उसकी याद वापस खड़ी हो जाती है। तुम्हें एक कहानी सुनाऊं, उससे यह समझ में आ सकेगा।
तिब्बत में मिलारेपा नाम का एक बहुत बड़ा साधु हुआ। उसके पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं कोई मंत्र सिद्ध करना चाहता हूं ताकि मेरे पास बड़ी शक्तियां आ जाएं, मैं कोई चमत्कार, मिरेकल कर सकूं। मिलारेपा ने कहा कि मैं तो सीधा-सादा फकीर हूं, मुझे कोई चमत्कार नहीं मालूम और न कोई शक्ति और न कोई मंत्र। लेकिन जितना उसने इनकार किया उतना ही उस आदमी को ऐसा लगा कि जरूर इसके पास कुछ होना चाहिए, इसीलिए बताता नहीं है। वह उसके पीछे ही पड़ गया, वह उसके... रात वहीं पड़ा रहता उसके दरवाजे पर। आखिर मिलारेपा घबड़ा गया। उसने एक रात, अमावस की रात थी, उससे कहा कि ठीक है, तुम नहीं मानते, यह मंत्र ले जाओ। एक कागज पर पांच पंक्तियों का छोटा सा मंत्र लिख दिया और कहा, इस मंत्र को ले जाओ, अमावस की रात को ही यह सिद्ध होता है, इसे तुम पांच बार पढ़ना, पांच बार पढ़ते से ही यह सिद्ध हो जाएगा।
वह आदमी तो कागज को लेकर भागा। उसे धन्यवाद देने का भी ख्याल न रहा, उसने नमस्कार भी नहीं की, उस दिन उसने पैर भी नहीं छुए। वह तो भागा जल्दी से कि घर जाए और मंत्र को सिद्ध करे। मंदिर की कोई बीस-पच्चीस सीढ़ियां थीं, वह उनसे नीचे उतर ही रहा था, बीच सीढ़ियों पर था, तभी उस साधु ने चिल्ला कर कहा कि सुनो, एक शर्त और है! मंत्र जब पढ़ो तो ख्याल रखना बंदर की स्मृति न आए, बंदर दिखाई न पड़े। अगर मन में बंदर का ख्याल आ गया तो मंत्र बेकार हो जाएगा।
उस आदमी ने कहा, यह भी क्या बात बताई! मुझे जिंदगी हो गई, आज तक बंदर का ख्याल नहीं आया, स्मृति नहीं आई। कोई डर की बात नहीं, कोई चिंता का कारण नहीं।
लेकिन वह सीढ़ियां पूरी भी नहीं उतर पाया कि उसके भीतर बंदर की स्मृति आनी शुरू हो गई। वह जैसे घर की तरफ चला, भीतर बंदर भी उसके मन में स्पष्ट होने लगा, बंदर बहुत साफ दिखाई पड़ने लगा घर पहुंचते-पहुंचते। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, यह क्या मुश्किल हो गई! वह बंदर को भगाने लगा कि हटो मेरे मन से। लेकिन बंदर था कि जितना वह हटाने लगा, और स्पष्ट होने लगा। मन में उसका बिंब, बंदर की प्रतिमा स्पष्ट होने लगी। वह घर गया, आंख बंद करे तो बंदर दिखाई पड़े, अब मंत्र को कैसे पढ़ा जाए जब तक बंदर दिखाई पड़े! रात भर में परेशान हो गया, लेकिन बंदर से छुटकारा नहीं हो सका।

सुबह वापस लौटा, उसने वह मंत्र उस साधु को लौटा दिया और कहा, क्षमा करें, अगर यही शर्त थी तो आपको मुझे बताना नहीं था। बताने से सब गड़बड़ हो गई। बंदर मुझे कभी स्मरण नहीं आता था, आज रात भर बंदर मेरे पीछे पड़ा रहा। और दुनिया का कोई जानवर मुझे दिखाई नहीं पड़ा, सिर्फ बंदर दिखाई पड़ा। और मैं इसे रात भर निकालने की कोशिश करता था, लेकिन वह नहीं निकलता था। जिसको कोई निकालना चाहेगा उसे निकालना कठिन हो जाएगा, क्योंकि निकालने के कारण ही उसकी स्मृति परिपक्व होती है, मजबूत होती है। तो फिर क्या रास्ता है?
अगर किसी विचार को, किसी स्मृति को निकालना हो मन से, तो पहली तो बात
यह है, निकालने की कोशिश मत करना। पहली शर्त! फिर क्या होगा? अगर नहीं निकालेंगे तब तो वह आएगा। सिर्फ उसको देखना। निकालना मत, मात्र चुपचाप बैठ कर उसे देखना। न उसे निकालना, न उसे हटाना। तटस्थ-भाव से विटनेस भर हो जाना, उसके साक्षी भर हो जाना।
जैसे कोई रास्ते पर बैठ जाए--रास्ते पर लोग निकलते हैं, तांगे निकलते हैं, कारें निकलती हैं, जानवर निकलते हैं--किनारे पर हम बैठ कर चुपचाप देख रहे हैं। रास्ता चल रहा है, न हम चाहते हैं कि फलां आदमी रास्ते पर चले, न हम यह चाहते हैं कि फलां आदमी न चले, हम सिर्फ देख रहे हैं। हमारा कोई लगाव नहीं, हम मात्र देख रहे हैं अनासक्त भाव से, बिना किसी लगाव के, अनअटैच्ड, सिर्फ देख रहे हैं।
ठीक ऐसे ही, अगर मन से किन्हीं विचारों से मुक्ति पानी हो, तो सिर्फ देखना, उनसे लड़ना मत। लड़ने के बाद तो उनको हटाना असंभव है। मात्र उनको देखना। जब भी कोई स्मृति ऐसी है जो हटाने जैसी है, कोई विचार ऐसा है जिसे विदा करना है--एकांत में बैठ जाओ, उसे आने दो, आंख बंद कर लो, चुपचाप देखो। जैसे फिल्म देखते हैं हम, सिनेमा में बैठ कर एक पर्दे पर चलते हुए चित्रों को देखते हैं, वैसे चुपचाप उसे देखो। कुछ करो मत, छेड़ो मत, हटाओ मत, बुलाओ मत, मात्र देखो--जैसे केवल एक दर्शक मात्र। तुम हैरान हो जाओगे, अगर दर्शक मात्र की तरह देखो तो थोड़ी देर में वह विलीन हो जाएगी। और जब भी वह आए तब दर्शक की तरह देखो, कुछ दिनों में वह विलीन हो जाएगी, उसका आना बंद हो जाएगा।
अगर कोई व्यक्ति इसी भांति अपने सब विचारों को निरंतर देखता रहे, ऑब्जर्व करता रहे, तो धीरे-धीरे सभी विचार क्षीण हो जाते हैं। और तब एक अपूर्व शांति भीतर फलित होती है। तब चित्त निरंतर शांत, निरंतर मौन बना रहता है। उसमें विचारों की भीड़-भाड़, शब्दों की भीड़-भाड़, व्यर्थ का कचरा कोई भी नहीं घूमता है।
अभी तो मस्तिष्क एक कचरेघर की भांति है। अगर तुमसे मैं कहूं, कल अपने कमरे पर बैठ कर अकेले में दस मिनट केवल, तुम्हारे मन में जो भी चलता हो उसको कागज पर लिखना, तो बाद में पढ़ कर तुम घबड़ा जाओगे। तुम्हारे दिमाग में ऐसे पागलपन के विचार चलते हुए मालूम पड़ेंगे, ऐसी व्यर्थ की बातें--जिनका कोई मतलब नहीं, जिनकी कोई संगति नहीं, जिनसे कोई प्रयोजन नहीं, जिनका कोई लाभ नहीं--तुम्हारे मन में दौड़ती हुई मालूम पड़ेंगी। अगर दस मिनट तुम अपने सारे विचारों को वैसा का वैसा लिखो तो खुद ही घबड़ा जाओ, दूसरों को बताने की हिम्मत न हो। क्योंकि कोई भी देख कर कहेगा कि तुम पागल हो, ये विचार तुम्हारे मन में कैसे चलते हैं!
पागल में और सामान्य आदमी में बहुत फर्क नहीं है। सामान्य आदमी के भीतर धीरे-धीरे जो विचार चलते रहते हैं, पागल थोड़ा और आगे बढ़ जाता है, उन्हीं विचारों को जोर-जोर से बोलने लगता है, तो वह पागल दिखाई पड़ता है। और जो नहीं बोलते हैं वे ठीक दिखाई पड़ते हैं। लेकिन दोनों के भीतर एक से विचार चलते होते हैं। इन सारे विचारों के चलते हुए कोई भी मनुष्य कभी शांत नहीं हो सकता। इन विचारों से छुटकारा होना चाहिए। लेकिन हटाने से कोई विचार नहीं हटता है। धक्के देने से, जबरदस्ती करने से कोई विचार नहीं हटता, बल्कि और आता है। जितना दबाओ उतना आएगा, जितना भगाओ उतना वापस लौटेगा।

रास्ता है--न भगाओ, न दबाओ, बल्कि देखो, शांत होकर देखो, सिर्फ निरीक्षण करो, मात्र दर्शक रह जाओ। जैसे रास्ते पर कोई खेल हो रहा है, तुम खड़े होकर देख रहे हो, ऐसे ही अपने मन के खेल को देखो और दूर खड़े हो जाओ। सिर्फ देखो, उस देखने के ही द्वारा धीरे, धीरे, धीरे विचार क्षीण हो जाते हैं और एक स्थिति आती है कि मन इतना शांत हो जाता है जैसे आकाश हो बिना बादल का, बिना बादल का नीला आकाश हो जिसमें कोई बादल नहीं। ऐसा ही एक क्षण आता है जब मन बिना विचार के शांत नीले आकाश की भांति हो जाता है। वही स्थिति अपूर्व आनंद की होती है। उसी स्थिति में मनुष्य को अपनी आत्मा का बोध होता है, उसी स्थिति में उसे परमात्मा की प्रतीति और अनुभव शुरू होते हैं। मन की एक ऐसी दशा, मन की एक ऐसी शांत स्थिति, मन की एक ऐसी बादलों से रहित आकाश जैसी स्थिति को पैदा कर लेना ही ध्यान है।
कल हमने ध्यान का प्रयोग किया, आज फिर हम ध्यान के प्रयोग के लिए अभी बैठेंगे। तीन दिनों के शिविर की अंतिम चर्चा है, कुछ थोड़ी सी ऐसी जरूरी बातें जो तुम्हारे लिए उपयोगी हो सकें, उन पर भी बात करूंगा।
एक तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण उन सभी लोगों के लिए जिनके मन में परमात्मा को जानने की कोई भी प्यास जगी हो--या परमात्मा की प्यास उसे न कहें, जिनके हृदय में शांत होने की आकांक्षा पैदा हुई हो--या शांति की आकांक्षा भी उसे न कहें, जिनके हृदय में आनंद को उपलब्ध करने की अभीप्सा पैदा हुई हो, उन सभी के लिए कुछ बहुत आधारभूत बातें जरूरी हैं। यदि उन बातों पर ध्यान न हो तो इस दिशा में--आनंद की, शांति की या परमात्मा की दिशा में--कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता है।
पहली बात, जिस पर से कि ध्यान करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति का उचट गया है, वह है एकांत का मूल्य। धीरे-धीरे मनुष्य भीड़ में, समूह में खोता गया है और अकेले होने की भी कोई स्थिति है, यह उसे भूल गई है। सुबह से हम उठते हैं और जो दुनिया शुरू होती है, जो काम शुरू होता है, वह हमें भीड़ में ले जाता है। दिन भर की मेहनत के बाद अगर कभी थोड़ी देर बैठने का समय मिलता है तो अखबार पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं, और उस कारण भी एकांत संभव नहीं हो पाता। अगर वक्त मिलता है, मित्रों से मिलते हैं, होटल, सिनेमा या क्लब, वहां भी हम अकेले नहीं होते। जब थक जाते हैं तो रात सो जाते हैं, फिर सुबह से वही दुनिया शुरू हो जाती है।
अकेला होना करीब-करीब हमें विस्मरण हो गया है। लेकिन यह ख्याल में रहे, दुनिया में जो भी श्रेष्ठतम वस्तुओं का जन्म हुआ है, वे सब एकांत में पैदा हुई हैं, भीड़ में नहीं। और यह भी स्मरण रहे कि दुनिया में मनुष्य-जाति के इतिहास में जिन लोगों ने भी सत्य को, सौंदर्य को, शिवत्व को जाना है, उन सबने एकांत में जाना है, भीड़ में नहीं। और यह भी ख्याल में रहे, भीड़ ने अब तक कोई महान कार्य नहीं किया है। जो भी महान कार्य हैं वे व्यक्तियों ने किए हैं। और वे सारे महान कार्य एकांत में पैदा हुए हैं। यह जान कर तुम्हें आश्चर्य होगा कि भीड़ ने दुष्कर्म तो किए हैं, बुरे काम तो किए हैं--हत्याएं तो की हैं, युद्ध तो किए हैं, खून किए हैं, आग लगाई है--लेकिन भीड़ ने किसी सुंदर कृति को, किसी बहुमूल्य चित्र को, किसी मूर्ति को, किसी विज्ञान के आविष्कार को, किसी कविता को, किसी महाकाव्य को, किसी जीवन के सिद्धांत को जन्म नहीं दिया है। जो भी महत्वपूर्ण पैदा हुआ है वह व्यक्ति से पैदा हुआ है, भीड़ से नहीं। और व्यक्ति से भी तभी पैदा हुआ है जब वह एकांत में गया है, अकेले में गया है, भीड़ से थोड़ा अपने को उसने मुक्त किया है और दूर हुआ है।
लेकिन हम सब तो भीड़ की तरफ भागते रहते हैं। अगर घड़ी भर अकेले बैठने को मिल जाए तो हम घबड़ा जाएंगे, बेचैन हो जाएंगे। चाहेंगे कि मित्रों के पास जाएं, अखबार पढ़ें, रेडियो सुनें, या किसी भांति उस अकेलेपन को खत्म करें, उस अकेलेपन को नष्ट करें।
यह खतरनाक बात है। अगर तुम्हारे जीवन में एकांत की घड़ियां नहीं हैं, तुम्हारे जीवन में कोई महत्वपूर्ण बात कभी भी पैदा नहीं हो सकेगी। अकेले होना सीखना चाहिए। ऐसा नहीं कह रहा हूं कि चौबीस घंटे तुम अकेले रहो। जीवन का काम है, उसमें भीड़ है, उसमें दूसरे लोग हैं, लेकिन कुछ घड़ियां तो खोज

लेनी चाहिए जब तुम बिल्कुल अकेले ही हो, जब कि कोई तुम्हारे साथ नहीं है। न केवल कोई साथ नहीं है, बल्कि भीतर भी किसी की स्मृति न हो, सबको विदा कर दो और बिल्कुल अकेले हो जाओ। उस अकेलेपन में तुम्हें कुछ चीजों का साक्षात होगा। उस अकेलेपन में तुम्हारे भीतर, तुम क्या हो, उसकी अनुभूति, उसका अहसास, उसकी प्रतीति होनी शुरू होगी, उसका स्पर्श होना शुरू होगा। और उस एकांत में ही उस चिंतन को जन्म मिलेगा, जो तुम्हारे जीवन को ऊंचा ले जा सकता है। और उस एकांत में ही तुम्हारे भीतर उस आत्मा का जागरण होगा, जो तुम्हें प्रेरणा दे सकती है, गति दे सकती है और शक्ति दे सकती है।
इसलिए एकांत के कुछ क्षण खोजते रहना चाहिए। लोग हैं, अगर वे शहरों से कभी ऊब कर छुट्टी के दिनों में बाहर जाते हैं, तो वहां भी मित्रों को लेकर पहुंच जाते हैं। वहां भी भीड़-भाड़ है, वहां भी सब वही लोग हैं, वही बातें हैं।
कभी न कभी, महीने में कुछ क्षण, कुछ दिन, कुछ घड़ियां एकदम अकेले में बितानी जरूरी हैं। उस अकेले में सिर्फ अपने साथ--ख्याल मत ले जाओ मित्रों के, परिवार के, दुश्मनों के, उन सबको भी विदा कर दो--बिल्कुल अकेले चले जाओ। कोई एक घंटा तो चौबीस घंटे में बिल्कुल अकेला बिताना चाहिए। क्या होगा अकेले में बिताने से? अकेले में अगर तुमने सबको विदा कर दिया, मन से भी, बाहर से भी और तुम बिल्कुल अकेली हो गईं, तो क्या होगा?
अकेले होने में ही तुम्हें विचार होगा जीवन के बाबत कि मैं अपने जीवन
को व्यर्थ तो नहीं खो रही हूं? मैं जो कर रही हूं वह व्यर्थ तो नहीं है? जो मेरे जीवन में हो रहा है उसका कोई मूल्य है? कोई अर्थ है या नहीं? उस अकेले में ही यह चिंतन पैदा होगा कि मेरा जीवन जिस गति से जा रहा है वह उचित है क्या? मेरे जीवन में कोई विकास हो रहा है, इसका विश्लेषण हो सकेगा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि कल मैंने जो किया था, वही आज किया है, वही कल भी होगा और इसी भांति एक गोल घेरे में घूमते-घूमते मैं समाप्त हो जाऊं? इस सबका चिंतन पैदा होगा। अपने भीतर की बुराइयां देखने की भी संभावना पैदा होगी। और अगर बुराइयां दिखाई पड़ने लगें तो उनसे छूटना कठिन नहीं होता है, वह मैंने सुबह तुमसे कहा। तो अपनी बुराइयों का भी दर्शन होगा। अगर तुम्हारे जीवन में कुछ श्रेष्ठ है, तो उसे कैसे विकसित करें, उसे और कैसे बड़ा करें, इसके भी ख्याल पैदा होंगे, इसकी भी प्रेरणा मिलेगी। वह तुम्हारा आत्म-निरीक्षण का क्षण हो जाएगा।
थोड़ी देर एकांत अत्यंत अनिवार्य है। बिल्कुल अकेले हो जाओ। अगर बाहर नहीं जा सकते हो, कोई कमरे में अपने को बंद कर लो और एक घंटा, आधा घंटा बिल्कुल एकांत में चुपचाप बैठ कर बिताओ। वह तुम्हारे जीवन के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण घड़ी सिद्ध होगी। आखिर में तुम्हें ज्ञात होगा कि तुमने काम में जो समय बिताया वह तो व्यर्थ गया और तुमने एकांत में जो समय बिताया उसने तुम्हारे प्राणों को बनाने में, तुम्हारे जीवन को निर्माण करने में बहुत बड़ी सहायता दी।
लेकिन मनुष्य-जाति एकांत को भूलती जाती है। और एकांत को भूलने के कारण ही वह प्रकृति को भी भूलती चली जाती है। तो यह चारों तरफ हमारे प्रकृति का सौंदर्य है, उससे भी हमारे संबंध क्षीण हो गए। अभी लंदन में उन्होंने छोटे-छोटे बच्चों से एक सर्वे किया और छोटे-छोटे बच्चों से पूछा, तो लंदन की महानगरी में दस लाख बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने खेत नहीं देखा है और पंद्रह लाख बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने गाय नहीं देखी है। लंदन जैसी जगह में पंद्रह लाख छोटे बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने गाय नहीं देखी है, दस लाख बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने खेत नहीं देखा है। इनकी जिंदगी में तो बड़ी कमी रह जाएगी, इनकी जिंदगी तो बहुत अधूरी रह जाएगी।
मनुष्य प्रकृति का हिस्सा है। मनुष्य प्रकृति का एक हिस्सा है, उसका
एक अंग है। अगर हम उसे बिल्कुल तोड़ कर अलग रख लें तो उसके जीवन में बहुत सी बातें नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगी।
तुम कहोगे, हम तो पौधों को देखते हैं, चांद को देखते हैं, सूरज को देखते हैं, झील को देखते हैं।

इतना ही देखना काफी नहीं है; देखने का भी मार्ग है। कभी किसी वृक्ष के पास तुमने घड़ी दो घड़ी एकांत में बैठ कर बिताई हैं? कभी उस वृक्ष को प्रेम किया है? कभी उस वृक्ष को प्रेम से सहलाया है? कभी उसके निकट बैठ कर उससे टिक कर प्रेम की कोई घड़ी अनुभव की है? अगर नहीं, तो तुम वृक्ष से परिचित नहीं हो पाओगी। कभी किसी झील की रेत पर चुपचाप घड़ी भर उसी भांति विश्राम किया है जैसे कोई अपनी मां की गोद में सिर रख कर विश्राम करता है? अगर नहीं किया, तो तुम उस झील से, उस रेत से परिचित नहीं हो पाओगी। भागे हुए झील के पास जाना और सोचना कि हमने झील को देख लिया, और वापस लौट आने से झील नहीं देखी जाती है।
इतने जल्दी, इतनी शीघ्रता में भागते हुए लोग प्रकृति के दृश्यों को देखते फिरते हैं। अमेरिका जैसे मुल्कों में तो वे कारों से भी नहीं उतरते, कारों में बैठे-बैठे ही वे सारी प्रकृति का दर्शन कर लेते हैं। ऐसे प्रकृति से संबंध नहीं हो सकता। प्रकृति को जानने के लिए जरूरी है अत्यंत आत्मीयता से उसके निकट जाना। अत्यंत आत्मीयता और प्रेम से प्रकृति के निकट होना।
कभी तुमने किसी पशु को प्रेम किया है? और अगर हम पशु को, पौधों को, चारों तरफ फैली हुई प्रकृति को प्रेम न कर सकें और हमारे उससे कोई संबंध न हों, तो हमारे भीतर बहुत सी कमियां रह जाएंगी, बहुत से अभाव रह जाएंगे। हमारे जीवन में सौंदर्य के फूल खिलने संभव नहीं हो सकेंगे।
तो मैं दूसरी बात यह कहना चाहता हूं--पहली बात तो यह कि तुम एकांत में कुछ न कुछ समय बिताना शुरू करो--दूसरी बात, कुछ न कुछ समय प्रकृति के निकट भी बिताना बहुत जरूरी है। जैसे अब तुम यहां आई हो तो तुम्हें ख्याल होगा-- कोई बंबई से आया होगा, कोई नासिक से, कोई पूना से, बड़े-बड़े शहरों से--तो तुम्हें ख्याल होगा कि यहां इस दूर प्रकृति के रम्य स्थान में हम बहुत प्रकृति के करीब हैं। लेकिन इतना होना काफी नहीं है। यहां आ जाना काफी नहीं है। यहां के पौधों से, यहां के चांद से, यहां की जमीन से, यहां की झील से, इन सबसे तुम्हारा अत्यंत प्रेमपूर्ण घनिष्ठ संबंध पैदा होना चाहिए। अगर वह पैदा न हो तो तुम्हारा कोई संबंध इनसे नहीं हो सकेगा।
एक मित्र मेरे आए हुए थे, उन्होंने बहुत दुनिया की यात्रा की है। तो अपने छोटे से गांव में उनको मैं नदी पर ले गया पहाड़ियां दिखाने। नाव में बिठा कर उनको मैंने यात्रा कराई। लेकिन वे मुझे बताते रहे स्विटजरलैंड की झीलों के संबंध में, कश्मीर की झीलों के संबंध में। दो घंटे तक हम वहां थे। जिस झील पर हम मौजूद थे उसके बाबत न तो उन्होंने कोई बात की, न उस झील के बाबत उनके मन में कोई ख्याल उठा और न उस झील को उन्होंने देखा। क्योंकि उनके मन में तो स्विटजरलैंड की झीलें घूमती रहीं और कश्मीर की झीलें घूमती रहीं। जब दो घंटे के बाद हम विदा होने लगे, तो उन्होंने मुझसे कहा कि यह जगह बड़ी अच्छी थी जहां आप मुझे लाए।
मैंने उनसे कहा, यह झूठी बात आप न कहें। क्योंकि आप उस जगह पर... मैं आया तो था आपको लेकर, लेकिन आप वहां पहुंच नहीं सके। आपका मन वहां एक क्षण को भी उस झील के साथ आत्मीय नहीं हो सका। आप तो दूसरी बातें करते रहे-- स्विटजरलैंड की, कश्मीर की। अगर इस झील के साथ आपका प्रेम पैदा होता तो कश्मीर भी भूल जाता, स्विटजरलैंड भी भूल जाता, एक घंटे भर को आप मौन हो जाते और इस झील के साथ जीते। लेकिन आप तो इस झील के साथ जीए नहीं। और मैंने उनसे कहा, मैं यह भी समझ गया कि जब आप स्विटजरलैंड में रहे होंगे तो वहां की झीलों के साथ भी आप जीए नहीं होंगे, वहां भी आप सोचते रहे होंगे दूसरी बातें।
अगर तुम्हें प्रकृति के पास जाना है तो सारी बातों को छोड़ दो और उतनी देर के लिए उस प्रकृति के साथ एक हो जाओ। अगर एक फूल को प्रेम करना है तो और सब ख्याल छोड़ दो, एक फूल के पास दस-पांच मिनट बैठो, सब भूल जाओ, अकेले फूल को रह जाने दो। अगर तुम्हारे मन से सारे ख्याल चले जाएं और बाहर सिर्फ फूल रह जाए, तो थोड़ी देर में तुम पाओगी कि फूल ही जैसी कोई सुंदर चीज तुम्हारे भीतर भी मौजूद हो गई है। अगर तुम्हारे मन से सारे विचार चले जाएं और तुम झील के किनारे एक घड़ी भर बैठी रह जाओ, तो थोड़ी देर बाद तुम्हें पता चलेगा

कि तुम्हारे भीतर भी झील जैसी किसी शांत चीज ने जन्म ले लिया है। अगर तुम घड़ी भर को मौन जमीन पर लेट जाओ और चांद को देखती रहो और कोई ख्याल तुम्हारे मन में न आए, कोई विचार तुम्हारे मन में न आए, थोड़ी देर में चांद ही जैसी सुंदर चीज का तुम्हारे हृदय में भी कोई अंकन हो जाएगा। हम जो देखते हैं वैसे ही हो जाते हैं। हम जो सुनते हैं वैसे ही हो जाते हैं। अगर हम पूरे प्राणों से किसी चीज के साथ आत्मीय हो जाएं तो हमारे भीतर भी वैसी ही घटना घटनी शुरू हो जाती है।
अडोल्फ हिटलर का तुमने नाम सुना होगा। हिटलर जब हुकूमत में आया तो उसने क्या किया? उसने सारे अस्पतालों में, सारे स्कूलों में खेल-खिलौने बदलवा दिए। छोटा सा बच्चा पैदा होगा तो उसके झूले के ऊपर वह घुनघुना नहीं लटकाता था, या गुड्डी नहीं लटकाता था। उसके झूले के ऊपर तोप लटकाता था या बंदूक लटकाता था। सारे मुल्क में आज्ञा कर दी गईः बच्चों से गुड्डे और गुड़ियां छीन ली जाएं। छोटे-छोटे बच्चों को खिलौने की जगह तोप दी जाए, बंदूक दी जाए। छोटा सा बच्चा, पहले दिन का बच्चा पैदा हो, झूले में लिटाया जाए, तो उसके झूले के ऊपर छोटी सी तोप झूलती रहे।
तुम कहोगे, यह क्या पागलपन था? लेकिन इसमें अर्थ था। अगर छोटा सा बच्चा बचपन से ही तोप को देखे, बंदूक को देखे, तो उसकी छाप उसके मन पर पड़नी शुरू होती है। उसके मन में उसके गहरे स्थान बन जाते हैं। वह उस प्रवृत्ति में लीन हो जाता है।
अगर छोटा सा यह बच्चा चांद को देखे, फूल को देखे, तो उसके मन में दूसरी छाप बनती है। उसके जीवन में दूसरे प्रभाव बनते हैं। उसके जीवन के संस्कार भिन्न होते हैं। उसका जीवन दूसरा हो जाएगा। तो बहुत छोटेपन में पड़े हुए प्रभाव भी जीवन भर साथ देते हैं।
नेपोलियन का तुमने नाम सुना होगा। वह जब छह महीने का था, एक झूले में लेटा हुआ था, एक जंगली बिलाव आया, एक जंगली बिल्ली आई, उसकी छाती पर पंजा रख कर खड़ी हो गई। वह छह महीने का था, डर गया। बात तो खत्म हो गई, नौकरानी ने आकर भगा दिया, कोई चोट नहीं पहुंची, कोई घाव नहीं लग गया। छह महीने का बच्चा था, कोई बड़ी बात भी नहीं थी। लेकिन तुम हैरान हो जाओगी, नेपोलियन जिंदगी भर बिल्ली से डरता रहा। जीवन भर! इतना बहादुर आदमी था कि अगर शेर उसके सामने आ जाए तो वह उससे छाती से छाती लगा कर लड़ सकता था। इतना बहादुर आदमी था कि न तोप उसे दहला सकती थी, न मृत्यु उसे डरा सकती थी। उससे बहादुर आदमी जमीन पर कम हुए हैं। लेकिन बिल्ली देख कर उसके प्राण कंप जाते थे। और जिस युद्ध में वह हारा, जिस लड़ाई में पहली दफा वह हारा, उसमें भी एक अजीब घटना घटी थी। नेल्सन जिससे वह हारा वह पचास-साठ बिल्लियां अपनी फौज के सामने बांध कर ले गया था। उसको यह पता चल गया था कि वह बिल्ली से घबड़ा जाता है। और जब नेपोलियन ने बिल्लियां देखीं फौज के सामने, उसने अपने मित्रों से कहा कि आज जीतना बहुत मुश्किल है। मेरे तो प्राण छूट गए, मेरे तो हाथ-पैर कंपने लगे।
नेल्सन ने यह पता लगा लिया कि वह बिल्ली से डरता है, बिल्लियां बांध
कर ले गया। और यह संभावना है कि बिल्लियों की वजह से ही वह हारा! छोटे से बचपन में बिल्ली के साथ घबड़ाहट का जो एक प्रभाव पड़ा, वह जीवन भर उसको प्रभावित किया।
तो हमारे जीवन में चौबीस घंटे प्रभाव पड़ रहे हैं। हम चाहें या न चाहें, हमारा जीवन प्रभावित हो रहा है। अगर गलत प्रभाव हमारे जीवन में पड़ते जाएं तो बहुत स्वाभाविक है कि हमारा जीवन नष्ट हो जाए। यह हमारे हाथ में है कि हम सुंदर और शुभ प्रभाव अपने प्राणों के भीतर ले जाएं।
सबसे ज्यादा सौंदर्य के प्रभाव प्रकृति के निकट उपलब्ध होते हैं। और मुफ्त उपलब्ध होते हैं, उसके लिए कुछ खर्च नहीं करना होता। चांद सबके ऊपर रोज उगता है, लेकिन बहुत कम समझदार हैं जो उस चांद के सौंदर्य को अपने भीतर ले जाते हों। लाखों लोग हैं, कौन आकाश को देखता है? लाखों लोग हैं, कौन आंख ऊपर उठाता है और तारों से भरे आकाश को देखता है? लाखों लोग रोज रुपया खर्च करके नाटक देख सकते हैं, सिनेमा देख सकते हैं, लेकिन प्रकृति का अदभुत विस्तीर्ण आकाश ऊपर है, उसे देखने को कोई भी राजी नहीं है।

चारों तरफ बहुत सौंदर्य है। अगर आंख थोड़ी खुली हो, हृदय थोड़ा सजग हो, बुद्धि थोड़ी सी तेज हो, तो जीवन में अदभुत प्रभाव अपने भीतर इकट्ठे किए जा सकते हैं। और तुम क्या इकट्ठा करोगी, यह तुम्हारे हाथ में है। यहां कांटे भी हैं और फूल भी हैं। क्या तुम इकट्ठा करोगी, यह तुम्हारे हाथ में है। और अगर तुम कांटे इकट्ठे करोगी तो इस बात के ख्याल में मत रहना कि तुम्हारी आत्मा फूल जैसी सुंदर और आनंद को उपलब्ध हो जाए। कांटे तुम इकट्ठा करोगी तो कांटे जैसी ही आत्मा निर्मित होगी।
तो चारों तरफ से हम क्या इकट्ठा कर रहे हैं अपने भीतर, इसकी सदा स्मृति होनी चाहिए, इसका बोध होना चाहिए।
और मैंने कहा, प्रकृति के निकट ही, जीवन का जो श्रेष्ठतम है उसके प्रभाव हमारे पास आने शुरू होते हैं। इसलिए प्रकृति के निकट जाओ। मनुष्य से अपनी निकटता थोड़ी कम करो और प्रकृति से अपनी निकटता थोड़ी बढ़ाओ। क्योंकि मनुष्य के पास रह कर बहुत कम संभव है कि तुम्हारे जीवन में कुछ श्रेष्ठ मिल जाए। लेकिन प्रकृति के निकट तुम्हारे जीवन में बहुत श्रेष्ठ का जन्म हो सकता है।
मनुष्य के निकट बहुत संभावना है कि तुम गलत ही सीखो। भीड़ में तुम गलत
ही सीखो। और अगर तुममें थोड़ी समझ होगी तो तुमने हमेशा पाया होगा कि जब भी तुम भीड़ से वापस लौटोगी तो तुम कुछ खोकर वापस लौटोगी। और जब भी तुम एकांत में प्रकृति के निकट रह कर कुछ देर बाद लौटोगी, तुम कुछ पाकर लौटोगी। मनुष्य के पास खोया जा सकता है, प्रकृति के पास पाया जा सकता है। क्योंकि प्रकृति मनुष्य से बहुत बड़ी है। प्रकृति परमात्मा का बहुत प्रखर रूप है। प्रकृति परमात्मा का बहुत दृश्य रूप है।
मंदिर में जाने की उतनी आवश्यकता नहीं है परमात्मा की खोज के लिए, क्योंकि मंदिर मनुष्य का बनाया हुआ है। इसलिए मंदिर में मनुष्य के झगड़े लगे हुए हैं। अगर हिंदू के मंदिर में जाओ, मुसलमान के मंदिर में जाओ, उन दोनों में झगड़ा है। मस्जिद के लोग मंदिर को जला देते हैं, मंदिर को मानने वाले मस्जिद को तोड़ देते हैं। यह सब पागलपन वहां है, क्योंकि वे मनुष्य के बनाए हुए हैं। लेकिन चांद न तो हिंदू है और न मुसलमान है। झील की शांति न तो ईसाई है और न पारसी है। और एक वृक्ष में खिले हुए फूल न तो जैन हैं और न हिंदू हैं। वहां परमात्मा है। वहां मनुष्य की कोई कृति नहीं है। मनुष्य की कृति से और मनुष्य से थोड़ा दूर हटना बहुत जरूरी है।
यह मैं नहीं कहता हूं कि कोई बिल्कुल दूर हट जाए, मैं यह कहता हूं कि चौबीस घंटे में कुछ क्षणों के लिए जब भी समय मिले और तुम्हें मौका मिले तो प्रकृति को अपने भीतर आने दो और तुम प्रकृति में डूबो। तो तुम्हारे जीवन में बहुत गहरी शांति की, बहुत गहरी आनंद की संभावनाएं स्पष्ट हो सकेंगी। ये दो बातें मैंने कहीं--एकांत खोजो और प्रकृति का सान्निध्य, प्रकृति का सत्संग खोजो। इन दो बातों को अगर स्मरण रखा तो फिर मैंने तुम्हें जो ध्यान के लिए कहा है और कुछ सरलता और दूसरी बातों के संबंध में तुम्हें कहा है, उनका भी सहारा लिया, तो कुछ हो सकता है। कुछ निश्चित हो सकता है। तो ये दो जो सूत्र हैं, थोड़ा मनुष्य से दूर हटने के लिए हैं।
और अपने भीतर जाने के लिए क्या हो? हम एकांत में भी चले गए और हम प्रकृति के करीब भी गए तो क्या होगा? क्या इतना ही काफी है? या कि हमें अपने भीतर जाने के लिए कुछ और बातें भी चाहिए?
भीतर जाने के लिए एक ही सूत्र है। वह थोड़ा कठिन है, इसलिए मैं उसे रोके रहा। अंतिम समय मैंने सोचा, तुमसे अंतिम चर्चा में उसे कहूंगा। वह थोड़ा सा कठिन है, लेकिन इतना कठिन नहीं कि कोई भी न कर सके। इतना कठिन भी नहीं कि बच्चे उसे न कर सकें। लेकिन समझ अगर ठीक से हो जाए तो वह भी किया जा सकता है। स्वयं के भीतर जाने के लिए एक तरह का साक्षी-भाव, एक तरह का तटस्थ-भाव पैदा करना जरूरी होता है। उसे मैं समझाऊंगा, तुम्हें समझ में आ जाएगा। साक्षी-भाव का क्या अर्थ होता है?
जीवन में दो तरह के काम होते हैं। अगर तुम किसी खेल को देखने जाओ, कुछ लोग खेल रहे हों, तो जो लोग खेल रहे हैं वे तो खेल के भीतर सम्मिलित हैं, लेकिन जो लोग देख रहे हैं वे केवल साक्षी हैं। वे केवल देखने वाले हैं,

दर्शक हैं। खेलने वाले और देखने वाले में फर्क है। खेलने वाला तल्लीन हो रहा है, खेलने वाले को अगर हार जाएगा तो दुख होगा, अगर जीत जाएगा तो खुशी होगी। लेकिन देखने वाले को इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। कौन हारता है, कौन जीतता है, इससे उसे बहुत प्रयोजन नहीं है। उसे देखने का ही मजा है। वह चुपचाप देख रहा है।
जीवन में हम चौबीस घंटे खिलाड़ी होते हैं, खेलते रहते हैं। और दर्शक हम कभी भी नहीं होते। जीवन में चौबीस घंटे हममें एक ही भाव काम करता है, खेलने वाले का भाव। चौबीस घंटे खेलते रहते हैं। सुख-दुख उठाते हैं, हारते हैं, जीतते हैं, सफल होते हैं, असफल होते हैं।
ध्यान रहे, सिर्फ खिलाड़ी होना काफी नहीं है; दिन के कुछ समय में हमें दर्शक भी हो जाना चाहिए। अपना भी दर्शक हो जाना चाहिए। एक आधा घंटे के लिए, पंद्रह मिनट के लिए खिलाड़ी मत रह जाओ, दर्शक हो जाओ--खुद के दर्शक! खुद को भी ऐसे देखने लगो जैसे हम किसी दूसरे को देख रहे हों। उससे बहुत अदभुत क्रांति होगी। कभी शायद तुमने प्रयोग न किया हो खुद के दर्शक होने का, लेकिन इसे करो, यह प्रयोग अदभुत फल लाता है। खुद के दर्शक होने का मतलब यह हैः जैसे हम दूसरे को देखते हैं उस भांति थोड़ी देर को अपने को देखो। दूर हो जाओ, सारा लगाव छोड़ दो, ख्याल भूल जाए कि यह मैं हूं और इस भांति देखने लगो जैसे हम कोई फिल्म देख रहे हों।
जैसे समझो, तुम कोई फिल्म देखने जाओ तो वहां भी दर्शक नहीं रह जाती हो, वहां भी तुममें तल्लीनता आ जाती है, वहां भी तुम एक हो जाती हो। अगर फिल्म में किसी पात्र को दुख आ रहा है, कोई पीड़ा आ रही है, तुम्हारे भी आंसू बहने लगते हैं। उसका मतलब क्या हुआ? उसका मतलब यह हुआ कि तुम दर्शक नहीं रहीं, तुम भी उस फिल्म का हिस्सा हो गईं और रोना-गाना तुमने शुरू कर दिया। मतलब हम तो नाटक में भी दर्शक नहीं रह जाते हैं।
बंगाल में एक बहुत बड़े आदमी हुए, ईश्वरचंद्र विद्यासागर। तुमने नाम
भी सुना होगा। वे एक नाटक देखने गए। उस नाटक में एक पात्र है जो एक स्त्री को बहुत बुरी तरह परेशान कर रहा है, उसके पीछे लगा हुआ है, उसे हैरान कर रहा है, उसे दुख दे रहा है। आखिर में, विद्यासागर सामने बैठे-बैठे देख रहे थे, उनको इतना गुस्सा आ गया कि वे यह भूल गए कि यह नाटक है, उन्होंने निकाला जूता और उस पात्र को उठा कर मार दिया। जूता निकाल कर उसको मार दिया बहुत जोर से। वे यह भूल गए कि वे नाटक देख रहे हैं। उनको धीरे-धीरे यही ख्याल हो गया कि यह आदमी शैतान है, बदमाश है, और स्त्री को परेशान कर रहा है। लेकिन वह अभिनेता जो था, उसने उस जूते को हाथ में लिया, सिर से लगाया और कहा कि मेरे जीवन में इससे बड़ा पुरस्कार मुझे कभी भी नहीं मिला। विद्यासागर जैसे आदमी को भी मेरा नाटक इतना सच मालूम पड़ा कि वे जूता मार सके, इससे बड़ा पुरस्कार और क्या हो सकता है! मेरा अभिनय सफल हो गया। विद्यासागर तो बहुत संकोच में हुए, बड़े दुखी हुए। लेकिन बाद में उन्होंने कहा कि मैं भूल ही गया था कि वह नाटक था!
तो नाटक में भी हम भूल जाते हैं कि वह नाटक है। विद्यासागर जैसे समझदार आदमी भी भूल जाते हैं। इससे ठीक उलटा करने की जरूरत है। जैसे नाटक में भूल जाते हैं कि नाटक है और जीवन लगने लगता है, ऐसा ही कभी दिन में, कभी दो दिन में घड़ी आधा घड़ी को जीवन को भी ऐसे देखना चाहिए जैसे वह नाटक है। ठीक उलटा। अभी तो हम नाटक को भी जीवन मान कर उपद्रव में पड़ जाते हैं, कभी ऐसा मौका निकालना चाहिए--दिन में, रात में, सोते वक्त--थोड़ी देर के लिए बैठ कर जीवन को भी ऐसे देखना चाहिए जैसे वह नाटक है और मैं केवल देखने वाला हूं।
उसके बहुत अदभुत परिणाम होंगे। उसके बड़े अदभुत परिणाम होंगे। जब कोई व्यक्ति अपने को दूर से खड़े होकर देखता है तो उसके जीवन में बहुत समझ, बहुत अंडरस्टैंडिंग आनी शुरू होती है। तुम्हारा किसी ने अपमान किया। अगर तुम इसे नाटक की तरह देख सको तो तुम्हें हंसी आएगी, क्रोध नहीं आएगा, दुख नहीं आएगा। किसी ने तुम्हें गालियां दीं। अगर तुम तटस्थ खड़े होकर देख सको, दूर खड़े होकर देख सको, तो तुम्हें ऐसा लगेगा कि कोई किसी को गाली दे रहा है और मैं केवल देख रहा हूं। तब तुम्हारे मन में पीड़ा के तीर नहीं चुभेंगे, घाव

नहीं लगेंगे। और अगर पूरे जीवन में कोई धीरे-धीरे साक्षी हो जाए और अपने जीवन की लीला को नाटक की तरह देखने लगे, उसके जीवन से दुख और चिंताएं विलीन हो जाएंगी।
बुद्ध एक गांव के पास से एक बार निकले। कुछ लोग आए और उन्होंने उन्हें बहुत गालियां दीं, बहुत अपशब्द कहे, बहुत अपमान किया। जब वे गालियां दे चुके तो बुद्ध ने कहा, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।
वे तो सारे लोग हैरान हुए और उन्होंने कहा, हमने कोई बातें तो नहीं कीं, हम तो सीधी-सीधी गालियां दिए हैं। उसमें भी कोई छिपावट न थी, बात बिल्कुल सीधी थी, हमने सीधी-सीधी गालियां दी हैं। फिर भी आप कोई दुखी नहीं मालूम होते। और क्या हमारी गालियों का कोई उत्तर नहीं देंगे? हमने यह जो इतना अपमान किया है, इसके बदले में कुछ कहेंगे नहीं?
बुद्ध ने कहा, अगर तुम दस साल पहले आए होते तो मैं भी तुम्हें गालियों
के उत्तर गालियों से देता। अगर तुम दस साल पहले आए होते तो तुम्हारे अपमान ने मुझे दुख पहुंचाया होता। लेकिन इधर दस साल से तो मैं, जो भी होता है, उसको देखने वाला रह गया हूं। और अब मैं तुम्हारे साथ वही करूंगा जो मैंने पिछले गांव में भी किया।
उन्होंने पूछा, क्या किया?
बुद्ध ने कहा, पिछले गांव में कुछ लोग आए थे फूल-फल लेकर, मिठाइयां लेकर मुझे भेंट करने। मैंने उनसे कहा, मेरा पेट भरा हुआ है इसलिए तुम क्षमा करो। वे उन थालियों को वापस ले गए। मिठाइयां, फल वे वापस ले गए। अब तुम गालियां लेकर आए हो। और मैं तुमसे कहता हूं कि मैं लेने में असमर्थ हूं। अब तुम क्या करोगे? इन गालियों को सिवाय वापस ले जाने के कोई उपाय नहीं। और उन्होंने तो फल और मेवे अपने बच्चों को बांट दिए होंगे। तुम इन गालियों को किनको बांटोगे? क्योंकि मैं लेने से इनकार करता हूं। बुद्ध ने कहा, मैं लेने से इनकार करता हूं। तुम गालियां दे सकते हो, लेकिन अगर मैं न लूंगा तो फिर क्या होगा? और मैं इसलिए लेने से इनकार करता हूं कि जब से मैं जाग गया और दर्शक हो गया, तब से जो जरूरी होता है, उपयोगी होता है, वही लेता हूं, जो उपयोगी नहीं है, वह नहीं लेता। तो मुझे क्षमा करो, बुद्ध ने कहा, कि मैंने तुम्हें पीड़ा दी, कि तुम्हें गाली देने का श्रम करना पड़ा। और अब एक पीड़ा और दे रहा हूं कि गालियों को वापस ले जाने का श्रम भी करना पड़ेगा।
जो व्यक्ति जीवन में थोड़ा दर्शक हो जाता, तटस्थ, जरा दूर खड़े होकर अपने को देखने लगता है, उसके जीवन में व्यर्थ छूटने लगता है। अपने आप छूटने लगता है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता।
तो खुद के दर्शक बनना सीखना चाहिए। जैसे-जैसे तुम खुद के दर्शक बनोगी, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर गति होगी, तुम्हारे भीतर गहराई बढ़ेगी, तुम्हारे भीतर नई-नई गहराइयां खुलेंगी। और तुम्हारे जीवन में जो क्षुद्र बहुत प्रभावित करता है, छोटी-छोटी बातें छू जाती हैं, छोटी-छोटी बातें प्राणों को छेद देती हैं, छोटी-छोटी बातें दुख लाती हैं, चिंता लाती हैं, वे तुम्हें दुख देने में असमर्थ हो जाएंगी।
और अगर जीवन के दुख हमें न छुएं, अगर जीवन की पीड़ाएं हमारे भीतर न जाएं, अगर चिंताएं हमारे हृदय में घर न बनाएं, तो क्या होगा? तो अदभुत होगा! तब तुम्हारे भीतर एक मुक्ति फलित होगी, एक फ्रीडम होगी। चारों तरफ से तुम्हारा जीवन धीरे-धीरे मुक्त होता जाएगा, शांत होता जाएगा, आनंदित होता जाएगा, प्रेम से भरता जाएगा, करुणा से भरता जाएगा, मौन से भरता जाएगा। और इन्हीं सारी भूमिकाओं के बीच ध्यान भी सफल हो सकता है। इन्हीं सारी भूमिकाओं के बीच ही परमात्मा का कोई अनुभव उपलब्ध हो सकता है।
कोई ऐसी आसान बात नहीं है परमात्मा को पा लेना कि कोई बैठ गया और राम-राम जपने लगा, और उसे परमात्मा मिल जाए। ये सब बच्चों जैसी बातें हैं। या कोई आदमी माला फेर ले और परमात्मा मिल जाए। परमात्मा को पाने के लिए पूरा जीवन बदलना जरूरी है, पूरे जीवन की भूमिका बदलनी जरूरी है। जीवन में सरलता हो, जीवन में साक्षी-भाव हो, जीवन में एकांत हो, जीवन में मौन हो, निर्विचार ध्यान हो, जब यह सारी भूमिका जीवन की बदलती है तो ही कोई परमात्मा को

उपलब्ध होता है। ऐसे कोई माला फेरने से या कोई राम-राम जपने से या गीता की पोथी को रोज सिर टेकने से या किसी मूर्ति के सामने चंदन लगा कर बैठ कर कोई भजन करने से कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता। ये सब तो बहुत बच्चों जैसी बातें हैं। इनके भुलावे में जो पड़ जाता है उसका जीवन नष्ट हो जाता है। परमात्मा को पाने के लिए तो पूरे जीवन को बदलना होगा। परमात्मा को पाने के लिए तो पूरे जीवन की धारा को बिल्कुल नया करना होगा। परमात्मा को पाने के लिए तो जीवन को एक दर्पण की भांति स्वच्छ और पवित्र बनाना होगा।
मैं पहले दिन आया था तो तुमसे कहा था कि तुम्हें एक दर्पण भेंट करना चाहता हूं। वह इसी सब बातों का दर्पण था। अगर तुम इन सारी बातों का उपयोग करो तो निश्चित तुम्हारा मन एक मिरर की तरह, एक दर्पण की तरह पवित्र हो सकता है। और उस दर्पण में जिसके दर्शन होंगे वही परमात्मा है, वही प्रभु है। और उसे जो पा लेता है वही धन्य हो जाता है। और उसे जो नहीं पाता वह कुछ भी पा ले, तो भी उसके पाए हुए का कोई भी मूल्य नहीं है। अगर जीवन के इन प्रारंभिक दिनों में तुम्हें यह बोध आ जाए तो तुम्हारा जीवन धन्य हो सकता है।
मेरी इन सारी बातों को तीन दिन तुमने बहुत प्रेम, शांति से सुना है। समझने की कोशिश भी की होगी। उन पर और विचार करना। जो मैंने कहा है उसको थोड़ा प्रयोग करके देखना। हो सकता है कोई बात तुम्हारे काम की हो जाए, कोई बात तुम्हारे जीवन में आधार बन जाए, कोई बात हो सकता है तुम्हारे जीवन को बदलने का बिंदु हो जाए और तुम्हारे जीवन में कुछ हो सके। परमात्मा तुम्हें सबको जीवन में धीरे-धीरे अपने निकट बुलाए, अपने प्रकाश से भर दे, अपने प्रेम से भर दे, इसकी अंत में कामना करता हूं।
अब हम आज के अंतिम ध्यान के लिए बैठेंगे।

समाधि कमल
पंद्रहवां प्रवचन

राजनीति से छुटकारा

मेरे प्रिय आत्मन्!
शिविर का अंतिम दिन है और इसलिए यहां से विदा होने के पूर्व कुछ थोड़ी
सी जरूरी बातें आपसे कह देनी आवश्यक हैं। लेकिन इसके पहले कि मैं उन्हें कहूं, एक-दो प्रश्न और, जो महत्वपूर्ण हैं और छूट गए हैं, उनकी भी चर्चा कर लेनी उचित होगी। फिर भी कुछ प्रश्न छूट जाएंगे, तो मैं निवेदन करूंगा कि जिन प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जिनकी चर्चा की गई, यदि उनको ठीक से सुना गया होगा, तो जो प्रश्न छूट जाएं उनका भी विचार आपके भीतर पैदा हो सकता है।
बहुत से प्रश्न समान हैं, थोड़ा-बहुत भेद है, और जो-जो उनमें प्रतिनिधित्व करने वाले प्रश्न थे उनको चुन कर मैंने अपने विचार आपसे कहे।
सबसे पहले एक सबसे फिजूल प्रश्न है उसको ले लूं, ताकि उससे छुटकारा हो जाए। वह तीन दिन से मैं उसे फेंक देता हूं, वह फिर कोई लिख कर भेज देता है। फिर उसे अलग कर देता हूं, फिर भेज देता है। फिर जब ऐसा लगा होगा कि मैं फेंकता ही रहूंगा तो फिर मुझसे आज दो-चार लोग आकर निवेदन भी कर गए हैं कि उसका तो उत्तर मुझे देना ही है। तो उसकी ही सबसे पहले--ताकि उससे निपटारा भी हो जाए, उस झंझट से छुट्टी भी हो और फिर हम और कुछ जो जरूरी बातें हैं वे कर सकें। वैसे मैं फिजूल कह रहा हूं, वैसे कई को लगेगा कि बहुत सार्थक है। मुश्किल से कोई होगा जिसको फिजूल लगेगा। क्योंकि हमारे मस्तिष्क जिस भांति काम करते हैं, उन्होंने बहुत सी निरर्थक बातों को बहुत सार्थक और बहुत सी सार्थक बातों को बिल्कुल निरर्थक समझ रखा है।

पूछा है कि राजनीति के संबंध में मेरे क्या विचार हैं?

उसे मैं टालता रहा, क्योंकि सच में तो मैं राजनीति कुछ जानता नहीं हूं
तो विचार क्या होंगे! कोई संबंध मेरा नहीं है। लेकिन आप सबका संबंध है, इसलिए सोचता हूं कि विचार कर लेना उस पर भी उपयोगी होगा। चूंकि कुछ जानता नहीं हूं इसलिए बहुत तो नहीं कह सकता, एक छोटी सी कहानी कहता हूं। और उसी कहानी से आप समझने की कोशिश करना कि मेरे क्या विचार हो सकते हैं। वह कहानी भी कल किसी ने मेरे पास भेज दी है, उसी के आधार पर कहता हूं। वह प्रश्न भी किसी का है, वह कहानी भी किसी ने भेजी है। हालांकि कहानी ठीक वैसी नहीं बची है जैसी उन्होंने भेजी है। कहानी में बहुत फर्क करने पड़े हैं और तब वह आपके काम की हो पा रही है।
एक अमावस की रात में, घनी अंधेरी रात में एक उल्लू एक दरख्त पर बैठा हुआ था। अंधेरी रात थी, दो छछूंदर दरख्त के नीचे किसी पोल में रहते होंगे, वे निकले--डरे हुए से, कोई उन्हें देख न ले, कोई पकड़ न ले। तभी उल्लू ने ऊपर से कहा, हू!
छछूंदरों ने समझा कि यह उल्लू क्या अंग्रेजी बोलता है! हालांकि कोई
भी उल्लू देशी भाषा बोलना पसंद नहीं करते हैं। इसलिए शक में कोई आश्चर्य नहीं था। छछूंदरों ने भी बहुत से अखबार देखे और पढ़े-सुने थे, इसलिए थोड़ी- बहुत अंग्रेजी वे भी समझने लगे थे। उन्होंने समझा कि यह पूछ रहा है--कौन? हू? उन्होंने समझा कि यह पूछ रहा है--कौन? छछूंदर तो वैसे ही डरे हुए थे निकलते वक्त, तो उन्होंने देखा कि अंधेरे में भी कौन देख रहा है और किसने पूछा--कौन? तो उन्होंने पूछा, क्या आप हमको देख रहे हैं?
उल्लू ने फिर कहा, हू! लेकिन छछूंदरों ने समझा कि यू! यानी उन्होंने कहा कि तुम! अरे हम तुम्हें भलीभांति पहचानते हैं। छछूंदर तो बहुत घबड़ा गए, उन्होंने कहा, क्या आपको अंधेरे में दिखाई पड़ता है? अंधेरे में तो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। सतयुग में ऐसा होता था कि कुछ लोगों को अंधेरे में दिखाई पड़ता था। सर्वज्ञ होते थे, त्रिकालज्ञ होते थे, अंधेरे में

देखने वाले लोग होते थे। अब यहां कलियुग में कहां कि अंधेरे में किसी को दिखाई पड़ता हो।
उल्लू ने फिर कहा, हू! छछूंदरों ने समझा कि वह कह रहा है टू। वे दो ही छछूंदर थे, वे तो घबड़ा गए। कहा कि निश्चित ही कोई सतयुगी पुरुष, शायद धर्म की हानि हो गई है, इस कारण अवतार लेकर मौजूद हुए हैं। उन्होंने साष्टांग दंडवत किया और कहा, कितना अच्छा न हो कि आप सब राज्य का कारोबार सम्हाल लें। यहां तो सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। सब राज्य का कारोबार आप सम्हाल लें तो कितना अच्छा न हो। वे गए और उन्होंने अपने राज्य के एक मंत्री को जाकर निवेदन किया कि अब राज्य के नेता के लिए किसी को खोजने की जरूरत नहीं। एक ऐसे प्रज्ञाशील व्यक्तित्व को हम खोज कर आ गए हैं, जो न केवल अंग्रेजी बोलना जानता है, बल्कि अच्छी अंग्रेजी बोलना जानता है। और अगर भारत के बाहर जाए तो बहुत से विश्वविद्यालय उसको डॉक्ट्रेट देंगे। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं। और भी बड़े आश्चर्य की बात है, उसे अंधेरे में दिखाई पड़ता है। और जिसको अंधेरे में दिखाई पड़ता है उसके हाथ में अगर मुल्क हो, तो सब ठीक अपने आप हो जाएगा। अंधेरे में दिखाई पड़ना!
मंत्री अभी-अभी चुना गया एक गधा था। ऐसा नहीं था कि उस राज्य में और लोग नहीं थे, लेकिन गधों के अतिरिक्त कोई मंत्री बनने को राजी नहीं हो रहा था। वह अभी नया-नया चुना गया था। पढ़ा-लिखा तो नहीं था। इससे बहुत प्रभावित हुआ कि अंग्रेजी भी बोलते हैं! और अंधेरे में भी देखते हैं! तब तो जरूर मैं चलूं, उनकी परीक्षा कर लूं। और अगर यह बात सच है तो क्यों न उन्हें राष्ट्रपति बना दिया जाए!
वह गया। और अपने दो-चार साथी मंत्रियों को भी ले गया। उसी वक्त वे गए। राज्य के लिए नेता की जरूरत थी। उन्होंने जाकर पूछा, कुछ प्रश्न पूछे। और प्रश्न पूछने में उनको वैसे ही दिक्कत हो गई जैसे मंत्रियों को किसी का इंटरव्यू लेते वक्त होती है कि क्या पूछें? उत्तर देने वाले की दिक्कत तो दूर है, पूछने वाले की भी दिक्कत होती है कि क्या पूछें? तो उन्होंने जाकर पूछा, क्या आप बता सकते हैं हमारे पास कितने छछूंदर बैठे हैं? उल्लू ने कहा, हू! छछूंदरों ने कहा, देखो, कहा न उसने टू। गधे ने कहा कि उत्तर तो बिल्कुल साफ दिया। अंधेरे में इसको दो छछूंदर दिखाई पड़ रहे हैं! गधे ने पूछा, हमारे कितने कान हैं? उसने कहा, हू! फिर उन्होंने समझा टू। कहा कि इसको क्या अंधेरे में दिखाई पड़ता है? और अंग्रेजी भी बिल्कुल साफ बोलता है! तो उन्होंने प्रार्थना की कि आप कृपा करें और राष्ट्रपति हो जाएं। उल्लू तो राजी हो गया। कौन उल्लू राजी नहीं हो जाएगा? वे वापस लौटे। कहा कि कल दोपहर में आपका स्वागत होगा, ओथ सेरेमनी हो जाएगी। वहीं फिर आपको शपथ-ग्रहण हो जाएगी। कल दोपहर आप आ जाएं। राजभवन आ जाएं।
वे गए तो रास्ते में एक लोमड़ी मिल गई। वह पत्रकार थी। उससे उस मंत्री महोदय ने कहा कि राष्ट्रपति तो मिल गए, अब देश का भाग्य सुधर जाएगा। न केवल वे अंग्रेजी जानते हैं बल्कि अच्छी तरह अंग्रेजी जानते हैं। हो सकता है इंग्लैंड में ही पैदा हुए हों। यह भी हो सकता है कम से कम एंग्लो इंडियन हों। अगर यह भी न हो तो इतना तो तय है कि वे किसी साहबी खानदान से संबंधित हैं। और फिर बड़ी बात यह है कि उनको रात में दिखाई भी पड़ता है। और मुल्क में अंधेरा भारी है, जिसको रात में दिखाई पड़ता है वह तो नौका खेकर ले जाएगा। यही तो कठिनाई है कि रात में किसी को दिखाई नहीं पड़ता और मुल्क में घना अंधेरा है।
लेकिन लोमड़ी तो पत्रकार थी, उसने जरा तर्क उठाया। उसने कहा, इसका क्या पक्का भरोसा कि जिसको रात में दिखाई पड़ता हो उसको दिन में भी दिखाई पड़ता होगा?
लेकिन सभी गधे हंसने लगे, वह जो सब मंत्रिमंडल था वह सभी हंसने लगा। उसने कहा, कैसे पागल हो! यह तो बिल्कुल इल्लाजिकल बातें कह रहे हो। अरे यह तो सीधा तर्क है, जिसको रात तक में दिखाई पड़ता है उसको दिन में दिखाई नहीं पड़ेगा? यह तो सीधे तर्क की बात है, सीधा गणित है। जिसको रात में दिखाई पड़ता है उसको दिन में तो दिखाई पड़ेगा ही! जिसको रात तक में दिखाई पड़ता है! वे सब हंसने लगे। उस लोमड़ी की बात तो टाल दी गई।

दूसरे दिन उल्लू सज-धज कर चला। लेकिन तब दोपहर थी, सूरज ऊपर था। अब उसकी बड़ी मुसीबत हो गई। उसको दिखाई नहीं पड़ रहा है, वह किसी तरह चल रहा है। तो वह धीरे-धीरे चलने लगा। क्योंकि टकराने का डर था। लेकिन लोगों ने कहा कि ठीक राष्ट्रपति चुना, कितनी गंभीर चाल से चल रहा है! कितना! जरूर कुलीन है, किसी अच्छे परिवार का है। चाल देखो कितनी धीमी, आहिस्ता, कितनी गंभीर! वह गंभीर चलता हुआ, वह अपना डरा हुआ है, क्योंकि अब उसको दिन में दिखाई नहीं पड़ रहा है। बहुत थोड़ी-थोड़ी झलक मिल रही है। आंखें उसकी झपी जाती हैं। लेकिन वह अपने को साधे हुए है, संयत, चाल-ढाल सब संयत। वह वहां पहुंचा। उन सबने स्वागत किया, उसको मालाएं पहनाईं। वह उस राज्य का राष्ट्रपति हो गया।
अब वह राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए आगे बढ़ा। अब दिन का वक्त था, दोपहर तेज थी। देर तक धूप पड़ने से और देर तक फूलमालाएं और फोटोग्राफर और उनके फ्लैश लाइट की चमक, उल्लू बड़ी दिक्कत में पड़ गया। उसको अब कुछ भी नहीं सूझ रहा था। अब वह किसी तरह वापस भाग कर अपने घर पहुंचना चाहता था कि इस झंझट से छूटें और अंधे होने का पता न चल जाए। वह चला। तो अब जब नेता चला तो उसके पीछे सारे जानवर चले, सारा मंत्रिमंडल चला।
अब उल्लू को कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है, वह गड्ढों में गिर पड़ता है, रास्तों के उलटे-सीधे हिस्सों पर पहुंच जाता है। तो उसके पीछे उचक-उचक कर वे जानवर भी गिरने लगे जिनको दिखाई पड़ता था। क्योंकि जहां नेता जाता है वहां अनुयायी जाते हैं। और जब उनको चोटें लगने लगीं और टांगें टूटने लगीं तो उस उल्लू ने कहा, घबड़ाओ मत, यह तो बनते हुए राष्ट्र में अनेक मुसीबतें आती ही हैं और अनेक चोटें आती हैं। और जो शहीद हो जाएंगे वे भी न घबड़ाएं। शहीदों की कब्रों पर जुड़ेंगे मेले, उनकी चिताओं पर मेले भरेंगे। इसलिए बिल्कुल मत घबड़ाओ।
लेकिन कुछ मरने लगे पक्षी, पशु। कुछ तो छोड़ कर भाग गए। लेकिन मंत्रिमंडल के लोग कहां जाते भाग कर? क्योंकि जो मंत्रिमंडल में घुस जाए उसके लिए बाहर दुनिया में फिर भागने की कोई जगह नहीं रह जाती। वह तो और ऊपर ही ऊपर जा सकता है, पीछे नहीं जा सकता। तो उनको तो राष्ट्रपति के पीछे जाना ही था, तो वे तो गए। गिरने लगे, लेकिन जहां राष्ट्रपति जाए वहीं उनको जाना पड़े। अनेक उसमें मर गए। तो राष्ट्रपति ने कहा, घबड़ाओ मत, तुम्हारी पत्नियों को महावीर चक्र प्रदान करेंगे, बड़े-बड़े ओहदे देंगे, तुम्हारे फोटो लगाएंगे, देश में तुम्हारा नाम होगा। देश ऐसे ही तो बनता है। जब कोई मरेगा नहीं, तो देश कुर्बानी नहीं देगा तो बनेगा कैसे? बात तो ठीक ही थी। और विश्वास से पीछा करो, क्योंकि विश्वास फलदायी है। सोच-विचार की इसमें जरूरत नहीं है। सोच-विचार सभी करने लगेंगे तो मुल्क मर जाएगा। सोच-विचार मुझ पर छोड़ो।
आखिरकार किसी तरह वे उस रास्ते पर पहुंच गए जो राजपथ था, कांक्रीट का बना हुआ बड़ा पथ था, तो सब मंत्रिमंडल के लोग प्रसन्न हुए कि देखो आखिर, मुसीबत झेलीं, परेशानी हुई, कई योजनाएं गुजरीं, लेकिन फिर आ तो गए। हम आ तो गए आखिर राजपथ पर। जब नेता का पीछा किया, कुर्बानी दी, तो आखिर राजपथ मिल गया, आ गए राजपथ पर। वह राजपथ पर बीच में उल्लू चलने लगा, आसपास उसका मंत्रिमंडल, और बाकी जनता तो घसिट कर पीछे रह गई थी, अब तो कोई साथ नहीं था। जनता में से तो अब कोई साथ नहीं था। मंत्रिमंडल था और राष्ट्रपति थे और वे चले जा रहे थे। और तभी उधर से जोर से एक ट्रक कोई पचास-साठ मील की रफ्तार से आता हुआ, लेकिन उल्लू को तो दिखाई नहीं पड़ता था, वह तो अकड़ से चला जा रहा था, उसके आसपास मंत्रिमंडल चल रहा था। लेकिन गधों को दिखाई पड़ता था। गधों ने कहा कि देखिए तो, सामने से ट्रक आ रहा है! आप डरते नहीं हैं? बड़े निर्भय मालूम होते हैं! उल्लू ने कहा, हू! कौन डरता है!
अब जब नेता न डरे तो अनुयायी क्यों डरे। और डरे तो फिर मंत्रिमंडल में रहने की गुंजाइश न रह जाए। तो वे बढ़ते ही गए, बढ़ते ही गए... आखिर वह ट्रक ऊपर ही आ गया और वह राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल, सब उसके नीचे दब गए। वे सब लाशें पड़ी रह गईं। पीछे ट्रक पर, जहां लिखा रहता है हार्न प्लीज, वहां यह नहीं लिखा था, वहां लिखा थाः समय, काल।

यह छोटी सी कहानी मैं कहता हूं। और जिंदगी की धुरी करीब-करीब ऐसी मूर्खताओं के किनारे पर बहुत अनेक-अनेक सदियों से घूमती रही है और आज भी घूम रही है। और ऐसा नहीं कि किसी एक देश का ऐसा दुर्भाग्य हो, सारी दुनिया का ऐसा दुर्भाग्य है।
जब तक राजनीति सर्वोपरि है तब तक मनुष्य के जीवन में न तो आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है। क्योंकि राजनीति सर्वोपरि होने का अर्थ यह हैः इस जीवन में, इस जगत में जो सबसे ज्यादा एंबीशस होंगे, सबसे ज्यादा महत्वाकांक्षी होंगे, वे सबसे ऊपर पहुंच जाएंगे। और जो महत्वाकांक्षी है उसे अपने अतिरिक्त किसी से कोई मतलब नहीं होता। वह बातें सब करता हो, उसे अपने अतिरिक्त और कोई मतलब नहीं होता। अगर उसे अपने अतिरिक्त किसी और से मतलब होता तो वह महत्वाकांक्षी नहीं हो सकता था। महत्वाकांक्षी व्यक्ति हिंसक होता है। और महत्वाकांक्षी व्यक्ति अंधा होता है। महत्वाकांक्षा अंधा कर देती है। वह कुछ भी कर सकता है। और दुनिया भर में राजनीति इतनी प्रभावी है, उसकी वजह से जो जितने ज्यादा महत्वाकांक्षी लोग हैं, जितने अंधे, जितने क्रूर और कठोर और जितने हिंसक, वे सब ऊपर पहुंच जाते हैं। और वे जीवन को परिचालित करते हैं। और उनके द्वारा जीवन चलता है। इसीलिए तो आए दिन रोज युद्ध हो जाते हैं दुनिया में।
तीन हजार साल में साढ़े चार हजार युद्ध हुए हैं मनुष्य-जाति के इतिहास में! यह घबड़ाने वाला तथ्य नहीं मालूम होता आपको? यह कितना आश्चर्यजनक है! तीन हजार साल के इतिहास में साढ़े चार हजार लड़ाइयां! मसलन रोज ही लड़ाई चलती रही है। और जिन दिनों लड़ाई नहीं चली है वे दिन शांति के दिन नहीं रहे हैं, नई लड़ाई की तैयारी के दिन रहे हैं। उस वक्त नई लड़ाई की तैयारी चलती रही है। मतलब आदमी के इतिहास को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है--लड़ने का समय और लड़ाई की तैयारी करने का समय। शांति जैसी चीज आज तक न जानी गई है और न परिचित है। और यह कैसे हुआ है?
राजनीति केंद्र है, तब तक ऐसा ही होगा! क्योंकि जो महत्वाकांक्षी है
वह हिंसक है, और जो हिंसक है वह अंततः युद्ध में ले जाएगा। चाहे किसी भी मार्ग से जाए, राजनीति की अंतिम परिणति युद्ध है। राजनैतिक दृष्टि ही युद्ध और हिंसा पर खड़ी होती है। अगर मेरे भीतर राजनीतिज्ञ होता है तो मैं कोशिश करता हूं कि आपको पीछे हटाऊं और मैं आगे जाऊं। मेरे मन में पोलिटीशियन का अर्थ यह नहीं है कि जो आदमी सिर्फ इलेक्शन लड़ता है वह राजनीतिज्ञ हो गया। मेरी दृष्टि में राजनीतिज्ञ से अर्थ है वह व्यक्ति जो दूसरों को पीछे हटा कर खुद आगे जाना चाहता है--किसी भी दिशा में। जब सारी दुनिया इस भांति पोलिटिकल माइंडेड होगी, इस भांति महत्वाकांक्षी होगी और दूसरों को पीछे हटा कर आगे जाना चाहेगी, तो दुनिया में संघर्ष और कलह अनिवार्य है। व्यक्ति यही करते हैं, समाज यही करते हैं, राष्ट्र यही करते हैं, तो फिर युद्ध अनिवार्य है।
धार्मिक व्यक्ति राजनैतिक व्यक्ति से ठीक दूसरे छोर पर खड़ा होता है। धार्मिक व्यक्ति का आग्रह यह है, उसकी सारी की सारी चिंतना और साधना यह है कि वह अंतिम होने में समर्थ हो जाए। और राजनैतिक की चिंतना यह है कि वह प्रथम होने में समर्थ हो जाए।
क्राइस्ट ने एक वचन कहा है--कि धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं।
और सच में ही वे धन्य हैं जो अंतिम होने को राजी हैं। सुबह मैंने जो चर्चा की है, अंतिम होने का मेरा क्या अर्थ है, वह आपके ख्याल में आया होगा। धार्मिक व्यक्ति वह है जो अंतिम होने को राजी है। और राजनैतिक चित्त वह है जो प्रथम होने के सिवाय तृप्त नहीं हो सकता। और जब तक दुनिया में इस प्रथम होने की दौड़ होगी, तब तक जीवन में कैसे शांति हो सकती है? राजनीति एक घातक रोग की तरह मनुष्य-जाति को पकड़े रही है। और अभी भी पकड़े हुए है, और रोज बढ़ती जा रही है। बहुत खतरा है। या तो राजनीति बचेगी या मनुष्य-जाति बचेगी। ये दो विकल्प हैं। अगर दुनिया में राजनैतिक चित्तता इसी तरह बढ़ती गई तो मनुष्य नहीं बचेगा। मनुष्य नहीं बच सकता है। राजनीति का अंतिम परिणाम तीसरा महायुद्ध होगा। अंतिम परिणाम! और वह युद्ध होगा विश्वयुद्ध। वह कोई ऐसा युद्ध नहीं होगा कि छोटी-मोटी लड़ाई जो हम पहले

लड़ते रहे। वह राणाप्रताप और शिवाजी वाली लड़ाई होने वाली नहीं है--कि निकाल ली तलवार और खड़े हो गए। वह अब नहीं होने वाली है। घोड़े-वा.ेडे पर बैठ कर बहादुरी दिखाने का मौका नहीं है। वह लड़ाई तो बहुत अदभुत होने वाली है। वह तो होने वाली है टोटल वार, वह तो होगा समग्र युद्ध। उसमें तो सारी मनुष्य-जाति नष्ट होगी।
और राजनीतिज्ञ सारी दुनिया में कहते हैं, हम शांति चाहते हैं।
बड़ी आश्चर्य की बात है! राजनीतिज्ञ शांति चाह ही नहीं सकता। क्योंकि
जो शांति चाहता है उसे अंतिम खड़े होने के लिए राजी होना चाहिए। जो युद्ध चाहता है उसे प्रथम होने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रथम होने की चेष्टा करने वाला कहे कि हम शांति चाहते हैं, तो झूठी बातें कर रहा है। वह वैसी ही बातें कर रहा है जैसे मछलियां पकड़ने को कांटे पर आटा लगा देते हैं। आटा खिलाने की इच्छा नहीं होती मछलियों को, कांटे में फंसाने की इच्छा होती है। लेकिन बिना आटे के मछली नहीं फंसती है। बिना शांति की बातें किए युद्ध नहीं होता है।
सारे दुनिया के सभी युद्ध शांति के नाम पर लड़े गए हैं। शांति चाहते हैं इसलिए युद्ध करेंगे। शांति के लिए युद्ध? अब हिंदुस्तान में ही लोग कहते थे कि अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा! ऐसी मूढ़ताएं भी कहते वक्त कोई संकोच नहीं होता है। शांति के लिए युद्ध! सब युद्ध अच्छे-अच्छे नामों के लिए लड़े गए हैं, क्योंकि आटा लगाना पड़ता है कांटे में तब मछली फंसती है। और राजनीतिज्ञ समझता रहा है मनुष्य के मन को। अच्छे-अच्छे नारे और पीछे युद्ध। अच्छे-अच्छे नारे और पीछे हिंसा। अच्छी-अच्छी बातें और पीछे सब विकृति आगे आ जाती है। अब वह विकृति इतनी बड़ी हो गई है कि हो सकता है पूरी मनुष्य-जाति समाप्त हो जाए। तो क्या अब और भी मनुष्य-जाति को राजनीतिज्ञ रहने की सुविधा है?
मेरी दृष्टि में नहीं। क्योंकि राजनीति अंतिम मृत्यु हो जाएगी। वक्त
आ गया कि मनुष्य का राजनीति से छुटकारा होना चाहिए। उसका चित्त राजनैतिक नहीं रह जाना चाहिए। जीवन में बड़े मूल्य हैं! संस्कृति के मूल्य हैं, धर्म के मूल्य हैं, साहित्य के मूल्य हैं, काव्य के, प्रेम के, सौंदर्य के। सब क्षीण हो गए हैं, सबके ऊपर राजनीतिज्ञ बैठ गया है। सब विलीन हो गया है, सबके केंद्र में राजनीति हो गई है।
यह तो ऐसे ही हुआ है जैसे कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में आत्मा तो गौण हो जाए, हाथ-पैर प्रमुख हो जाएं, तो व्यक्तित्व कुरूप और अपंग हो जाएगा। मनुष्य के जीवन में राजनीति केंद्रीय नहीं हो सकती है। नहीं उसे होना चाहिए। धर्म केंद्रीय होगा, होना चाहिए। सौंदर्य केंद्रीय होना चाहिए, काव्य की अनुभूतियां केंद्रीय होना चाहिए। राजनैतिकता केंद्रीय नहीं होना चाहिए।
लेकिन इस समय तो--और इस समय क्या, हमेशा से राजनीति प्रमुख रही है, केंद्रीय रही है। क्या यह संभव नहीं है कि राजनीति केंद्र से हटाई जाए? अगर नहीं हटाई गई तो मनुष्य मिटेगा। और दो ही विकल्प हैं--या तो राजनीति जाए या मनुष्य जाएगा।
मुझे दिखाई पड़ता हैः राजनीति जानी चाहिए। कैसे जाएगी? जाएगी नॉन-एंबीशस माइंड के पैदा होने से, गैर-महत्वाकांक्षी मन के पैदा होने से राजनीति जाएगी, नहीं तो नहीं जाएगी। इस राजनीति, उस राजनीति की बात नहीं कह रहा हूं कि यह पार्टी और वह पार्टी और यह दल और वह दल। नहीं, मैं तो राजनीति की बात कह रहा हूं, किसी राजनैतिक दल की बात नहीं कह रहा हूं। दुनिया से राजनैतिक चित्तता जानी चाहिए और दुनिया में धार्मिक चित्तता आनी चाहिए।
और दोनों का केंद्र क्या है?
राजनैतिक चित्तता का केंद्र है महत्वाकांक्षा और धार्मिक चित्तता का केंद्र महत्वाकांक्षा नहीं है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न और पूछा है कि अगर महत्वाकांक्षा न हो तब तो फिर जीवन में विकास ही नहीं होगा!

निश्चित ही, अभी जिस विकास को हम जानते हैं वह महत्वाकांक्षा के ही द्वारा होता है। लेकिन सच में क्या जीवन का विकास हुआ है? कभी यह सोचा कि विकास हुआ है? क्या विकास हुआ है? आपके पास अच्छे कपड़े हैं हजार साल पहले से, इसलिए विकास हो गया? या कि आपके पास बैलगाड़ियों की जगह मोटरगाड़ियां हैं, इसलिए विकास हो गया? क्या आप झोपड़ी की जगह बड़े मकान में रहते हैं सीमेंट-कांक्रीट के, इसलिए विकास हो गया?
यह विकास नहीं है। मनुष्य के हृदय में, मनुष्य की आत्मा में कौन सी ज्योति जली है जिसको हम विकास कहें? कौन सा आनंद स्फूर्त हुआ है जिसको हम विकास कहें? मनुष्य के भीतर क्या फलित हुआ है, कौन से फूल लगे हैं जिसको हम विकास कहें? कोई विकास नहीं दिखाई पड़ता। कोई विकास नहीं दिखाई पड़ता, एक कोल्हू का बैल चक्कर काटता रहता है अपने घेरे में, वैसे ही मनुष्य की आत्मा चक्कर काट रही है। हां, कोल्हू के बैल पर कभी रद्दी कपड़े पड़े थे, अब उस पर बहुत मखमली कपड़े पड़े हैं। लेकिन इससे विकास नहीं हो जाता। या कोल्हू के बैल पर हीरे-जवाहरात लगा कर हम कपड़े टांग दें, तो भी विकास नहीं हो जाता। कोल्हू का बैल कोल्हू का बैल है और चक्कर काटता रहता है। और उस चक्कर काटने को ही वह सोचता हैः मैं बढ़ रहा हूं, आगे बढ़ रहा हूं।
मनुष्य आगे नहीं बढ़ रहा है। इधर हजारों साल से उसमें कोई परिलक्षण ज्ञात नहीं हुए जिससे वह आगे गया हो--कि उसकी चेतना ने नये तल छुए हों, कि उसकी चेतना ऊर्ध्वगामी हुई हो, कि उसकी चेतना ने आकाश की कोई और अनुभूतियां पाई हों, कि उसकी चेतना पृथ्वी से मुक्त हुई हो और ऊपर उठी हो, कि वह परमात्मा की तरफ गया हो--यह कोई विकास नहीं हुआ है।
महत्वाकांक्षा अगर है तो इस तरह का विकास हो ही नहीं सकता। विकास हो सकता है कि मकान बड़े होते चले जाएंगे। और यह घड़ी आ सकती है कि मकान इतने बड़े हो जाएं कि आदमी को खोजना मुश्किल हो जाए, वह इतना छोटा हो जाए। और यह घड़ी आ सकती है कि सामान इतना ज्यादा हो जाए कि आदमी अपने ही हाथ के द्वारा बनाए गए सामान के नीचे दबे और मर जाए। और यह हो सकता है कि एक दिन हम इतना विकास कर लें, यह तथाकथित विकास, कि हमारे पास सब हो, सिर्फ आदमी की आत्मा न बचे।
एक बार ऐसा हुआ। एक नगर में आग लग गई थी और एक भवन जल रहा था लपटों में।
और भवनपति बाहर खड़ा था और रो रहा था और आंसू बह रहे थे, और उसकी समझ में भी नहीं आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे! लोग जा रहे थे और सामान ला रहे थे। एक संन्यासी भी खड़ा हुआ देख रहा था। जब सारा सामान बाहर आ गया, तो सामान लाने वाले लोगों ने पूछा, कुछ और बच गया हो तो बताएं? क्योंकि अब अंतिम बार भीतर जाया जा सकता है, उसके बाद फिर आगे संभावना नहीं है, लपटें बहुत बढ़ गई हैं, यह आखिरी मौका है कि हम भीतर जाएं।
उस भवनपति ने कहा, मुझे कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, तुम एक दफा और जाकर देख लो, कुछ हो तो ले आओ।
वे भीतर गए, भीतर से रोते हुए वापस लौटे। भीड़ लग गई, सबने पूछा, क्या हुआ? उनसे कुछ कहते भी नहीं बनता है। वे कहने लगे, हम तो भूल में पड़ गए। हम तो सामान बचाने में लग गए, मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर सोया था, वह जल गया और समाप्त हो गया। सामान हमने बचा लिया, सामान का मालिक तो खत्म हो गया।
वह संन्यासी वहां खड़ा था, उसने अपनी डायरी में लिखाः ऐसा ही इस पूरी दुनिया में हो रहा है लोग सामान बचा रहे हैं और आदमी समाप्त होता जा रहा है। और इसको हम विकास कहते हैं!
यह विकास नहीं है। अगर यही विकास है तो परमात्मा इस विकास से बचाए। यह विकास नहीं है, यह कतई विकास नहीं है। लेकिन महत्वाकांक्षा यही कर सकती थी--सामान बढ़ा सकती थी, शांति नहीं बढ़ा सकती थी; शक्ति बढ़ा सकती थी, शांति नहीं बढ़ा सकती थी। महत्वाकांक्षा दौड़ा सकती थी, कहीं पहुंचा नहीं सकती थी। फिर क्या हो? अगर महत्वाकांक्षा न हो तो क्या हो?
महत्वाकांक्षा नहीं, प्रेम होना चाहिए। किससे प्रेम? अपने व्यक्तित्व से प्रेम, अपने व्यक्तित्व के भीतर जो छिपी हुई संभावनाएं हैं

उनको विकास करने से प्रेम, अपने भीतर जो बीज की तरह पड़ा है उसे अंकुरित करने से प्रेम। प्रतियोगिता और महत्वाकांक्षा दूसरे की तुलना में सोचती है और विकास की ठीक-ठीक दशा दूसरे की तुलना में नहीं सोचती, दूसरे के कंपेरिजन में नहीं सोचती, अपने विकास की, अपने बीजों को परिपूर्ण विकसित करने की भाषा में सोचती है। इन दोनों बातों में फर्क है।
अगर मैं संगीत सीख रहा हूं, इसलिए सीख रहा हूं कि दूसरे जो संगीत सीखने वाले लोग हैं उनसे आगे निकल जाऊं। मुझे संगीत से न कोई प्रेम है, न अपने से कोई प्रेम है। मुझे दूसरे संगीत सीखने वालों से घृणा है, ईर्ष्या है। न तो मुझे अपने से प्रेम है और न मुझे संगीत से प्रेम है। मुझे दूसरे संगीत सीखने वालों से घृणा है, ईर्ष्या है, जलन है। उनसे मैं आगे होना चाहता हूं। लेकिन क्या यही एक दिशा है सीखने की? और क्या ऐसा व्यक्ति संगीत सीख पाएगा जिसके मन में ईर्ष्या है, जलन है?
नहीं, संगीत के लिए तो शांत मन चाहिए, जहां ईर्ष्या न हो, जहां जलन न हो। संगीत नहीं सीख पाएगा। और सीखेगा तो वह झूठा संगीत होगा। उससे उसके प्राणों में न तो आनंद होगा, और न उसके प्राणों में फूल खिलेंगे और न शांति आएगी।
नहीं, एक और रास्ता भी है कि मुझे संगीत से प्रेम हो। संगीतज्ञों से ईर्ष्या और नफरत और घृणा नहीं, प्रतियोगिता नहीं, प्रतिस्पर्धा नहीं, काम्पिटीशन नहीं, वरन मुझे संगीत से प्रेम हो और अपने से प्रेम हो। और मेरे भीतर संगीत की जो संभावना है वह कैसे बीज अंकुरित होकर पौधे बन सकें, कैसे संगीत के फूल मेरे भीतर आ सकें, इस दिशा में मेरी सारी चेष्टा हो। यह नॉन-काम्पिटीटिव होगी, इसमें कोई प्रतियोगिता नहीं है किसी और से। मैं अकेला हूं यहां और अपनी दिशा खोज रहा हूं जीवन में। किसी से संघर्ष नहीं है मेरा, मैं किसी को आगे-पीछे करने के ख्याल में और विचार में नहीं हूं। जब तक दुनिया में इस भांति की प्रेम पर आधारित जीवन-दृष्टि नहीं होगी
तब तक दुनिया में राजनीति से छुटकारा नहीं हो सकता। राजनीति एंबीशन का अंतिम चरम परिणाम है। महत्वाकांक्षा सिखाएंगे, राजनीतिज्ञ पैदा होगा। महत्वाकांक्षा सिखाएंगे, कभी भी अहिंसक चित्त पैदा नहीं होगा, हिंसक चित्त पैदा होगा। यह सारी दुनिया की जो राजनीति फलित हुई है, यह हमारी गलत शिक्षा का फल है जिसने महत्वाकांक्षा सिखाई है। गलत सभ्यता और गलत संस्कृति का फल है, जो सिखाती है--दूसरों से आगे बढ़ो, दूसरों से आगे निकलो, दूसरों से पहले हो जाओ।
नहीं, सिखाना यह चाहिए कि तुम पूरे बनो, तुम पूरे खिलो, तुम पूरे विकसित हो जाओ। दूसरे से कोई संबंध नहीं सिखाया जाना चाहिए। दूसरे से कोई वास्ता भी क्या है। और इस दूसरे के साथ संघर्ष में, इस दूसरे के साथ प्रतियोगिता में अक्सर यह होता है कि जो हम हो सकते थे वह हम नहीं हो पाते हैं। क्योंकि हमें इस तरह के ज्वर पकड़ जाते हैं जो हमारे प्राणों की प्रतिभा नहीं थी, जो हमारे प्राणों के भीतर की वास्तविक पोटेंशियलिटी नहीं थी, जिसके बीज ही हमारे भीतर नहीं थे वह महत्वाकांक्षा में हमारे भीतर पकड़ जाते हैं। तब परिणाम यह होता है कि जो एक अदभुत बढ़ई हो सकता था, वह एक मूर्ख डाक्टर होकर बैठ जाता है। तब परिणाम यह होता है कि जो एक अदभुत डाक्टर हो सकता था, वह किसी अदालत में सिर पचाता है और वकील हो जाता है। तब परिणाम यह होता है कि सब गड़बड़ हो जाता है। जो जहां हो सकते थे वहां नहीं हो पाते और जहां नहीं होने चाहिए थे वहां हो जाते हैं। और जिंदगी सब बोझिल और भारी और कष्टपूर्ण हो जाती है।
जीवन के परम आनंद के क्षण वे हैं जब कोई व्यक्ति उस काम को खोज लेता है
जो उसके भीतर की संभावना है। तब उसके व्यक्तित्व में एक निखार, एक प्रकाश, एक प्रफुल्लता आ जाती है।
अभी तो सारी दुनिया परेशान है और बोझिल है, और बोर्ड है और ऊबी हुई है। उसका एकमात्र कारण हैः हर आदमी गलत जगह है। हर आदमी गलत जगह है, मुश्किल से कभी कोई आदमी ठीक जगह हो पाता है। और क्यों? क्योंकि महत्वाकांक्षा ऐसे ज्वर पैदा कर देती है दूसरों को देख कर कि मैं यह भूल ही जाता हूं, मुझे यह ख्याल ही नहीं आता कि मैं क्या होने को पैदा हुआ था।

हर आदमी कुछ होने को पैदा हुआ है। हो सकता है वह एक बहुत अच्छे ढंग का बढ़ई होने को पैदा हुआ हो, या एक बहुत अच्छे ढंग का चमार। लेकिन महत्वाकांक्षा की दुनिया राष्ट्रपति को आदर देती है, चमार को तो आदर देती नहीं। इसलिए सभी राष्ट्रपति होना चाहते हैं, चमार कौन होना चाहेगा? तो जो एक कुशल कारीगर होने को पैदा हुआ था, वह अकुशल राजनीतिज्ञ होकर समाप्त हो जाता है।
नहीं, जिंदगी में प्रत्येक व्यक्ति के भीतर, उसके व्यक्तित्व के भीतर कुछ होने की संभावना है। प्रत्येक के भीतर! और जिस दिन भी दुनिया में नॉन-एंबीशस समाज, गैर-महत्वाकांक्षी समाज के आधार रखे जा सकेंगे, उस दिन दुनिया में बहुत लोग प्रफुल्लता को उपलब्ध होंगे, बहुत लोग आनंद को उपलब्ध होंगे, बहुत लोग प्रसन्नता को उपलब्ध होंगे, बहुत लोगों के जीवन में प्रसाद दिखाई पड़ेगा। क्योंकि वह जो काम जिसको लेने... जो उनके भीतर था, जो निकलेगा और अभिव्यक्ति होगी तो वे कुछ खिलेंगे। जैसे हर फूल खिल जाता है तो एक खुशी और सुवास देने लगता है।
लेकिन मनुष्य-जाति में बहुत कम फूल खिलते हैं। खिल ही नहीं सकते। महत्वाकांक्षा ने सारी जड़ें तोड़ डाली हैं, सारा जीवन नष्ट कर दिया है। अगर आप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं तो एक कृपा करना, उनको महत्वाकांक्षा मत सिखाना। इससे बड़ी शत्रुता और कोई नहीं हो सकती कि कोई मां-बाप अपने बच्चों को महत्वाकांक्षा सिखाएं। क्योंकि महत्वाकांक्षा उनके जीवन को नष्ट कर देगी, जहर की भांति उनके जीवन को नष्ट कर देगी। और यह जहर अंतिम रूप में राजनीति में प्रकट हो रहा है।
राजनीति से मनुष्य-जाति का छुटकारा चाहिए। यह कैसे होगा?
यह होगा धार्मिक चित्तता जितनी विकसित हो, तो होगा। तो ज्यादा इस पर
और नहीं कुछ कह सकूंगा। धार्मिक चित्त कैसे विकसित हो, उसका तो मैंने तीन दिन में आपसे विचार किया है, उन आधारों पर धार्मिक चित्त विकसित हो सकता है।
एक नये मनुष्य को जरूर ही पैदा होना चाहिए, क्योंकि जीवन बहुत बोझिल
और बहुत दुखी है। और वह नया मनुष्य किसी बिल्कुल नये आधारों पर विकसित हो सकता है। इन पुरानी परिपाटियों पर नहीं, इन लीकों पर नहीं जो अब तक चलती रही हैं। ये सारी लीकें खतरनाक हैं और टूट जानी चाहिए, और ये सारी कड़ियां जला देने योग्य हैं। और मनुष्य का अतीत शुभ नहीं रहा है, सुंदर नहीं रहा है; लेकिन उसका भविष्य सुंदर हो सकता है।
लेकिन आकस्मिक रूप से नहीं हो जाएगा यह। यह कोई नियति नहीं है कि अपने
आप हो जाएगा। यह कोई आकाश के ऊपर से आदेश नहीं आएंगे कि अब सब ठीक हो जाएगा। हमें बहुत कुछ बदलाहट करनी होगी। मनुष्य के चित्त को जिन ईंटों से हम बनाते हैं वे बदलनी होंगी। मनुष्य को जो हम ढांचे देते हैं वे बदलने होंगे। और अगर एक सुंदर और स्वस्थ भविष्य लाना है तो हमें पूरी-पूरी परंपराएं फिर से विचार कर लेनी होंगी। उनमें बहुत कुछ कचरा है जो जला देने योग्य है, बहुत कुछ गलत है, बहुत कुछ बीमार है, जो नष्ट कर देने योग्य है। और जब तक इतना विद्रोह और विचार नहीं है तब तक हम इसी कोल्हू के बैल की भांति अपने बच्चों को भी पेरेंगे, उनके बच्चों को वे पेरेंगे। और दुनिया में एक अदभुत बीमारी, महारोग चल रहा है हजारों साल से, जो शायद आगे भी चलता रहेगा। इसे तोड़ने के लिए कुछ चिंतन और विचार आवश्यक है।
मैंने जो कहा उस पर विचार करेंगे। मानने को मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा उसे मान लेंगे। मैंने जो कहा उस पर विचार करेंगे तो शायद ख्याल में आ सकता है। निश्चित ही, बहुत नई बात विचार करते वक्त कठिन मालूम पड़ती है, चौंकाती है, बंधी परिपाटी से दूर होने से मन को हिलाती है। लेकिन थोड़ा सोचेंगे, विचार करेंगे--एक कारण से सिर्फ--अगर आज का समाज इतना गंदा, गर्हित और निंदित है, तो जरूर इसकी बुनियादें कहीं न कहीं गलत होंगी। अगर बुनियादें सही होतीं तो यह समाज ऐसा कैसे हो सकता था! यह समाज इतना गलत है, जरूर इसकी बुनियादें गलत होंगी। उन बुनियादों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है।

छोटे प्रश्न और ले लेता हूं। किसी-किसी समय ऐसा प्रतीत होता है कि मन
दो हैं--एक मन कहता है कि यह रास्ता है, दूसरा कहता है कि वह रास्ता है। आप अपने विचार प्रकट कीजिए।

मन तो एक ही है, लेकिन मनुष्य ने मन को जिस भांति विकसित किया है वह विकास की पद्धति गलत होने से मन अपने भीतर ही विभाजित हो गया है। मनुष्य का मन तो वही कहता है जो अत्यंत प्राकृतिक है, लेकिन मनुष्य की सभ्यता उस प्रकृति पर रोक लगाती है और कहती है कि यह गलत है, यह मत करना। बचपन से हम बच्चे को सिखाना शुरू करते हैं--यह गलत है, यह मत करना; यह बुरा है, यह मत करना; यह पाप है, इससे अहित होगा, इससे नरक होगा, इससे दंड मिलेगा। तो बच्चे के भीतर एक तो प्रकृति है, जो कहती है कि यह ठीक है; और एक उसको सिखाई गई शिक्षाएं हैं, वे कहती हैं कि यह ठीक नहीं है, दूसरी बात ठीक है। परिणाम यह होता है कि हमेशा मन में द्वंद्व खड़ा रहता है। हमेशा! कोई भी बात आ जाए, मन में द्वंद्व खड़ा हो जाएगा। क्योंकि प्रकृति कुछ और कहती है और ये सिखाई हुई बातें कुछ और कहती हैं। इस भांति मनुष्य के भीतर द्वंद्व बढ़ता जाए तो मनुष्य पागल भी हो सकता है। पागल इसी वजह से होता है। इसलिए जितनी सभ्यता बढ़ती है, उतना पागलपन बढ़ता है। जितनी सभ्यता बढ़ती है, उतने विक्षिप्त लोग बढ़ते हैं।
अभी मैं सुनता था कि न्यूयार्क के कुछ हिस्सों में तो हर एक मकान के बाद मनोचिकित्सक का दूसरा मकान और तख्ती लगी है। एक वक्त ऐसा आएगा, वहां के एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है, पचास साल बाद न्यूयार्क में आधे मकान सामान्य लोगों के, आधे मकान मन की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों के होंगे। कभी ऐसा भी वक्त आ सकता है कि सभी मकान उनके हों।
यदि विकास होगा तो ऐसा ही होगा। सभ्यता जितनी बढ़ी है, अगर उसकी ठीक-ठीक गणना स्पष्ट हो तो आप घबड़ा जाएंगे। जितने असभ्य लोग हैं, उनमें पागल होने की संख्या उतनी ही कम है। जितनी असभ्य जातियां हैं, उनमें पागल होने की मात्रा बहुत कम है। और फिर जैसे सभ्यता बढ़ती है, उतनी ही पागल होने की संख्या बढ़ती चली जाती है।
अमेरिका के हिसाब से, इस समय अमेरिका में चालीस प्रतिशत लोग ठीक मानसिक स्थिति में नहीं हैं। चालीस प्रतिशत! बाकी बीस प्रतिशत लोग किसी भी दिन अपने मानसिक संतुलन को खो सकते हैं। साठ प्रतिशत हुए! शेष जो चालीस प्रतिशत हैं, जरूरी नहीं है कि वे सब स्वस्थ हों, उनमें से बहुत से लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो डाक्टरों के पास कभी गए नहीं हैं। अमेरिका इस समय सबसे बड़ा सभ्य मुल्क है, अगर इसका कोई भी कारण पूछना चाहे तो मैं कहूंगा, क्योंकि पागलों की संख्या वहां सर्वाधिक है। जिस दिन कोई मुल्क पूरा का पूरा पागल हो जाएगा वह सभ्यता की चरम स्थिति होगी। ऐसा विकास हो रहा है। यह क्या हो रहा है?
असभ्य आदमी के ऊपर, प्रकृति के ऊपर बहुत कम नियंत्रण होते हैं। जो उसे ठीक-ठीक भीतर से लगता है वह करता है। क्रोध आता है तो क्रोध करता है, गुस्सा आता है गुस्सा करता है, हत्या करने का मन होता है तो हत्या करता है। उसे जो ठीक लगता है। प्रेम होता है तो प्रेम करता है। उसे जो ठीक लगता है वह करता है, जो उसकी प्रकृति कहती है।
हम कहेंगे, यह तो बड़ी पाश्विक स्थिति हो गई, पशु की स्थिति हो गई।
निश्चित ही! यह स्थिति शुभ नहीं है। इस स्थिति को बदलना जरूरी है। तो
हम क्या करें? तो हम यह सिखाते हैं कि क्रोध बुरा है, क्रोध को पी जाओ, क्रोध करो मत। हम कहते हैं कि अगर तुम्हें किसी से प्रेम हो जाए तो अपने मन को संयम में रखो, प्रेम करो मत। हम ये बातें सिखाते हैं, ताकि आदमी पशु न रह जाए।
पशु होने से तो बच जाता है, लेकिन फिर पागल हो जाता है। अभी तक दो ही विकल्प हैं--या तो पशु या पागल। ठीक आदमी हम कैसे पैदा करें? जो थोड़े बीच में रहते हैं वे आधे पशु होते हैं, आधे पागल होते हैं, इसलिए चलते चले जाते हैं, उनको ज्यादा दिक्कत नहीं आती। या ऊपर से तो सभ्य होते हैं और भीतर से सभ्य नहीं होते। तो भी चल जाता है। तो तीसरा विकल्प हैः पाखंड, कि दिखाओ

ऊपर से कि मैं बहुत अच्छा आदमी हूं, भीतर से जो प्रकृति कहती है वह किए चले जाओ। तो दो मुख पैदा हो जाते हैं आदमी के भीतर। भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। बाहर सभ्य और भीतर अपने पशु को कायम रखता है। या तो पाखंड पैदा होता है और अगर जिद्दी हो और कहे कि मैं तो पूरी तरह सभ्य होकर ही रहूंगा, तो फिर पागल होगा। और यह अगर जिद्दी दूसरा हो और वह कहे कि मैं तो कुछ भी न मानूंगा, मुझे तो जो सुखद लगता है वही करूंगा, जो प्रीतिकर लगता है वही करूंगा, तो वह पशु हो जाएगा। तो अब रास्ता क्या है इन तीन के पीछे?
ये तीनों ही बातें गलत हैं। मनुष्य के भीतर जो-जो वृत्तियां हैं वे दमन से नहीं शुभ की तरफ ले जाती हैं। उसकी मैंने बात की पीछे आपसे कि मनुष्य की वृत्तियों के दमन के दुष्परिणाम होते हैं। उससे वह सभ्य होता नहीं, सिर्फ सभ्य दिखाई पड़ता है। और इसलिए उसके मन में द्वंद्व पैदा हो जाता है।
मनुष्य की पूरी प्रकृति का रूपांतरण होना चाहिए, दमन नहीं।
बच्चे को यह मत सिखाइए कि तुम क्रोध मत करना, क्रोध बुरा है। बच्चे को
वह मार्ग सिखाइए जहां से उसे शांति मिलनी शुरू हो जाए। अगर उसका चित्त शांत होगा तो वह क्रोध तो कर ही नहीं पाएगा। यह मत सिखाइए कि क्रोध मत करो, बल्कि यह सिखाइए पाजिटिवली, उस रास्ते पर ले जाइए विधायक रूप से जहां उसके चित्त में शांति का उदय हो। शांति का उदय सिखाइए, क्रोध न करने की बात मत सिखाइए।
सेक्स से बचाना है, काम से बचाना है, तो ब्रह्मचर्य के थोथे उपदेश मत सिखाइए। उससे उसका जीवन खतरनाक हो जाएगा और गलत हो जाएगा। उसका सारा जीवन नष्ट हो सकता है। और ब्रह्मचर्य ने जिन-जिन कौमों के मन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है, उनका सारा दांपत्य जीवन नष्ट हो गया और उनके भीतर इतनी ज्यादा कामुकता पैदा हो गई जिसका कोई हिसाब नहीं। वे कौमें चौबीस घंटे सेक्स के सिवाय कुछ भी नहीं सोच रही हैं। उनका सारा चिंतन वहीं केंद्रित हो गया। बातें वे भगवान की करते हैं, चिंतन वे सेक्स का करते हैं। करेंगे ही! क्योंकि ब्रह्मचर्य जीवन है और सेक्स नरक है, यह सिखाया जा रहा है। इसके दुष्परिणाम हुए हैं। दुष्परिणाम हो रहे हैं, दुष्परिणाम निरंतर होते रहे हैं।
नहीं, सेक्स से अगर बच्चे के जीवन को ऊपर ले जाना है तो उसे प्रेम सिखाइए, उसे ब्रह्मचर्य मत सिखाइए। जितना प्रेम विकसित होता है, सेक्स उतना ही विलीन हो जाता है। और हृदय जिस दिन पूरी तरह प्रेम से भर जाता है उस दिन कामुकता शून्य हो जाती है। क्योंकि सारी की सारी सेक्स की शक्ति प्रेम में परिवर्तित होती है। प्रेम सिखाइए--पौधों से प्रेम सिखाइए, पत्थरों से प्रेम सिखाइए, पशुओं से प्रेम सिखाइए--बच्चे के हृदय को प्रेम से भरिए, वह जिसके पास जाए प्रेम से भरा हुआ जाए। उसके जीवन में अपने आप प्रेम के कारण ब्रह्मचर्य चला आएगा। वह ब्रह्मचर्य बहुत और बात है जो प्रेम से फलित होता है। और जो ब्रह्मचर्य सेक्स के दबाने से फलित होता है वह बिल्कुल दूसरी बात है। वह बहुत खतरनाक बीमारी है।
एक साध्वी के पास मैं था। मेरा चादर हवा में हिला और उनको छू गया। तो
वे घबड़ा गईं, क्योंकि पुरुष का चादर साध्वी को नहीं छूना चाहिए। वे मुझसे आत्मा की बातें कर रही थीं और मुझसे कह रही थीं कि शरीर तो हम नहीं हैं, हम तो आत्मा हैं। तो मैंने उनसे कहा, मैं तो बहुत हैरान हो गया! आप तो कहती हैं कि आप शरीर नहीं हैं और चादर मेरा किसको छू रहा है, आपकी आत्मा को छू रहा है? और मैंने कहा कि मैं यह भी पूछना चाहूंगा, यह चादर पुरुष ने ओढ़ लिया तो यह चादर भी पुरुष हो गया?
यह तो हद दर्जे की सेक्सुअलिटी हो गई, यह तो हद दर्जे की कामुकता हो गई
कि चादर भी पुरुष हो गया, चूंकि पुरुष ने ओढ़ लिया! इसको छूने से क्या घबड़ाहट हो रही है? घबड़ाहट यह हो रही है कि वह जो सेक्स दबाया गया है, वह दबाया गया सेक्स हमेशा धक्के मार रहा है। वह तो पुरुष का चादर भी छू जाए तो भी ऊपर आ जाएगा उठ कर। यह ब्रह्मचर्य नहीं हुआ। यह तो अत्यंत मानसिक रूप का व्यभिचार हुआ। और यही व्यभिचार चल रहा है ब्रह्मचर्य के नाम से।

ब्रह्मचर्य तो प्रेम से फलित होता है। जब हृदय परिपूर्ण प्रेम से भर जाता है तो ब्रह्मचर्य अपने आप फलित होता है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा मत दीजिए; प्रेम सिखाइए। और फिर देखिए कि जीवन में कैसा रूपांतरण होता है। मेरा कहना यह है कि हमारी सारी नैतिक शिक्षा गलत होने से मन दो हिस्सों में टूट जाता है। प्रकृति कहती है सेक्स और शिक्षा कहती है ब्रह्मचर्य। बस टूट हो गई, खतरा हो गया। अब जीवन कष्ट में पड़ेगा, दुविधा में पड़ेगा, खंड-खंड हो जाएगा, कांफ्लिक्ट पैदा होगी। और उसी में आदमी टूटता है और नष्ट होता है।
मैं कहता हूं कि प्रकृति का तो विरोध घातक है। प्रकृति का विरोध घातक है। प्रकृति का परिवर्तन, प्रकृति का ट्रांसफार्मेशन, प्रकृति का ऊर्ध्वगमन तो सहयोगी है। सेक्स की दुश्मनी में मत खड़े हो जाइए, प्रेम के पक्ष में जीवन को विकसित करिए। जितना प्रेम विकसित होगा, सेक्स की शक्ति प्रेम में अपने आप समाहित होती चली जाएगी। जिस दिन प्रेम पूरा हृदय में भर जाएगा, उस दिन उस हृदय में कामुकता अपने आप विलीन हो जाएगी। और किसी भांति से कामुकता विलीन नहीं होती। और सब भांति के उपाय असफल हुए हैं।
लेकिन ईमानदारी से चिंतन नहीं है, इसलिए थोथी बातों को भी हम दोहराए चले जाते हैं और उन पर कभी विचार भी नहीं करते। मन दो नहीं हैं, मन दो कर दिए गए हैं। मन एक ही होना चाहिए। और एक ही होने का यह मतलब नहीं है कि मन पशु हो जाए। नहीं, मनुष्य के भीतर जो पशुता जैसी मालूम होती है, उस एक ही मन को बिना खंडित किए विकसित किया जा सकता है। और वही पशुता जो है ठीक-ठीक विकसित हो तो दिव्यता में परिवर्तित हो जाती है।
तो यह मन का जो द्वैत है यह गलत शिक्षा, गलत संस्कृति, गलत सभ्यता, गलत धर्मों की शिक्षा का परिणाम है। और यह द्वैत तो होगा।
मैं एक घर में ठहरा था। गृहिणी ने मुझसे कहा, मैं अपने पति को बहुत प्रेम करती हूं, अथक प्रेम करती हूं, उन्हें परमात्मा ही की तरह मानती हूं। लेकिन फिर भी कलह हो जाती है, रोज कलह हो जाती है, छोटी-छोटी बात पर कलह हो जाती है। तो हैरानी होती है कि जिसको मैं परमात्मा की तरह मानती हूं, इतना प्रेम करती हूं, उससे छोटी-छोटी बात पर कलह क्यों हो जाती है? उसकी छोटी-छोटी आज्ञा मानना भी कठिन हो जाता है। उसकी छोटी-छोटी इच्छा पर झुकना भी कठिन हो जाता है। मैं ही उसे उलटे झुकाने की कोशिश करती हूं। तो क्या कठिनाई है, मुझे कहें!
तो मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारा सेक्स के प्रति क्या दृष्टिकोण है? बचपन से हम बच्चों को, बच्चियों को सिखा रहे हैं कि सेक्स गर्हित है, नरक है, पाप है, नरक का द्वार है, यह सिखा रहे हैं। छोटी बच्चियां, छोटे बच्चे यह सीख रहे हैं कि सेक्स पाप है, सेक्स नरक है, सेक्स से बुरा कुछ भी नहीं है, उसका विचार ही आना बुरा है, उसका ख्याल ही आना बुरा है, इसको हम सिखा रहे हैं। फिर बीस वर्ष की लड़की हो गई इस भांति सीखी हुई, फिर उसका विवाह कर दिया। वे ही मां-बाप जिन्होंने सिखाया कि सेक्स पाप है वे ही उसका विवाह भी कराए। उन्होंने शोरगुल भी मचाया, बैंड-बाजे भी बजाए और उसका विवाह भी कर दिया। उन्हीं मां-बापों ने, उसी समाज ने, जिसने सिखाया कि सेक्स पाप है, उसने ही विवाह कर दिया। अब द्वंद्व शुरू होगा। जिसको आपने कहा कि पति हैं, इनको परमात्मा मानना, इनको वह परमात्मा कैसे मानेगी? क्योंकि इनसे उसका संबंध जो होगा वह तो सेक्स का होगा, और सेक्स से बड़ी पाप जैसी कोई चीज नहीं, तो ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? यह पति परमात्मा हो कैसे सकता है? इसका संबंध तो सेक्स का है।
इसलिए पत्नी की बहुत गहरी दृष्टि में पति से पतित और कोई व्यक्ति होता ही नहीं है। हो भी नहीं सकता है। इसलिए वह एक ऐरे-गैरे साधु-संन्यासी के पैर छू सकती है, पति के नहीं। छूती है तो परवश है, लेकिन जानती है भीतर से कि कैसा नीचा आदमी, कैसा निम्न आदमी!
वही पति भी जानता है कि पत्नी नरक का द्वार है। ये साधु-संन्यासी सिखा
गए हैं कि नरक का द्वार है, यही तो तुमको लिए जा रही है नरक में।
एक स्त्री, एक महिला मुझसे रास्ते में पूछती थीं ट्रेन में कि मुझे यह बताइए कि स्त्री पर्याय से मुक्ति कैसे मिले?

यह बेवकूफों ने सिखाया हुआ है कि स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं हो सकता। जैसे मोक्ष भी यह देखता है--देह--और नाप-जोख रखता है कि कौन पुरुष, कौन स्त्री।
यह पुरुषों ने सिखाया है स्त्रियों को। और अगर स्त्रियां नरक के द्वार हैं तो फिर स्त्रियां तो अब तक नरक गई ही नहीं होंगी। क्योंकि उनके लिए अगर पुरुष द्वार न हो तो वे नरक कैसे जाएंगी? अगर स्त्रियां किताबें लिखतीं तो वे लिखतींः पुरुष नरक के द्वार हैं। वे दोनों एक-दूसरे को नरक के द्वार बने हुए हैं, क्योंकि सेक्स की मन में निंदा है।
सेक्स का मन में सम्मान होना चाहिए, निंदा नहीं। सेक्स के प्रति प्रकृतिस्थ स्वस्थ दृष्टिकोण होना चाहिए। जानना चाहिए कि वह जीवन की अत्यंत अनिवार्यता है। और जानना चाहिए कि सारी प्रकृति उस पर खड़ी है, सारा विराट सृजन उस पर खड़ा हुआ है। सेक्स से बड़ी शक्ति नहीं, सेक्स से बड़ी फोर्स नहीं, उसी पर तो सारा खेल है। फूल इसलिए खिलते हैं, वृक्ष इसलिए खिलते हैं, पक्षी इसलिए गीत गाते हैं, बच्चे इसलिए पैदा होते हैं। सारी दुनिया में जो भी क्रिएटिविटी है वह सब बुनियाद में सेक्स से संबंधित है। तो उस सेक्स को निंदित करके तो सब गड़बड़ हो जाएगा।
नहीं, उसकी निंदा की जरूरत नहीं, उसके स्वीकार की जरूरत है। और स्वीकार के द्वारा उसको और कितना विकसित किया जा सकता है, इस दिशा में परिवर्तन, ऊर्ध्वगमन की जरूरत है। सेक्स जरूर एक दिन परिवर्तित होकर ब्रह्मचर्य बन सकता है। लेकिन सेक्स के विरोध में लड़ कर नहीं, वरन सेक्स के प्रति अत्यंत सम्मान, अत्यंत सहृदयता, अत्यंत सहजता, अत्यंत मैत्रीपूर्वक उस शक्ति को परिवर्तित किया जा सकता है। और मार्ग है कि प्रेम विकसित हो। मार्ग है कि प्रेम विकसित हो, तो सेक्स अपने आप, अपने आप गतिमय होता है। जैसे कि पानी को बहाव देना हो, हम एक नाली बना दें तो पानी उससे बहने लगता है और नाली न हो तो फिर पानी कहीं भी बह जाता है। प्रेम की नाली अगर भीतर चित्त में निर्मित हो तो सेक्स की सारी की सारी एनर्जी प्रेम में परिवर्तित होती है और बहती है।
लेकिन हमारी सारी शिक्षा भूल से भरी है, सारी संस्कृति भूल से भरी है।
और इसलिए मनुष्य का चित्त रुग्ण से रुग्ण होता चला गया है।
उस पर और ज्यादा तो फिलहाल मैं अभी नहीं कह सकूंगा। इधर कुछ मित्र सोचते हैं कि एक पूरा का पूरा कैंप ब्रह्मचर्य पर हो। मैं भी सोचता हूं कि यह हो सकता है और होना चाहिए।
अंतिम रूप से, अब प्रश्न तो नहीं लूंगा, छोटी सी कहानी कहूंगा, वह विदा
के समय।
एक छोटी सी कहानी मुझे यह कहनी है, अभी आ रहा था तो मुझे ख्याल आया।
एक राजा हुआ, उसने दूर-दूर खबर की कि जो भी धर्म श्रेष्ठ होगा उसे मैं स्वीकार करूंगा। अनेक-अनेक पंडित आए, समझाते थे कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है, दूसरा पंडित समझाता कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है। वे विवाद भी करते, एक-दूसरे को हराने और पराजित करने की कोशिश भी करते। लेकिन राजा के सामने कुछ सिद्ध न हो पाया कि कौन धर्म चरम धर्म है, कौन सर्वोत्कृष्ट धर्म है। और जब यही सिद्ध न हुआ तो राजा अधर्म के जीवन में जीता रहा। उसने कहा, जिस दिन सर्वश्रेष्ठ धर्म उपलब्ध हो जाएगा उस दिन मैं धर्म का अनुसरण करूंगा। जब तक सर्वश्रेष्ठ धर्म का पता ही नहीं है तो मैं कैसे जीवन को छोडूं और बदलूं! तो जीवन तो वह अधर्म में जीता रहा, लेकिन सर्वश्रेष्ठ धर्म की खोज में पंडितों के विवाद सुनता रहा। सभी धर्मों के लोग आए। और किसी भी धर्म का आदमी आया, उसने कहा, मेरा धर्म श्रेष्ठ है, दूसरों के नीचे हैं। राजा उनकी दलीलें सुनता; दूसरों को आमंत्रित करता, उनकी दलीलें सुनता। ऐसे जीवन बीता। जीवन तो है छोटा और दलीलें तो हैं बड़ी। तो दलीलों में तो जीवन बिल्कुल बीत ही सकता है, कोई कठिनाई नहीं है।
फिर तो राजा बूढ़ा होने लगा और घबड़ा गया कि अब क्या होगा? अधर्म का जीवन दुख देने लगा, पीड़ा लाने लगा। लेकिन जब श्रेष्ठ धर्म ही न मिले तो वह चले भी कैसे धर्म की राह पर? अंततः एक भिखारी उसके द्वार पर आया और उस भिखारी

ने कहा कि मैंने सुना है कि तुम पीड़ित हो और परेशान हो। तुम्हारे चेहरे से भी दिखाई पड़ता है।
उस राजा ने कहा, मैं सर्वश्रेष्ठ धर्म की खोज में हूं।
भिखारी ने कहा, सर्वश्रेष्ठ धर्म? क्या बहुत धर्म होते हैं दुनिया में कि उसमें कोई श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ का भी सवाल उठे? धर्म तो एक है। कोई धर्म बुरा और कोई धर्म अच्छा, यह तो होता ही नहीं, तो सर्वश्रेष्ठ का कोई सवाल नहीं।
राजा बोला, लेकिन मेरे पास तो जितने लोग आए उन्होंने कहा, हमारा धर्म श्रेष्ठ है।
उस फकीर ने कहा, जरूर उन्होंने धर्म के नाम से, मैं श्रेष्ठ हूं, यही कहा होगा। उनका अहंकार बोला होगा। धर्म तो एक है, अहंकार अनेक हैं। राजा से उसने कहा कि जब भी कोई पंथ से बोलता है या किसी धर्म से बोलता है, तो समझ लेना कि वह धर्म के पक्ष में नहीं बोल रहा, अपने पक्ष में बोल रहा है। और जहां पक्ष है, जहां पंथ है, वहां धर्म नहीं होता। धर्म तो वहीं होता है जहां व्यक्ति निष्पक्ष होता है। पक्षपाती मन में धर्म नहीं हो सकता। राजा प्रभावित हुआ। उसने कहा, तो फिर तुम मुझे बताओ मैं क्या करूं?
उस फकीर ने कहा कि आओ नदी के पार चलें, वहां मैं बताऊंगा। वे नदी के किनारे गए। उस फकीर ने कहा कि जो सर्वश्रेष्ठ नाव हो तुम्हारे राजधानी की वह बुलाओ, तो उसमें बैठ कर उस तरफ चलें। राजा ने कहा, यह बिल्कुल ठीक। राजा जाए तो सर्वश्रेष्ठ नाव आनी चाहिए। बीस-पच्चीस जो अच्छी से अच्छी नावें थीं वे बुलाई गईं। सुबह वे गए थे, दोपहर इसी में हो गई, सब नावें इकट्ठी हुईं। अब वे घाट के किनारे भूखे बैठे हुए हैं। और वह फकीर भी अजीब था, एक-एक नाव में दोष निकालने लगा कि इसमें यह खराबी है, इसमें यह दाग लगा हुआ है, यह तो आपके बैठने योग्य नहीं है। इसमें मैं कैसे बैठ सकता हूं, यह तो बहुत छोटी है।
राजा भी थक गया, सांझ हो गई, सूरज डूबने लगा। राजा ने कहा, क्या बकवास लगा रखी है! नाव कोई भी काम दे सकती है। और अगर नाव कोई भी पसंद नहीं पड़ती तो नदी भी कोई भारी नहीं, चलो हम तैर कर ही निकल चलें। छोटी सी नदी है, अभी कभी के उस तरफ पहुंच गए होते।
फकीर जैसे इसकी प्रतीक्षा में ही था, उसने कहा, मैं इसी की प्रतीक्षा में था। तुम्हें जीवन में यह ख्याल नहीं आया कि धर्मों की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो, तैर कर भी निकला जा सकता है। और सच तो यह है कि धर्म की कोई नाव नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से ही तैरना पड़ता है। धर्म की कोई नाव नहीं होती।...